

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री

PURVOTTAR KENDRIT HINDI UPANYASON MEIN STREE

(मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी (पीएच.डी.)
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

A THESIS SUBMITTED IN PARTIAL FULFILLMENT OF THE
REQUIREMENTS FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF
PHILOSOPHY

रंजू शर्मा

RANJU SHARMA

MZU REGN. NO: 1701188

Ph.D. REGN. NO: MZU/PH.D/1146 of 26.04.2018



हिंदी विभाग

मानविकी एवं भाषा संकाय

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES AND LANGUAGES

जुलाई-2025

July, 2025

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री

PURVOTTAR KENDRIT HINDI UPANYASON MEIN STREE

अनुसंधित्सु

रंजू शर्मा

हिंदी विभाग

By

RANJU SHARMA

DEPARTMENT OF HINDI

शोध-निर्देशक

डॉ. सुषमा कुमारी

SUPERVISOR

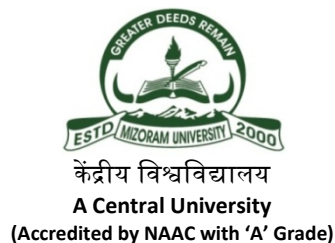
Dr. SUSHMA KUMARI

मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ॉल के मानविकी एवं भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय
में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) की उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति
हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

Submitted

In partial fulfillment of the requirement of the Degree of Doctor of
Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl.

डॉ. सुषमा कुमारी
सह आचार्य
हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आईजाल-796004



Dr. Sushma Kumari
Associate Professor
Department of Hindi
Mizoram University,
Aizawl-796004

Mobile No. - 9774009180; 09971254694; E-mail: sushmajnu.kunani@gmail.com; Website : www.mzu.edu.in

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रंजू शर्मा ने मेरे निर्देशन में मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल की डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी (पीएच.डी.-हिंदी) की उपाधि हेतु 'पूर्वोत्तर केन्द्रित उपन्यासों में स्त्री' विषय पर शोध कार्य किया है। प्रस्तुत शोध कार्य शोधार्थी की अपनी निजी गवेषणा का परिणाम है। यह इनका मौलिक कार्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत शोध-प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु आद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं प्रस्तुत शोध-प्रबंध को मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल की डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी (पीएच.डी.-हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करती हूँ।

शोध-निर्देशक
डॉ. सुषमा कुमारी
सह-आचार्य

हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आइज़ोल
जुलाई-2025

घोषणा-पत्र

मैं रंजू शर्मा एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषय सामग्री मेरे द्वारा किए गए शोध कार्य का सुपरिणाम है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गयी है न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध मिज़ोरम विश्वविद्यालय के सम्मुख हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ़ फ़िलॉसफी (पीएच.डी) हिंदी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(प्रो. संजय कुमार)
अध्यक्ष

(डॉ. सुषमा कुमारी)
शोध-निर्देशक

(रंजू शर्मा)
शोधार्थी

भूमिका

पूर्वोत्तर भारत की अगर बात की जाए तो हिंदी का उद्भव और विकास कुछ समय पूर्व ही संभव हो पाया है। शुरुआती दौर में अधिकतर रचनाएँ बाहरी लोगों द्वारा ही लिखी जाती थी। जिसकी झांकी पूर्वोत्तर की हिंदी उपन्यासों में देखी जा सकती है।

पूर्वोत्तर की भूमि नारी की उर्जा और सशक्तिकरण के रूप को दिखाती है। जहाँ यहाँ नारी किसी भी तरह के बंधन में बंधी हुई नहीं लगती है। अन्य प्रांतों में जहाँ औरतों के बाहर काम करने बाजारों में दिखने से बुरी चरित्र का रूप माना जाता है। वही यहाँ की औरतें ही बाजार को अपनी अधीन रखी हुई है। इन सब को चुनौती देते हुए लेखक जो खासतौर पर पूर्वोत्तर के सामाजिक विषयों पर रचनाएँ लिख रहे थे। अलग ही सामाजिक रूप, पितृसत्तात्मक का रूप, और स्त्री-पुरुषों के संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया है।

पूर्वोत्तर की समस्याओं और पूर्वोत्तर के विभिन्न जातियों में स्त्रियों की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। इस शोध प्रबंध का विषय “पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री” है। इस शोध कार्य में पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यास के 11 उपन्यासों को शामिल किया गया है जिसके आधार पर पूर्वोत्तर की स्त्रियों के जीवन शैली, पुरुषों के साथ उनके संबंध और समाज के स्वरूप ऐसे अनेकों विषयों को उजागर किया गया है। इस शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय “पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यास और स्त्री” इस अध्ययन में दो उप-अध्याय रखे गए हैं। प्रथम उप-अध्याय है- ‘पूर्वोत्तर भारत और हिंदी उपन्यास’ के माध्यम से पूर्वोत्तर भारत की सामाजिक स्थिति और उनके आधार पर लिखी रचनाओं का उल्लेख

किया गया है। दूसरा उप-अध्याय है- 'पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री' के माध्यम से पूर्वोत्तर भारत की स्त्रियों का स्वरूप और उसे उपन्यासों में उसकी उपस्थिति को विश्लेषित किया गया है।

दूसरा अध्याय- "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री की छवि" है। इस अध्याय को तीन उप-अध्याय में विभाजित किया गया है। पहला उप-अध्याय 'स्त्री के विविध रूप' के माध्यम से स्त्री के विविध रूप को दिखाया गया है। दूसरे उप-अध्याय 'स्त्री-पुरुष संबंध' में स्त्री-पुरुष संबंध को उजागर किया गया है। तीसरा उप-अध्याय 'स्त्री नैतिकता के प्रतिमान' के माध्यम से स्त्री के लिए निर्धारित कर दिए गए नैतिकता को उजागर किया है। स्त्री चाहे किसी भी प्रांत या समाज में क्यों न हो वो सदैव नैतिक मूल्य को लेकर चलती है।

तृतीय अध्याय "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री" है। इस अध्याय को छह भागों में विभाजित किया गया है। पहला उप-अध्याय में 'मिज़ो समाज और स्त्री' के माध्यम से मिज़ो समाज की स्त्रियों की स्थिति को उजागर किया गया है। दूसरा उप-अध्याय 'खासी समाज और स्त्री' के माध्यम से मेघालय के खासी समाज जो कि मातृवंशीय समाज कहलाता है, में स्त्रियों की स्थिति एवं पहचान को विश्लेषित किया गया है। तीसरा उप-अध्याय 'मैतेई समाज और स्त्री' के माध्यम से मणिपुर के मैतेई समाज की स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ उप-अध्याय में 'नागा समाज और स्त्री' के माध्यम से नागालैंड के नागा समाज की स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। पंचम उप-अध्याय में 'असमिया समाज और स्त्री' के माध्यम से असमिया समाज की स्त्रियों के जीवन से जुड़े अनेक

पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। षष्ठ उप-अध्याय में 'गालो समाज और स्त्री' के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश के गालो समाज की स्त्रियों के बारे में बताया गया है।

चतुर्थ अध्याय "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्री की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन" हैं। इसमें कोई उप-अध्याय नहीं रखा गया है। इस अध्याय में पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों के बीच ही स्त्रियों की स्थिति की तुलना की गई है।

पंचम अध्याय "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न" है। इस अध्याय में तीन उप-अध्याय रखे गए हैं। पहले उप-अध्याय में 'पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ' के माध्यम से पूर्वोत्तर के पितृसत्तात्मक समाज के भीतर स्त्रियों की स्थिति के साथ उनकी चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। दूसरा उप-अध्याय 'मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति' हैं। इसके माध्यम से पूर्वोत्तर के मेघालय में खासी समाज के मातृवंशीय समाज की सच्चाई का उद्घाटन किया गया है। तीसरा उप-अध्याय 'मुक्ति की राहें' है। इसके माध्यम से स्त्री को प्रताड़ना और तमाम शोषण के बीच मुक्ति की राह कैसे ढूँढ निकालनी है इसका विश्लेषण किया गया है।

इस शोध विषय को चुनने और इसकी योजना में मेरी शोध निर्देशक डॉ. सुषमा कुमारी का विशेष योगदान रहा है। पूर्वोत्तर के उपन्यासों पर इससे पूर्व कोई खास कार्य नहीं हुआ था। इसलिए उन्होंने शोध के विषय के लिए मुझे पूर्वोत्तर के उपन्यासों में स्त्री की स्थिति को लेकर शोध कार्य करने का सुझाव दिया। मैं स्वयं भी पूर्वोत्तर की हूँ, ऐसे में मेरी भी रुचि पूर्वोत्तर के साहित्य पर शोध कार्य करने की रही। इस तरह मेरी शोध निर्देशक और अपनी रुचि को ध्यान

में रखते हुए मैंने शोध के विषय के लिए 'पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री' का चुनाव किया।

मेरे इस शोध कार्य को पूरा करने में बहुत लोगों ने अपना सहयोग दिया है। मिजोरम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर संजय कुमार और अन्य शिक्षकों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य में सहयोग प्रदान किया। मैं अपने परिवार और कुछ विशेष मित्र दिवेश, कृतिका, ताबा, ओबिनाम, कमला, पूजा, प्रीति आदि के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने भी मुझे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया है उन सबका मैं तहेदिल शुक्रिया अदा करती हूँ।

रंजू शर्मा

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका:	i-iv
प्रथम अध्याय : पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यास	1-50
(क) पूर्वोत्तर भारत और हिन्दी उपन्यास	
(ख) पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री	
द्वितीय अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री की छवि	51-127
(क) स्त्री के विविध रूप	
(ख) स्त्री -पुरुष सम्बन्ध	
(ग) स्त्री नैतिकता के प्रतिमान	
तृतीय अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री	128-211
(क) मिज़ो समाज और स्त्री	
(ख) खासी समाज और स्त्री	
(ग) मैतेयी समाज और स्त्री	
(घ) नागा समाज और स्त्री	
(ङ) असमिया समाज और स्त्री	
(च) गालो समाज और स्त्री	

चतुर्थ अध्याय : पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्री की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन	212-233
पंचम अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न	234-281
(क) पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ	
(ख) मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति	
(ग) मुक्ति की राहें !	
उपसंहार :	282-292
संदर्भ ग्रंथ सूची : (क) आधार ग्रंथ (ख) सहायक ग्रंथ	293-297
(ग) अंग्रेजी ग्रंथ (घ) पत्रिकाएँ	
अनुसंधित्सु का बायो-डाटा :	298
अनुसंधित्सु का विवरण :	299

प्रथम अध्याय

पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यास और स्त्री

(क) पूर्वोत्तर भारत और हिंदी उपन्यास

(ख) पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री

प्रथम अध्याय

पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यास और स्त्री

(क) पूर्वोत्तर भारत और हिंदी उपन्यास

पूर्वोत्तर भारत, भारत का सबसे अनोखा राज्य है। जो अपनी पहचान अपनी समाज की संरचना सांस्कृतिक परिवेश और रीति रिवाज अपने-आप में ही एक अनूठी छवि प्रस्तुत करती है।

पूर्वोत्तर भारत एक समय बड़ा ही विस्मयात्मक एवं विवादात्मक प्रदेश था। इसका मुख्य कारण थी यहाँ की भौगोलिक स्थिति जिस कारण वे दिखने में अन्य भारतीय लोगों से बिल्कुल भिन्न थी। लोगों के मन में इस बात तक की संशय पैदा हो गई थी कि यह भारत का हिस्सा ही नहीं है। किंतु इन सारे विवाद और उलझनों के उपरान्त भी पूर्वोत्तर भारत, भारत का अभिन्न अंग है।

रचनाओं के स्तर पर अगर हम देखे तो पूर्वोत्तर भारत पर कई लेख एवं किताबें लिखी गई हैं; इस लेखन की शुरुआत अंग्रेजी भाषा से होती है। हिंदी में बहुत देर से लिखने की शुरुआत हुई। वैसे एक प्रकार से हिंदी को लेकर भी पूर्वोत्तर के राज्यों में अस्वीकृति का माहौल एक समय बड़े ही उत्तम चरम में थी। किंतु अब स्थिति बिल्कुल बदल चुकी है। हिंदी भाषा के प्रति लोगों में जागरूकता बहुत अधिक फैल चुकी है। हिंदी के प्रति जैसा आदर एवं प्रेम लोगों के मन में उत्पन्न हुई थी, एक समय यह नामुकिन समझा जाता था।

शुरुआती समय में पूर्वोत्तर भारत की हिंदी रचनाएँ बाहरी लोगों द्वारा लिखी जाती थी। क्योंकि यहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार का वह माध्यम प्राप्त नहीं हो पा रहा था, जिसके जरिए यह कामयाब हो पायें धीरे-धीरे कर साहित्य जगत में बहुत सी कामयाबी मिलना आरंभ हो गया।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी में लिखने के क्षेत्र में बहुत से लोगों ने अपना सहयोग दिया। पूर्वोत्तर के लोगों के साथ-साथ बाहरी लोगों ने भी अपना विशेष योगदान प्रदान किया।

पूर्वोत्तर भारत की उपन्यासों में वहाँ की भूमिगत झाँकी देखने को मिलती हैं। अधिकतर उपन्यास गैरभाषी लोगों के द्वारा लिखे जाने के कारण भाषाई सुंदरता तो हैं। परंतु भूमि की खुशबू उसमें कम देखने को मिलती हैं। पात्रों के साथ न्याय करने की भरपूर कोशिश की गई हैं। मिज़ो समाज में फैली अशांति को समाप्त करने के लिए सरकार द्वारा कई तरह के प्रलोभन देने की कोशिश की गई थी। "जहाँ बाँस फूलते हैं" के माध्यम से श्रीप्रकाश मिश्र जी ने इसकी प्रकाश हमारे सामने प्रस्तुत की है झा सरकारी कर्मचारी सरकार के आदेश पर मिज़ो क्रांतिकारियों से दोस्ती का हाथ बढ़ाने जाना। पर उस चीज को सीरे से इंकार कर देना, उस समय की सामाजिक अशांति और गैर मिज़ो के प्रति आक्रोश के भाव को दृष्टिगोचर कराती हैं।

“भुचेडा सीधा चलकर उसके पास पहुँचा और सावधान की मुद्रा में खड़ा हो गया। फिर बड़े ही संयत स्वर में बोला, "बड़े सरकार का एक छोटा ओहदेदार अपने बड़े हुक्काम के आदेश पर आप से मिलने आया है”

“उसे आने के लिए कहों।”

झा सीधा उसके पास गया। सम्मान में तनकर खड़ा होकर अपना परिचय दिया। वह उठा और हौले से हाथ मिलाया। उसकी गदोरी गर्म थी और फूल की पँखुड़ी की तरह नर्म। झा तुरंत ताड़ गया कि मिज़ो जनरल के हाथ में हल्की-सी कंपन हो रही हैं। उसके इशारे पर झा एक कदम पीछे हटकर अभी लाकर रखे गए एक मोढ़े पर बैठ गया। फिर अपने बैग से एक पुआन, एक टॉर्च, कुछ सुपारी और एक छोटी-सी कटार निकाल उसे पेश किया।

वह मिज़ो सिर से पाँव तक सिहर गया। कोई मिनट भर तक इन सामानों को घूरते रहने के बाद उसने पूछा, “यह क्या हैं?”

जा एक-एक शब्द अलग-अलग उच्चारित करते हुए बोला, “भारत की केंद्रीय सरकार की ओर से एक तोहफा।”

“या घूस?”¹

मिज़ो जनरल और झा के आपस की बातों से यह साफ़ पता चलता है कि मिज़ो लोग सरकार के प्रति संदेह भाव रखते हैं। साथ ही उन्हें यह भी लगता है कि सरकार मिज़ो समाज की समस्याओं को कभी नहीं समझ सकते हैं। लेखक आगे लिखते हैं-“झा सकपका गया। जल्दी-जल्दी बोला, “यह आप क्या कह रहे हैं? मिज़ो परंपरा के अनुरूप ही यह तोहफा लाया हूँ।”

“आप की सरकार हमारी परंपरा कब से मानने लगी?” वह साश्चर्य बोला। कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद फिर बोला, “मिज़ो परंपरा में तोहफा बराबर वालों के बीच चलता है। तो क्या केंद्रीय वाई सरकार हमारी भूमिगत सरकार को अपने बराबर समझती हैं?”²

मिज़ो समाज द्वारा अपना ही एक सरकार स्थापित किया जाना केंद्रीय सरकार को परेशान कर रही थी। भारत तेरे टुकड़े हो का दृश्य एक प्रकार से उभर कर सामने आ रही थी। उन्हीं चीजों को श्रीप्रकाश जी ने अपनी उपन्यास ‘जहाँ बाँस फूलते’ हैं में दिखाया है,

“प्रश्न सुनकर वह अभिभूत हो गया। दिल कहता था कि कह दे: केंद्रीय सरकार चंद विद्रोहियों के सेल्फ़ स्टाइल्ड सरकार को अपने बराबर कैसे मान सकती हैं। पर वह बात इस नेता पर सीधे चोट करती और बनने को आई बात बिगड़ जाती। इस मुलाकात का पूरा-पूरा उपयोग न कर पाया तो ऐसा सुयोग जीवन भर न मिलेगा। बोला, “दो सरकारें एक दूसरे को क्या समझती है

यह तो सरकार वाले जानें। मैं तो अदना-सा कर्मचारी हूँ। एक-दूसरे की बात एक-दूसरे तक पहुँचाने भर की ही क्षमता रखता हूँ और मिजो जनता का भी कल्याण तहेदिल से चाहता हूँ, क्योंकि इसके बिना भारतीय जनता का कल्याण नहीं हो सकता। आप उपहार ग्रहण करें।”

वह कुछ देर तक सोचता रहा। फिर बोला, “मैं भी अपनी सरकार का कर्मचारी ही हूँ। इसलिए बिना अपनी सरकार की अनुमति के नहीं ले सकता।”

“पर यह तो व्यक्तिगत तौर पर आपके लिए हैं।”

“हम जब एक सिद्धांत पर संगठन के लिए काम करते हैं, तब व्यक्तिगत कुछ भी नहीं रह जाता।”³

संपादक सुरेश चंद जी ने भी अपनी लेख श्रीप्रकाश मिश्र की 'साहित्य-साधना की परख' के माध्यम से मिजो की पीड़ा को दर्शाया जहाँ वे युगों से अपनी संस्कृति और समाज को बचायें हुए हैं। वहीं बाहरी लोग आकर चाहे वह चीनी, बर्मा और भारत के अन्य क्षेत्रों के लोग यहाँ आकर उनके हिस्से का खाना छिन कर खा जाते हैं। यही आगे चलकर उन्हें बागी बना देती हैं। एक मिजो लोकगीत के माध्यम से इस असहनीय पीड़ा को समझाने की कोशिश की है:

“फल पका तो उसकी सुगंध बहुतों को उसके नीचे ले आई।

कुछ उसके सौंदर्य पर इतने रीझ गये कि उसे मात्र देखने की चीज मान

बैठे। कुछ ने तोड़ना चाहा। पर असमर्थ रहे। तभी कोई योद्धा आया-

जिसने न केवल देखा, उसे परखा, तोड़ा, खाया और बीज बोकर

चला गया। किसी ने भी नहीं सोचा, नहीं जाना कि वह कौन पुरुष

था, जिसने इस वृक्ष को भावी पीढ़ी के लिए रोपा था, जिसने इसकी रक्षा की थी, जिसकी देख रेख में यह फलदार वृक्ष बना था।”⁴

सुरेश जी ने उस चीज़ को बखूबी समझते हैं। जो मिज़ोरम के सामान्य जनता को दर्द दे रही थी। अपनी आँखों के सामने जब आपकी खेती को जला दे या फसल पकने के बाद जब उस फसल पर किसी और का अधिकार स्थापित हो जाता है। तो उससे दर्दनाक घटना क्या हो सकती है। इस बात को समझाते हुए लेखक लिखते हैं कि- “इस लोकगीत में हमें मिज़ो जाति के लोगों के जीवन का सारा सामाजिक और सौंदर्यप्रधान दृष्टि, अपने देश के प्रति अपनी जाति के, अपनी संतान के प्रति प्रतिबिम्बित हो जाता है और उससे जुड़े हुये सारे अंतिम प्रश्न हम सब के लिए और समग्र मिज़ो जाति के लिये अनुत्तरित छोड़ जाता है कि आखिर वह व्यक्ति कौन था जिसने इस वृक्ष को बिना किसी फल की आशा किये रोपा था कि भविष्य में आने वाली पीढ़ी इसको उसी तरह देखेगी, परखेगी, माँगेगी और अनन्त बीज में बिखेर कर बिना यह पूछे कि वह कौन है, चली जायगी।”⁵

श्री प्रकाश मिश्र जी की उपन्यास 'रूपतिल्ली की कथा' में खासी समाज के बलि प्रथा को भली-भाँति उजागर किया है। खुरलुक्की जैसे लोग जो जीवन में कुछ नहीं कर पाते। वे कुछ दिनों के लिए आराम की जिंदगी बिताने के लिए बलि चढ़ने को भी तैयार हो जाते हैं। साथ ही उन्हें जीवन उन्हें मृत्यु से भी बदतर लगने लगता है। वे ये स्वांग रचाने लगते हैं कि कोपिली माँ मुझे बुला रही है। ताकि उन्हें लोगों से एवं राजा से प्यार, सम्मान और कुछ दिनों के लिए सही अच्छा भोजन प्राप्त हो पायें। लेखक लिखते हैं कि- “इलाके में सूखा नहीं पड़ा था। लेकिन गरीब के लिए क्या अकाल, क्या दुःकाल। सिर्फ भोजन के लिए जंगल की लकड़ी काटते, मधुमक्खियों

का छत्ता नोचते, लाह इकट्ठा करते, नदी की बिलों से केंकड़ा पकड़ते, दौड़ा कर खरगोश, साही का आखेट करते-करते खरलुक्की अपने जीवन से इतना ऊब गया था कि अपने को परम दुःसाहसी समझने लगा था। उसी दुस्साहस में मन ही मन तय कर लिया था कि उम्र आने पर वह राजा के सामने पेश होकर मुगा खाउरा बनने का अनुरोध करेगा।”⁶

लेखक आगे लिखते हैं कि- “उस साल वह सत्ररह वर्ष का हुआ तो गर्मियों के बीतने और बरसात शुरू होने से पहले जो ढोल बजा और गाँव के बीचो-बीच इलाके में उपलब्ध सबसे ऊँचे बाँस को गाड़ दिया गया तो खरलुक्की उस पर चढ़कर कूदने के लिए आगे आया। गाँव का लिडदोह कई महीने से उसे अप्रत्यक्ष रूप से सही, उस बाँस पर से कूदने के लिए प्रोत्साहित करता आ रहा था। इसमें यह भाव भी था की बड़े बहादूर बनते हो; डाड² के मौके बाँस पर चढ़कर कूदो तब न! लेकिन खरलुक्की लिए यह महत्वपूर्ण नहीं था। महत्वपूर्ण यह था कि कूद के बाद एक सप्ताह तक गाँव में उपलब्ध सर्वोत्तम भोजन और वस्त्र प्रदान किया जाता था पूरे परिवार को। गाँव के युवाओं का उतने दिन तक नायक माना जाता था। उसी लोभ में खरलुक्की जब बाँस की ऊँचाई से दो पोरसा जमीन से ऊँचे पर तने जाल को देखा तो चीख उठा। नीचे उसके माँ-बाप भी चीख उठे। लेकिन उन चोखों को ढोल-ताशे के समवेत स्वर और उपस्थित समुदाय की वीर-गर्जना ने दबा दिया। खरलुक्की की आँखों के सामने अंधेरा छा गया और कूदने को कौन कहे मुर्छित होकर गिर पड़ा। लेकिन तब ढोल-नगाड़े और तेजी से गरज कर बज उठे। लोगों की वीर-गर्जना रणहास में बदल गयी। घंटों बाद होश आया तो बोला: देवी माँ सीधे अपने पास मेरे प्राण ले गयी थीं और कही थीं: बेटा! बेकार ही इस उत्सव में शरीक हुए-मेरा इरादा तो इस बार गाँव को उजाड़ कर देने का था। पर तुम्हारे साहस और कुर्बानी पर सात बार न्योछावर! इस बार गाँव को मालामाल कर दूँगी। तू कोपिली माई का खावरा बनने

लायक हैं। जा, राजा के सामने जा। माई को बहुत दिनों से अच्छे सपूत का साथ नहीं मिला हैं। उनकी गोद में जा।”⁷

लोग ऐसे प्रकृतिक और लाचारी का जीवन जीने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। जिसे वे चाहकर भी नहीं बदल सकती है। और ऐसे स्थिति में अंधविश्वास लोगों के मन में आसानी से पनपने लगती हैं।

'उफ़्फ़' प्रमोद कुमार तिवारी द्वारा लिखी उपन्यास है। इस उपन्यास का मूल कारण और इसकी लिखनी धरातल को उजागर किया गया है- "जब जीवनानुभव और रचनाशीलता का मेल होता है तब ' उफ़्फ़ ' जैसा उपन्यास जन्म लेता है । प्रमोद कुमार तिवारी ने प्रामाणिक अनुभव के आधार पर असम के जीवन में मचे घमासान को ' उफ़्फ़ ' में पूरे विस्तार से विवेचित किया है । प्रशासन, परम्परा , जीवनशैली, राजनीति और राष्ट्रीय अखंडता आदि विज्याओं के सहारे यह उपन्यास एक बड़ा रचनात्मक वृत्त बनाता है । इसकी परिधि पर हैं राष्ट्रीय चिन्ताएँ और केन्द्र में है 'भारतीयता' । प्रमोद कुमार तिवारी ने 'इनसाइडर' की तरह ' उफ़्फ़ ' की रचना की है। यह उपन्यास प्रशासन में निहित विरूपताओं को सफलतापूर्वक उजागर करता है। व्यंग्य, विडम्बना और क्षोभ इसके रचनात्मक लक्षण बन गये हैं । प्रमोद की भाषा प्रायः निरलंकार है और यही सहजता उनकी शक्ति भी है। राजनैतिक विवेक के साथ लिखा एक महत्वपूर्ण उपन्यास । शक्ति, सत्ता और धन के समीकरणों से निर्मित व्यवस्था का चरित्र दिन-ब-दिन जन विरोधी होता जा रहा है । शिखर से धरातल तक एक विचित्र ' विसंगत व्यवस्था ' की उपस्थिति ने सामान्य जन को स्तब्ध कर रखा है । प्रमोद कुमार तिवारी

ने 'उफ़फ' में उपन्यास विधा को विमर्शमूलक तेवर प्रदान कर सके हैं, जो कि उल्लेखनीय हैं।⁸

उपन्यास में ही प्रमोद जी ने राजनैतिक माहौल का जिक्र किया। जहाँ प्रशासन और जनता के भावों में विरोधाभास झलकती है। वातावरण की गर्मा-गर्मी और फसलों द्वारा असम के लोगों के लिए व्यंग्य की भावना देखने को मिलती हैं।

"दिव्य बरफूकन अमर रहें.... अमर रहें, अमर रहें....

सितंबर की चिपचिप दोपहर में लोकतंत्र की डहडह लपटें। जजेज फिल्ड में उमड़ी चली आयी हजारों की भीड़। आज बारह साल पूरे हुए हैं उसके प्रिय नेता के मुख्यमंत्रीत्व के मंच से चीके गये हर नारे को चीखती है।

‘संघर्ष के कारण हों

और संघर्ष नहीं हो

कोई बचा भी है कि नहीं

इस वेदना का नागरिक...’

“कविताएँ भी लिखता है बदमाश ?”

मंच के बगल में बने शामियाने में सोफे में पसरे हुए दिव्या बरफूकन के चेहरे पर अचरज का भाव।”⁹

लेखक आगे बातों को जोड़ते हुए लिखते हैं-

“लिखने वाला बदमाश इसलिए क्योंकि एसपी था एक जिले का।

"इस रैली को निशाना बना कर ही लिखा है, सर।"अम्लान गोगोई ने अखबार उनके सामने फैला दिया है," रैली की आलोचना वाले लेख के ठीक नीचे यह कविता छपी है।”

व्यवस्था के वसुओं का आदेश गया था, सत्तापक्ष के इस जश्न में वेतन भत्ता पक्ष की भी सक्रिय भागीदारी होनी थी। हरेक डीसी और एसपी को कम से कम पचास गाड़ियाँ उपलब्ध करानी थी आज के विराट जन समागम के लिए। अद्वैत रंजन ने नहीं करायी थीं।”¹⁰

रैली की जैसी आयोजन करनी चाहिए थी। वैसा तो उपलब्ध कराया ही नहीं था। सर रैली आयोजनकर्ताओं का मज़ाक उड़ाने के एक कविता भी लिख डाली थी। जो कुछ इस प्रकार है-

“आगे क्या लिखा है ?”

‘ मुँह काला कर आयी हैं

वेदनाएँ है जिनकी

बेटिकट यात्री लोकतंत्र की रेल के

देखते ही नहीं

कहाँ क्या छूट गया

अपना ही कोई संकल्प

अधबना टूट गया।’

“ठीक ठाक लिखता हैं।”

“लेकिन, सर....”

“ मेरा तो लिखना-पढ़ना ही छूट गया इन झमेलों में।” कुढ़न का भाव उगता है दिव्य बरफूकन के चेहरे पर।”¹¹

उपफ़्र घुटन, दुख, कष्ट, पछतावा और विस्मयता को जताने वाले सूचक कहलाते हैं। जो कि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि से ही स्पष्ट समझ आ जाता है। उपफ़्र लोगों के मुँह से निकलती है, जब अपनी या किसी दूसरे की मानसिक या शारीरिक पीड़ा देखकर या फिर कोई भयानक दृश्य देखकर मुँह से निकालने वाला शब्द हैं।

‘आहुति’ श्रीधर पांडे द्वारा लिखी गई उपन्यास हैं। यह पूर्वोत्तर राज्य मणिपुर पर लिखी गई उपन्यास हैं। यहाँ मणिपुर की सामाजिक, सांस्कृतिक का हर पक्ष पर लेखक ने प्रकाश डाला हैं। यहाँ मुख्यता: दो प्रमुख पात्र है चानु और मनोज। और उसी के प्रेम कहानी के साथ मणिपुर की स्थिति को लेखक ने भी पिरोया हैं।

“कहानी मुख्य रूप से भारत के उत्तर पूर्व में बर्मा की सीमा पर अवस्थित पंथी हिंसा तथा राजनीतिक अस्थिरता से मणिपुर की राजधानी इंफाल घाटी में केंद्रित हैं।

मणिपुर का सांस्कृतिक इतिहास सैकड़ो साल पुराना है। हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं से उत्तर-पूर्व के इस क्षेत्र में दुर्गम पहाड़ों को लेकर लोग पहुँचे होंगे। घाटी के चारों ओर पहाड़ों पर रहने वाली जन-जातियाँ सभ्यता विकास में घाटी- निवासियों से हजारों वर्ष पिछड़े रह गई, जबकि घाटी के लोगों ने कृषि ज्ञान प्राप्त कर लिया और कृषि पर आधारित उनका समाज पन्द्रहवीं सदी में ही स्वतंत्रा की स्थापना कर चुका था ।

एक मध्यवर्गीय ‘मैतेयी ’ (मणिपुरी) परिवार की लड़की कनुप्रिया चानु का संपर्क हिन्दी भाषी-प्रदेश के नवयुवक मनोज से मिलती है। मनोज बिहार के एक किसान परिवार का बेटा है। स्वतंत्रता के चालीस वर्ष बाद भी उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन में होती आर्थिक विषमता तथा साधारण किसान परिवारों की बढ़ती निर्धनता के बीच अधिकारी के दंश से पीड़ित

मनोज गाँव छोड़ने को बाध्य होता है। गाँव और प्रदेश से हजारों कोस दूर इंफाल में मनोज को शिक्षक की नौकरी मिल जाती है।

मनोज के संपर्क से चानु की शिक्षा प्रारंभ होती है। चानु की निकटता से मनोज को मणिपुर के परिवार तथा समाज को समझने का अवसर मिलता है।”¹²

यह चानु और मनोज की गाथा है। जहाँ मनोज बिहार का लड़का था। और मणिपुर में बाहरी लोगों से प्रेम संबंध जोड़ना गलत माना जाता था। पर मनोज और चानु मणिपुर समाज के विरुद्ध जाकर आपस में शादी कर लेते हैं। जिससे भी मणिपुरी समाज के लोग क्रोधित हो जाते हैं और दोनों की हत्या के इरादे से गोलियों की वर्षा कर देती है। इसमें चानु अपनी प्राणों की आहुति देकर मनोज को बचा लेती है।

“तड़-तड़-तड़-तड़.... गोलियाँ छूटती रही, चानु मुंह के बल मनोज के ऊपर लेटी थी। एक-एक कर गोली चानु की पीठ में धंसती गई। नीचे से मनोज ने निकलने की कोशिश की पर चानु ने बांहें फैला दोनों ओर से उसे पकड़ रखा था। मनोज ने अपनी बांहें फैला रखी थी। एक गोली छिटककर मनोज की बांह में लगी। पलक झपकते सबकुछ हो गया। गोली चलाने वाले निकल कर रात के अंधेरे में गुम हो गए।”¹³

मनोज को यह विश्वास था कि चानु का यह बलिदान बेकार नहीं जाएगा। एक दिन यह हिंसा, घृणा सब समाप्त हो जायेंगे। लोग अपने विचार बदल लेंगे और यह रूढ़िवादी सोच विलुप्त हो जायेंगे। इसी आशा और सकारात्मक सोच के साथ उपन्यास की समाप्ति हो जाती है।

“चानु का बलिदान घृणा और हिंसा को मिटा कर रहेगा, हमें उसका संदेश देश के कोने-कोने में ले जाना हैं।”¹⁴

चीज़े चाहे जितनी नकारात्मक सोच से शुरू हुई हैं। अंत में सकारात्मक, सामाजिक परिवर्तन वाले विचारों के साथ समाप्ति हुई हैं। जो कि इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य था।

'रक्तयात्रा' भिक्खू द्वारा रचित नागा समाज पर केंद्रित उपन्यास हैं। जैसा कि नाम से ही समझ आ जाता है कि यह रक्त, हिंसा और बदले की पृष्ठभूमि पर तैयार की गई हैं। लेखक लिखते हैं-

“भूमिका को रक्तवेदी शीर्षक से अभिहित करना कुछ नाटकीया-सा लग सकता है, पर उपन्यास के 'रक्तयात्रा' नाम से तो इसकी निश्चित संगति है ही। प्रस्तुत उपन्यास की कथा-यात्रा नागाओं की कई शतकों की मानवीय आकांक्षाओं और पीड़ाओं की इस औपन्यासिक प्रस्तुति के रूप में संपन्न होती हैं। नागाओं के हेड हंटर पुरखों के जीवन से लेकर राजनीतिक आकांक्षाओं से उत्तेजित आधुनिक नागाओं के जीवन-बोधों को उपन्यास की विधा में समेटना यद्यपी इस लेखक की महत्वाकांक्षा ही थी, फिर भी मैंने यह दुःसाहस एक सत्संकल्प से ही प्रेरित होकर किया। नागा-भूमी हमारे देश का ही एक अंचल है और नागा हमारे संश्लिष्ट राष्ट्रीय जीवन का अंग, फिर भी इस अंचल और इस जन-समुदाय के बारे में शेष भारत में स्वल्प जानकारी हैं।”¹⁵

वे आगे बताते हैं- “पहली दिसंबर ईसवी सन् उन्नीस सौ तिरसठ को भारतीय संघ के अंतर्गत सोलहवें राज्य के रूप में नागालैंड राज्य की स्थापना के साथ ही इस उपन्यास का अंत हो जाता है, पर नागाओं के अंडरग्राउंड वर्ग की यात्रा समाप्त नहीं होती। इस प्राक्कथन के समय

अंडरग्राउंड नागाओं के नेताओं और भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में नागालैंड के राज्यपाल के मध्य शिलांग में हुई समझौता-वार्ता के परिणामस्वरूप अंडरग्राउंड नागाओं की समस्या के अंतिम समाधान की आशा यद्यपि बलवती हो उठी है, फिर भी निश्चिन्तात्मक रूप से कुछ कह सकना कठिन है। इन बारह-तेरह वर्षों में अंडरग्राउंड नागाओं का यही प्रयास रहा कि इस समस्या को अंतर्राष्ट्रीय रूप दे दें। जपु फिजो जब स्वदेश छोड़कर पाकिस्तान गया तो उसका यही प्रयास था। पाकिस्तान के बाद वह इंग्लैंड गया और ब्रिटिश नागरिकता स्वीकार करके भी नागा समस्या का केंद्र बना रहा। इंग्लैंड से बाहर अमरीका तक में उसने भारत के विरुद्ध प्रचार किया। उसकी यही सतत चेष्टा रही कि नागा समस्या को राष्ट्रसंघ में उठाकर उसे अंतरराष्ट्रीय प्रश्न बना दे। रेवरेंड मार्टिन स्कॉट जैसे मिशनरी ने भी फिजों का साथ दिया। पीस मिशन की गतिविधियों के दिनों में स्कॉट की भूमिका आपत्तिजनक और अविश्वसनीय ही नहीं बल्कि स्वयं नागाओं के हितों के विरुद्ध थी। फिजोवादियों के अतिरिक्त शेष नागाओं से उसे समर्थन नहीं प्राप्त हो सका। उसने इंग्लैंड के समाचार-पत्रों में भारत के विरोध विष-वमन किया। पर झूठ के पांव नहीं होते। फलतः कालांतर में स्कॉट की आवाज भी क्षीण पड़ गई।”¹⁶

जाहिर सी बात है, जब अपने देशवासी भारत छोड़कर विदेशों में शरण लेने जाने लगेंगे। तो दुश्मन देश बदला और बदनामी के मंसूबे से उस देश के विरुद्ध दिखायेंगे ही।

“किंतु उन्नीस सौ सड़सठ के बाद के कई वर्ष शांतिप्रिय नागाओं के लिए अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण रहे। छुपे नागाओं में ऐसे तत्व थे जो चीन से सहायता लेने के समर्थक थे। यद्यपि चीनी कम्युनिज्म से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं थी, फिर भी वे चीन से सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक सहायता लेने के पक्ष में थे। इन लोगों के प्रयास से तथाकथित ब्रिगेडियर थिनुजिले और नागा नेशनल कौंसिल के सेक्रेट्री मुईबा के नेतृत्व में कोई तीन सौ नागा बर्मा के मार्ग से चीन के

यून्नान प्रांत में पहुंचने में सफल हुए। ए० केविचुसा मध्यस्थ रूप में छुपे नागाओं के संपर्क में था। उसने चीन से सहायता लेने का घोर विरोध किया। पर उसका कोई असर नहीं हुआ।

थिनुजिले ने चीन से लौटकर आए छुपे नागा नेताओं को जब यह बताया कि चीन खुलकर उनकी सहायता करने को तैयार है तो तथाकथित जनरल मौवु, जिसे पाकिस्तान से लौटते समय गिरफ्तार कर लिया गया था और अंतरिम समझौता के फलस्वरूप क्षमादान के बाद छोड़ दिया गया था, एवं इस्सक सु के नेतृत्व में फिर सैकड़ों अंडरग्राउंड सैनिक प्रशिक्षण और सैनिक सहायता लेने चीन जा पहुँचे।”¹⁷

कैसी अशांति का माहौल था भारत अपने देशवासी दुश्मन देशों से सहायता ले रहे थे। अपने ही भारतवासियों को खत्म करने के लिए। लेखक आगे बताते हैं-

“चीनी सहायता से बल पाकर अंडरग्राउंड नागाओं की आतंकवादी गतिविधियों से आम नागाओं को बेहद मुसीबतें झेलनी पड़ी। राज्य में हिंसा का वातावरण प्रबल हो उठा। चीन को लेकर स्वयं अंडरग्राउंड नागाओं में फूट पड़ गई। दीखु, त्वेनसांग और सेमा क्षेत्र के अंडरग्राउंड नागाओं ने इसी प्रश्न पर अपनी पृथक्ता घोषित कर दी। तथाकथित जनरल केटो ने फिजोवादियों से पृथक् अलग ही अपनी सैनिक सरकार बना ली और वह उग्र तत्वों के विरुद्ध भारतीयों सेनाओं के साथ सहयोग करने लगा।

इस अवधि में जितना रक्तपात हुआ कदाचित्त इससे पूर्व विगत बीस वर्षों में कभी नहीं हुआ था। सुरक्षा सेनाओं ने भी कड़ी कार्रवाई की। कोहिमा से कोई आठ मील दूर जोतसोमा की पहाड़ी पर छुपे नागाओं के फौजी कैंप को नष्ट कर दिया गया। इस कैंप में चीन में प्रशिक्षण प्राप्त नागा दूसरे अंडरग्राउंड नागाओं को ट्रेनिंग भी देते थे। इन छुपे नागाओं पर माओत्से तुंग के विचारों का कितना प्रभाव था यह उनकी डायरी के अंशों से स्पष्ट हो जाता था। 'हम युद्धों

के पक्ष में नहीं, पर युद्धों से ही युद्ध मिटाए जा सकते हैं। हथियारों को खत्म करने के लिए जरूरी है कि हथियार उठाए जाएँ' इत्यादि।

जनरल केटो और फिजोवादियों का संघर्ष तीव्र हुआ। केटो के अनेक पक्षधरों की धोखे से हत्या कर दी गई। केटो को भी एक दिन कोहिमा के बाज़ार में गोली मार दी गई। उग्रतावादी खुगातो सुखाई के अनुयायियों ने प्रेजीडेंट म्हेस्यों और राम्यों को भी छुपे नागाओं की फ़ैडरल सरकार के छद्मेमा स्थित हैड क्वार्टर से गायब कर दिया।

चीन से प्राप्त अति आधुनिक हथियारों के प्रयोग ने इस संघर्ष को नया आयाम दे दिया। छुपे नागा माओत्से तुंग के इन विचारों से प्रेरित होकर कि 'लड़ो, असफल होने पर फिर लड़ो, जब तक विजय न पा ले लड़ते जाओ, गहरी क्षति उठाकर भी संघर्ष करते रहो।' यह निरर्थक संघर्ष आज समाप्त प्राय है। नागालैंड में कई आम चुनाव हो चुके हैं, फिर भी फिजो की ओर उन्मुख असंतुष्ट तत्व अपनी हरकतों से बाज नहीं आए हैं। अब शिलांग समझौते के क्रियान्वयन से ही इस समस्या के अंतिम समाधान की आशा है।¹⁸

कभी न खत्म होने वाले अशांति का रूप ले चुकी थी। अंडरग्राउंड नागा चीनी सहायता पाकर आतंकवाद सा माहौल बना रहे थे। और आम जनता इन सबके बीच पीस रहे थे। उनका तो जीवन अंधेरे में गुजर रहा था। इसी विषमताओं के कारण नागाओं के बीच फूट पड़ने लगे और अंडरग्राउंड नागा भी अलग-अलग समूह में बंट गए। धीरे-धीरे कर यह अपना मुख्य उद्देश्य भूल चीनी गुलामों की तरह ही काम कर रहे थे। और यही कारण था इनके विखराव का।

‘मुक्ति’ डॉ. महेंद्र नाथ दुबे द्वारा रचित उपन्यास है। यह उपन्यास किसी समाज पर केंद्रित न होकर पूरे पूर्वोत्तर को अपने साथ जुड़े हुए हैं। लेखक उपन्यास के अमुख में बताते हैं- “असम की घनी वन संपदा के बीच रहते हुए डॉ. दुबे ने लक्ष्य किया कि राजनीतिज्ञों ने देश के

भूगोल के साथ जो खिलवाड़ किया है, उससे साधारण जनता के कष्टों का बोझ निरंतर बढ़ता रहा हैं। उनका अपना गांव असम के कदार जिले में स्थित है, किंतु असम प्रदेश की राजधानी गुवाहाटी उससे बहुत दूर है, जबकि बांग्लादेश का सिलहट बिल्कुल पड़ोस में हैं। पूरब में मणिपुर की इंफाल, दक्षिण में मिज़ोरम की आइज़ोल, दक्षिण-पश्चिम में त्रिपुरा की अगरतला राजधानियाँ बहुत पास हैं। यहां तक कि देश की राजधानी दिल्ली की अपेक्षा बांग्लादेश की राजधानी ढाका क्या मायन्मार (बर्मा) की राजधानी रंगून तक पास में है। बँटवारे ने हालात ऐसे कर दिए कि एक छोटे से गलियारे के अलावे शेष भारत की अपेक्षा असम के इन सप्त प्रदेशों की सीमाएँ चारों ओर से भूटान-तिब्बत-चीन-मायन्मार और बांग्लादेश से ही मिलती हैं। चारों ओर से अन्यान्य देशों से घिरे इन प्रदेशों से शेष देश ऐसा अलग-अलग रहता हैं कि देश की स्वतंत्रता की लड़ाई से लेकर अब तक की उसकी गतिविधियों के बारे में कोई कुछ जानना ही नहीं चाहता, जबकि जितनी जीवंतता से ये प्रदेश स्वयं समूचे देश से जुड़े रहकर स्वतंत्रता के लिए लड़े और अब भी जीवन संघर्ष कर रहे हैं, वह बड़े ही जीवट की है।¹⁹

वे आगे जोड़ते हैं, “14 अगस्त, सन् 1947 की अर्धरात्रि को स्वतंत्रता की उद्घोषणा से लेकर 1962 में चीन के आक्रमण की पूर्व वेला तक के कालखंड में यह समूचा क्षेत्र किस तरह संघर्षशील रहा, इसी का एक दस्तावेज़ है यह उपन्यास 'मुक्ति'।”²⁰

‘मुक्ति’ उपन्यास में बहुत से समस्याओं का उजागर किया गया है। मानव मूल्य का हनन होना। स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार करना। उन्हें वेश्यावृत्ति के धंधों में जबरन धकेलना। देह व्यापार, और हिंदू मुसलमान आपसी दुश्मनी को भी उजागर किया है। जब देश विभाजन हुआ

तो बहुत से लोग अपने सगे-संबंधियों और परिवारों से बिछड़ गए थे। ऐसे में जो स्त्रियाँ इस स्थिति का शिकार हुईं। उनका शोषण फिर जिस तरह से किया गया। वे मृतकों की स्थिति में पहुँच गईं। जानवरों से भी बदतर हालत हो गई थी इनकी। भेड़िये इन्हें हर रोज नोंच- नोंच कर खाते थे। ऐसी तमाम तरह की समस्याएँ और इनसे मुक्ति की राह में निरंतर संघर्ष करते रहने की गाथा है, मुक्ति उपन्यास।

‘ देश भीतर देश’ प्रदीप सौरभ द्वारा रचित उपन्यास हैं। यह मूलतः असम राज्य पर केंद्रित करके लिखा गया उपन्यास है। असम में फैली अशांति उल्लास संगठन का निर्माण। और अपने प्रान्त की सुरक्षा और आज़ादी की कामना में निरंतर संघर्ष करते युवा पीढ़ी। हिंसा और मार-काट के माहौल से असम को उन्नत और स्वतंत्र राज्य बनाने की चाल में युवा पीढ़ियों का अपने जान पर खेल जाना आदि बातों का जिक्र है। अपने ही देश में रहते हुए भी एक अलग देश की भावना। अपने भीतर एक अलग देश संजो लेना। उपन्यास के आमुख में 'सुधीश पचौरी' ने उपन्यास का विश्लेषण करते हुए लिखा है-

“ यह देश के भीतर मौजूद 'देशों' की कथा है। यह एकदम सामयिक और सार्थक है। देशों के भीतर धीरे-धीरे उग आने वाले देशों की स्थानीयतावादी अस्मिताएँ जब देश के राष्ट्रवादी व्यवहार से प्रतिसंवाद करती है तो पैदा होने वाले तनावों, दबावों के बीच मानवानुभव बेहद चिड़चिड़े, कटखने, तिरछे और अनेक बार कंट्रोल से बाहर हो जाते हैं। देश भीतर देश की कथा ऐसे ही असमिया समाज के बीच उगती है। और अपनी उत्कट तीव्रता में हर प्रसंग में बताती चलती है कि भारत के केंद्र और उसके हाशियों के बीच, हाशियों में जीवित समाजों के बीच कितना टेढ़ा और नाराज, हिंसक उन्तःसंवाद चलता रहता है। जहाँ दिल मुश्किल से मिलते हो वहाँ मानवीय संवाद नहीं होता। वन्दूक, सन्देह और कानून से जो संवाद होते हैं उनसे दिल नहीं

जुड़ते। स्थानीय अकेलापन बढ़ता है। कथा नायक विनय की कहानी इस कथा में एक विकट कहानी है। यह एकदम नया नायक है जो 'हाशियों' से नया संवाद स्थापित करता है जिसमें प्रेम केंद्रीय भूमिका निभाता है। पूर्वोत्तर हिंदी में विषय कभी नहीं बना। उस समाज की संस्कृति के बीच, उसके इतिहास- भूगोल के बीच इस नये-निराले प्रेम संवाद का अनूठापन हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाला है।”²¹

असम में असंतुलन का माहौल बन गया था। मिल्की के पत्र से यह साफ पता चलता है कि असम (पूर्वोत्तर राज्य) भारत का हिस्सा होते हुए भी बाहरी लोगों ने इनके साथ बुरा व्यवहार किया है। इनको रक्षा और सुरक्षा देने के स्थान पर इनका शोषण किया है। जिसके कारण यहाँ के लोगों में बाहरी प्रदेशों के लोगों के प्रति अविश्वास की भावना प्रगाड़ रूप में देखने को मिलती है।

“मैं कैसे विश्वास करूँ कि मेरा तुम्हारा देश एक है। यदि ऐसा होता तो तुम्हारे ही देश का वासी पंजाबी कमांडो बनकर मेरे घर के भीतर नहीं घुसता। तुमने मेरे भीतर अनगिनत राग बजाये, लेकिन उन मीठे अहसासों से कहीं ज्यादा मुझे वो पंजा याद आता है, जिसने मेरे वक्षों को बेरहमी से दबाया था। मुझे नहीं भूलता है कि मेरे लोगों को तुम्हारे लोगों ने चाय की पत्ती के बदले नमक दिया। एक मीटर कपड़े को चारों तरफ से नाप कर चार मीटर की कीमत वसूली। हमारे जल, जंगल, जमीन को लूटा। हमारे बेगुनाह लोगों को तुम्हारी फौज ने बेरहमी से शहर से लेकर जंगल तक मारा। लूट और लूट ही तुम्हारा सच है। यही नहीं मेरी बहन की लाश दिल्ली से यहाँ आयी थी। गुड़िया सी थी वह। भोली - भाली। उसे एक तुम्हारे यहाँ का लड़का दिल्ली ले गया था। ऊँच-ऊँचे सपने दिखा कर। लेकिन उसने उसे दिल्ली में बेच दिया। मेरी बहन ने बहुत प्रतिरोध किया था। उसकी लाश में नाखूनों और हंटरों की चोटें उसके प्रतिरोध की कहानी बता रहे थे। उसने किसी भी कीमत पर अपना शरीर भेड़ियों को

सौंपने से मना कर दिया था। प्रतिरोध के दौरान वह तुम्हारे दिल्ली के जीबी रोड के एक कोठे से कूद गयी थी। उसका शरीर क्षत -विक्षत था, जब उसकी लाश एक स्वयंसेवी संगठन के माध्यम से गुवाहाटी आयी थी। ऐसे देश में मैं भला क्यों रहने जाती। मेरे अन्दर तुम लोगों को लेकर एक गहरी अविश्वास की खाई है।”²²

मिल्की का अपने असम के प्रति गहरी लगाव देखने को मिलती है। वह अपना असम कभी नहीं छोड़ना चाहती है। किंतु उसे विनय से भी गहरा प्यार है, और वह चाहती है कि विनय उसके असम में बस जाये। मिल्की लिखती है,

“बावजूद इसके मैंने तुम्हें प्यार किया । मुझे तुम औरों से अलग लगे । तुमने हमारी जीवन शैली को अपनाया । हमारी भाषा में हमसे बात की । तुमने मेरे लिए असमिया में कविताएँ लिखी । लेकिन तुम भी यहाँ के न हो सके । औरत ही हमेशा आदमी की पिछलग्गू क्यों बने। औरत की इच्छा पर भी तो पुरुष फैसला ले सकता हैं । तुमसे यहाँ बसने के सिवा मैंने और कुछ भी नहीं माँगा था । तुम मेरी छोटी से इच्छा का सम्मान नहीं कर सके । तुम्हारे लिए हमेशा अपनी तरक्की की चाह सबसे बड़ी रहीं । मैं कभी भी तुम्हारे देश नहीं जा सकती ।जाऊँगी भी नहीं । वहाँ मेरी बहन के हत्यारे हैं । वहाँ के लोग मेरी भी इज्जत लूट सकते हैं । और मुझे यकीन है कि तुम भी उन्हें रोक नहीं पाओगे । मैं तुम्हें बहुत - बहुत प्यार करती हूँ । औरत जीवन में सिर्फ एक बार प्यार करती है, बाकी तो सब जीवन का गणित है। मैंने अपना सब कुछ तुम्हें सौंप दिया । मेरे भीतर का प्यार यदि तुम्हारा है, तो मेरे भीतर की नफरत भी तुम्हें कबूल करनी पड़ेगी । मुझे यकीन है कि मेरे प्यार की जीत होगी । तुम लौटोगे जरूर । मैं पल-पल तुम्हारे साथ जीती - मरती हूँ। मेरे भीतर की दुनिया तुम्हारी हैं।

सिर्फ तुम्हारी ... ”²³

दरअसल देश भीतर देश का मूल मतलब अपने ही भीतर एक अलग दुनिया बसा लेना था। जो कि मिल्की द्वारा विनय को समझ आने लगी थी। लेखक लिखते हैं-

“विनय को अब समझ आ रहा था कि प्रेम की असली परिभाषा क्या है। मिल्की ने अपने प्रेम में खुद की आहुति दे दी थी।”²⁴

मिल्की के आखिरी खत में अपने भीतर की तड़प और घुटन को जाहिर किया हैं-

“ पुबसरणिया पहाड़ की तरह

मैं भीतर - भीतर सिकुड़ रही हूँ

मेरे भीतर का दर्द दरकने लगा है ...

मेरे अन्दर उन्मत्त बहने वाली

ब्रह्मपुत्र नदी

थमने को है ...

मेरे अन्दर हरे रहने वाले

कामाख्या के जंगल

सूख रहे हैं

सातवीं बार अब जब आओगे तुम

तुम्हें मिलेगा

हर ओर

शान्त - एकान्त ...

पसरी हुई खामोशी

और इस सूखे में

मैं तुमसे सिर्फ इतना कहना चाहती हूँ आखिरी बार मैं तुमसे प्रेम किया है

खालिस प्रेम । ”²⁵

इस आखिरी पत्र ने विनय की दुनिया बदल दी। वह भी किसी अज्ञात देश में खो गया था।
लेखक आगे लिखते हैं -

“ इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद उसे अपनी तमाम प्रेम कविताएँ बेमानी लगने लगी थी । उसकी आँखों के सामने सघन अंधेरा छा गया था । उसे न तो मिल्की का देश दिख रहा था और न ही अपना देश । वह आकाश गंगा में मिल्की की तरह उल्काजों से टकरा कर पृथ्वी पर बिखर जाना चाहता था । मिल्की में मिल जाना चाहता था । उसके चारों तरफ रास्ते तो थे, लेकिन उसे कोई रास्ता दिख नहीं रहा था। उसके बाद वह अपने देश में रहा या मिल्की के देश में, किसी को नहीं मालूम । वह रहा भी कि नहीं यह भी जानने की किसी ने कोशिश नहीं की ।”²⁶
दरअसल सभी अपनी-अपनी दुनिया में कैद हैं। किसी को किसी का प्रवाह नहीं है। परंतु सच्चे प्रेम की प्रति समझना अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा अपने ही भीतर कई तरह देश बनाये, अपने में ही खो जायेंगे। इस उपन्यास का बड़ा ही दुखत अंत हुआ। मानव मन के भीतर घुटन का यह उपन्यास की सच्ची तस्वीर खींचता है।

‘ उत्तर पूर्व ’ लाल बहादुर वर्मा द्वारा लिखी गई उपन्यास है। 'उत्तर पूर्व' मुख्य तौर पर मणिपुर राज्य पर केंद्रित उपन्यास है। लेखक मणिपुर प्रदेश के बारे में बताते हुए उपन्यास की भूमिका लिखते हैं-

“अर्जुन को ससुराल कहे जाने के बावजूद, सुभाषचन्द्र बोस के आज़ाद हिन्द फौज की भारत विजय योजना के एकमात्र विजय स्थल (मोयरांग) होने के बावजूद और दशकों से विद्रोह की चुनौती प्रस्तुत करने के बावजूद मणिपुर ' इंडिया' में अधिकांशतः अज्ञात ही है, जबकि उसे और उस जैसों को जानना-समझना भारत को जानने - समझने - ताकि उसे अपना समझा जा सके, की पूर्वशर्त लगता है । इसलिए मणिपुर की यात्रा, सांस्कृतिक सैर ही सही, करने, करवाने की जरूरत महसूस हुई । भौगोलिक यथार्थ में भ्रमण के दौरान एक मानसिक यथार्थ भी उसी सूत्र में पिरोया जाने लगा । जीवन के महत्तम प्रश्नों के उत्तर हमें नहीं मालूम । उत्तर क्षितिज लगने लगे जहाँ पहुँचते ही वे आगे बढ़ जाते । प्रश्न बड़े होते जा रहे थे और उत्तर उनमें समाते जा रहे थे । तब लगा कि मैं तो उत्तर पा लेने के पूर्व की जिज्ञासा, आवेश और आशा में जी रहा हूँ।”²⁷

मणिपुर में विदेशीपन की स्वीकृति को अपना सम्मान समझते हैं। 'इबोहल' उपन्यास का पात्र इसी असमंजस में फँसा था। और अपनी पढ़ाई कर रहा था। लेखक लिखते हैं- “उसे अंग्रेजी अच्छी तरह नहीं आती थी । वह कोशिश कर रहा था उसे बेहतर बनाने की । पर उसे यह अपमानजनक लगता कि इतनी पुरानी अपनी भाषा होते हुए भी पढ़ाई अंग्रेजी में क्यों होती है । उसे इस बात पर आश्चर्य होता कि मणिपुरी बुद्धिजीवी प्रायः अंग्रेजी माध्यम और अंग्रेजी शिक्षा के पक्षधर थे । उसे नहीं पता था कि ' इंडिया ' में भी अधिकांश पढ़े लिखे लोग अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी माध्यम के ही समर्थक थे और अपमानित नहीं होते थे।”²⁸

वह मैतेई था, किंतु इंडियन होने से कठिनाई थी। क्योंकि बाहर से आये शिक्षकों का उसके प्रति सही व्यवहार नहीं था। वे लिखते हैं। "इबोहल ने खूब मेहनत से पढ़ना शुरू किया । उसके

सवालों से विभाग के शिक्षकों , खास तौर पर बाहर से आए शिक्षकों , को परेशानी होने लगी क्योंकि उन्हें मणिपुरी नहीं आती थी और इबोहल अंग्रेजी में अपनी बात समझा नहीं पाता । जितनी अंग्रेजी उसे आती थी उतने में उसकी बातें ' ऐबसर्ड ' लगने लगीं । उसकी बात समझने के लिए थोड़ा धैर्य , स्नेह और तदनुभूति की जरूरत थी । किस शिक्षक को फुरसत थी कि वह विद्यार्थी को लेकर इतना सिर खपाए - हालांकि मणिपुर में पोस्ट ग्रेजुएट स्तर पर एक क्लास में थोड़े ही विद्यार्थी होते थे । मणिपुरी शिक्षक अवश्य उसकी मदद कर सकते थे पर वे उसे झट्की और बहका हुआ समझते । फिर वह क्या करे !

फिर भी वह खुश था - सन्तुष्ट था अपने प्रयास से।”²⁹

वे आगे बताते हैं- “मैतेयी, मणिपुरी और भारतीय होने की त्रिविधा से वह जूझ रहा था । उसे समझ में आ रहा था कि वह नैसर्गिक रूप से मैतेयी है , थोड़ी कोशिश से वह मणिपुरी भी हो सकता था । परन्तु इंडियन होने में कठिनाई होती थी । मणिपुरी होने में वह पूरी तरह मैतेयी पहचान और उसकी प्राथमिकता बनाए रख सकता था , पर भारतीय होने में उसे अपनी मैतेयी और मणिपुरी पहचान को कम करना पड़ता था । ऐसा गणित और रसायन उसके पल्ले नहीं पड़ता था। उसके लिए जो फार्मूले उसे किताबों और सेमिनारों में मिलते थे, वे विचार होते थे व्यवहार नहीं।”³⁰

इस तरह के माहौल में इबोहल कुछ करने की चाह में जूझ रहा था।

‘ जय आई असम’ नवारुण वर्मा द्वारा रचित उपन्यास है। जैसे की नाम से ही स्पष्ट है यह असम के पृष्ठभूमि पर रची उपन्यास है। और अपने असम की जय और सम्मान दिखाया गया है। अपनी भूमि के प्रति सभी के मन में प्रेम भाव रहना स्वाभाविक है। इस उपन्यास में लेखक ने आज़ादी के उपरांत लोगों की मोह भंग की स्थिति को बताया है। विदेशी घुसपैठ की

समस्याएँ और इससे मूल निवासी की अस्मिता खतरे में होने की बात कही गई है लेखक आमुख में लिखते हैं- “राजनीतिक-स्वार्थ की सद्यः पूर्ति हेतु देश का विभाजन करने के पश्चात् विभाजन के पक्षधर नेताओं को अंततः अपनी गलती का आभास हुआ था जरूर, पर तब तक तीर हाथ से निकल चुका था , उसका संशोधन अब कहाँ संभव था? उस विभाजन की महाव्याधि राष्ट्र भर में अनेक उपसर्गों में प्रकट होकर राष्ट्र -जीवन को खोखला करती रही है । पूर्वांचल में इधर विदेशी नागरिकों की घुसपैठ की समस्या की जो आंधी कभी प्रबलतर होकर और कभी धीमीगति से चल रही है; महज राजनीतिक स्वार्थ को सामने रखकर ज्यादातर राजनीतिक उसका जायका लेते दिखाई देते रहे हैं । यह सत्य है कि यह अचानक ही किसी अजनबी आसमान से उतरी विच्छिन्न घटना या समस्या नहीं, देश - विभाजन के परिणाम से उत्पन्न स्थितियाँ ही उसके मूल में है । लगता है , समूचे राष्ट्र की अस्मिता दाँव पर लगाये कुछ नेता फिर वैसा ही जुआ खेलने में जुटे हैं । जबकि मूल प्रश्न असम तथा पूर्वांचल की जनता की भाषा - संस्कृति की रक्षा का है। राजनीति ने इसे कितना धिनौना बना दिया है ।

यह उपन्यास असम आंदोलन की एक झांकी प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास है।”³¹

प्रकाशक की ओर से भूमिका में देश (असम) की अशांति और आंदोलन की गाथा को बताया है। इसमें भी कई वर्ग बन चुके थे। आंदोलन के समर्थन में इसके विरोध वाले, और ऐसे वर्ग भी जोश में कभी शांत रहने का फैसला करने वाले लोग। यह असम के मूल निवासियों के लिए उत्पीड़न की स्थिति भी पैदा करती है। जहाँ शिविरों में असमवासी शरणार्थी बन गए थे। वे कहते हैं- “असम में विदेशियों की समस्या आज केवल असम ही नहीं, पूरे राष्ट्र की समस्या बन गयी है। वास्तव में यह समस्या अत्यधिक जटिल और नाजुक भी है । और ऐसी जटिल तथा

नाजुक समस्या पर तटस्थ भाव से उपन्यास की रचना करना और भी जटिल तथा नाजुक काम हैं। किंतु 'जय आइ असम' के लेखक ने पूरी तटस्थता से असम समस्या की प्रस्तुति इस उपन्यास में की हैं।

उपन्यास में असम आंदोलन के प्रबल समर्थक पात्र भी है और आंदोलन - विरोधी तथा तटस्थ और उदारचेता पात्र भी और हर पात्र अपनी बात को पूरे जोश - खरोश से इस प्रकार बेलाग - लपेट कहता है कि समस्या का बारीक-से- बारीक पहलू पाठक के सामने खुलवा चला जाता हैं।

उपन्यास में ऐसे भी पात्र है जो ' एक भी विदेशी अवैध रूप से जब तक असम की धरती पर रहेगा तब तक हम शांत नहीं होंगे ' का गगन भेदी शपथ - वाक्य बुलन्द करते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी पात्र है जिनका विश्वास है कि ' उग्र जातीयतावादी भावना को भड़का कर असम के अस्तित्व की रक्षा का सपना देखने वाले गलत रास्ते पर हैं।' वे कहते हैं कि ' जन - जातीय, गैर जनजातीय, चाय -मजदूर, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बंगाली, हिन्दुस्तानी, सिख को भी असम में है असमिया है, उन्हें असमिया संस्कृति का अंग मानकर उन्हें इस संस्कृति को अपनाने की ओर प्रेरित करना होगा।"³²

वे आगे लिखते हैं- "लेखक ने असम के तीन शरणार्थी शिविरों के भी यथा-तथ्य रूप चित्रित किये हैं। एक ऐसा भी शरणार्थी शिविर है जहाँ स्वयं असमवासी शरणार्थी बन गये हैं और लोग भूख, ठंडी और भयंकर पीड़ा से बिलबिला रहे हैं। दूसरा चित्र है ऐसे शरणार्थी शिविर का जहाँ विदेशी कहलाने वाले बंगला देशियों की पीड़ा देखने को मिलती है। बंगलादेशी मास्टर अपनी पीड़ा कहता है- ' तीस साल से इसी गांव में मास्टरी की और आज हम बंगला देशी हैं,

विदेशी हैं।... कुछ लोग बीस साल पहले आये, जंगलों में, दल दलों में, कछारों में बसने की फिराक में कितने ही लोग दम तोड़कर मर खप गये। अब हम कहाँ जायें ? हमें गोली मार दो ...।' और एक शिविर है विदेशी कहे जाने वाले मुसलमानों का , जहाँ ' कुछ के शरीर पर चोटों की निशानियाँ थीं , कुछ के शरीर आग से झुलस गये थे ।”³³

यह आंदोलन असम वासियों की अपनी अस्तित्व बचाएँ रखने के प्रश्न और संघर्ष को बार-बार उजागर करती रहती है। और पाठकों को सोचने-विचारने में मज़बूर करने वाला उपन्यास हैं।

अगला उपन्यास है- ' ब्रह्मपुत्र' जो की देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा लिखी गई है। ब्रह्मपुत्र के बारे में बताते हुए देवेन्द्र सत्यार्थी कहते हैं- “असमिया भाषा की एक लोकोक्ति है-

‘ब्रह्मपुत्र जानता है कि चप्पू कितना गहरा जाता है ’

काश! मैं ब्रह्मपुत्र का चप्पू बन गया होता।”³⁴

काका कालेलकर ब्रह्मपुत्र, की विश्वास और प्रसन्नता के भूमिका में कुछ ऐसे व्यक्त किया है। जो अद्वितीय है-“ भारत की नदियों का वर्णन करते हुए व्यासजी ने उन्हें ' विश्वस्य मातर:' कहा है। सचमुच नदियाँ लोकमाता ही होती है। लेकिन सब नदियों को हम माता नहीं कहते। विश्वामित्र ने तमसा नदी को अपनी बहन कहा है। हमारे गाँव की छोटी मार्कडी मेरी छोटी बहन है। हम बचपन में साथ बहुत खेले हैं। यमुना नदी काल भगवान् यमराज की बहन है और गुजरात की ताप्ती या तपती नदी तो यमराज के पिता सूर्यनारायण की पुत्री कहीं जाती है।

हिमालय के उस पार का पानी भी भारत का है , यह सिद्ध करने के लिए सिंधु और ब्रह्मपुत्र - ये हमारे दीर्घकाप नद, मानसरोवर और रावण-हृद से निकलकर हिमालय की लंबाई लांघकर इस पार आते हैं ।

ब्रह्मपुत्र का दर्शन मैंने सदिया और परशुरामफूट (ब्रह्मकुंड) से लेकर गोवालंदी तक और आगे जाकर पद्मा और मेघना के नाम से किया है । ब्रह्मपुत्र न बहन है न माता । वह तो सृजन और संहार की लीला में मस्त एक देवता है । पृथ्वी के भूचाल भी ब्रह्मपुत्र की उसी लीला में मदद करते हैं । युद्ध- धर्म का उत्कर्ष बताने वाले क्षत्रियों का संहार करते - करते ब्राह्मणवीर परशुराम को कहीं भी शांति नहीं मिलती थी । उसे वह ब्रह्मपुत्र के किनारे मिली और यहाँ पर उसने अपने हत्यारे परशु का त्याग किया था ।

ऐसे ब्रह्मपुत्र की लीला का आधार लेकर असंख्य कथा- कहानियां भारतवासियों को लिखनी चाहिए थीं। पुराणकारों ने यथामति, यथाशक्ति कई नदी-कथाएँ हमें दी हैं । ब्रह्मपुत्र के बारे में, और सिंधु के बारे में भी, पौराणिक कथाएं मिलती हों तो मैं नहीं जानता ।

ब्रह्मपुत्र के किनारे प्रचलित एक लोक - कथा के आधार पर श्री हुमायूँ कबीर ने ' नदियों नारी' के नाम से एक कथा लिखी है । ब्रह्मपुत्र के किनारे असम प्रदेश के जो लोक - जीवन पाया जाता है, उसे व्यक्त करनेवाली यह सुंदर नवल कथा श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने हमें दी है ।

‘देवेन्द्र सत्यार्थी’ भारत के लोकगीतों के अनन्य उपासक हैं । उनकी प्रवृत्ति और उनकी निष्ठा की ओर महात्माजी ने मेरा ध्यान खींचा था। अपनी समृद्ध दाढ़ी के साथ फकीराना ढंग से उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया है, और भारत के हर प्रांत के लोकगीत उन्होंने इकट्ठे किए हैं । उनका वह संग्रह एक सागर जैसा हुआ है ।

लोकगीतों द्वारा लोक - मानस और लोक - जीवन का जो प्रगाढ़ परिचय होता है, उसका प्रतिबिंब इस उपन्यास में मिलता है।

हमारे पूर्वजों ने अपने ढंग से नदियों के स्तोत्र और नदियों के पुराण बनाए। अब हमारे जमाने के साहित्यकारों को चाहिए कि वे आधुनिक ढंग से नदियों के स्तोत्र और नदियों के पुराण हमें दे दें। 'सप्तसरिता', 'लोकमाता' और अब 'जीवन - लीला' द्वारा मैंने आधुनिक स्तोत्र बनाने का एक नम्र प्रारंभ किया है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने इस उपन्यास द्वारा नदी - पुत्रों के लोक - जीवन का पुराण प्रस्तुत किया है। हमारे संस्कृत पुराणों में ऋषि - मुनि, राजा - महाराजा और देवी - देवताओं की भरमार होती है। अब लोक - युग शुरू हुआ है। अब तो हमारे पुराण लोक जीवन को ही प्राधान्य देंगे। इसका प्रारंभ हम 'ब्रह्मपुत्र' में पाते हैं।"

पूर्वोत्तर में हिंदी के साहित्य में बहुत से रचना लिखी है। अनुदित प्रकाशन भी हुए हैं। हिंदी में लिखे साहित्यों के नाम कुछ इस प्रकार हैं-

1. जहाँ बाँस फूलते हैं: श्रीप्रकाश मिश्र
2. रक्तयात्रा: कृष्ण चंद्र शर्मा 'भिक्षू'
3. उफ़फ़: प्रमोद कुमार तिवारी
4. मुक्ति: महेन्द्र नाथ दुबे
5. आहुति: श्रीधर पांडेय
6. जय आई असम: नवारुण वर्मा
7. रूपतिल्ली की कथा: श्रीप्रकाश मिश्र
8. उत्तर-पूर्व: लाल बहादुर वर्मा

9. देश भीतर देश: प्रदीप सौरभ
10. ब्रह्मपुत्र: देवेन्द्र सत्यार्थी
11. मातमुर जमोह: जूमसी सिराम 'नीनो'
12. शीला का रहस्य: जूमसी सिराम 'नीनो'
13. कन्या का मूल्य: लुम्मर दाई
14. शव काटनेवाला आदमी: येशे दोरजी थोंगछी
15. साक्षी है पीपल: जोराम यालम नाबाम
16. उस रात की सुबह: तुम्बम रीबा जोमो 'लिली'
17. शियांग के उस पार: दयाराम वर्मा
18. जब आदिवासी गाता है (काव्य संग्रह): जमुना वीनी तादर
19. अक्षरों की विनती (काव्य संग्रह): तारो सिदिंक
20. उई मोक: जमुना वीनी तादर
21. डॉ. रंग-पुरुष (आलोचनात्मक): जमुना विनी तादर
22. लाप्या (नाटक): ताई तुगुंग

पूर्वोत्तर केंद्रित साहित्य भारत की अन्य प्रांतों से कभी देखने, पढ़ने में बहुत भिन्न लगती है। क्योंकि इनकी बड़ी समस्या हैं। भारत के अन्य प्रांतों के लोगों के द्वारा किया गया धोखाधड़ी आदि।

ख) पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री

मेघालय की खासी जनजाति अपनी मातृवंशीय विशेषता के कारण विख्यात है। परंतु फिर भी बहुत से चीजों का अधिकार नहीं मिल पाता है। अगर हम 'रूपतिल्ली की कथा' उपन्यास की बात करें तो ऐसे कई प्रसंग आए हैं। जिससे यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों की स्थिति उतनी सुधरी हुई नहीं है, जितना की इसकी कल्पना की जाती हैं। लेखक ने इस बात को भली-भांति उजागर किया है कि कहने मात्र की मातृवंशीय समाज भी स्त्रियों के मामलों में अपंग हो जाती है। दबइल सिंह नाम का कैदी जिसकी आखरी इच्छा में राजा की बेटी की माँग करना और राजा का यह स्वीकार भी कर लेना, स्त्री मर्यादा की धजियाँ उड़ा देने वाली घटना लगती है। जहाँ वह कैदी मौत या यूँ कहे की बलि कोपिली नदी को देने की बिल्कुल करीब है। वैसे में राजा की बेटी के साथ कुछ दिनों का मौज़ उड़ाने के लिए माँगा गया हैं।

“दरअसल दबइल सिंह भय की शक्ति से कम, खरलुक्की की मौजूदा जीवन-पद्धति से प्रभावित होकर, बल्कि ईष्य खा कर अधिक बहादुरी पर उतर आया था। लेहाजा राजा ने जब अपनी अतिप्रसन्नता में पूछा कि उसकी इच्छा क्या है, तो वह बड़ी निर्भीकता से बोला, " मैं आपकी बेटी को पत्नीवत् अपने साथ रखना चाहता हूँ।”

पुराने समय में स्त्री का बहुत अधिक महत्व था। अधिकांश मातृसत्तात्मक हुआ करती थी। इसका मूल कारण था समाज के निर्माण में स्त्रियों की मुख्य भूमिका। परिवार, कुल, वंश माँ के नाम पर चलती है। आज से पाँच सौ वर्ष पहले गुरुनानक ने कहा था- " हर नारी में नर है। हर नर में नारी है। वही जननी थी और उसी के कारण परिवार वंश आगे बढ़ पाते है। जो विवेकी है।”³⁷

पहले के लोग इस बात को समझते थे। क्योंकि वे विवेक और बुद्धि से सोचते थे। वह सामाजिक निर्माण का मूल मंत्र कभी नहीं समझ सकते हैं। महिला भी वैसी है शक्तिशाली जैसे कि पुरुष।

“अर्धनारीश्वर की कल्पना को हमारे पीर, फकीर, गुरुओं, दर्शनिकों ने बार-बार दोहराया है। जब-जब इस तथ्य को हमारे साहित्यकारों चिंतकों ने भुलाया है तभी विरोध की स्थिति आ खड़ी होती है। नारी का संघर्ष डेढ़ सदी से निरंतर चली आ रही है। नारी चाहे किसी भी रूप में रही है उसने इस पराधीनता से निकलने का संपूर्ण प्रयास किया और आज तो स्थिति यह है कि स्वतंत्रता के नाम पर नारी अस्तित्व के लिए खतरा और अधिक बढ़ गया है और उस अस्तित्व की रक्षा तभी हो सकती है जब हम नारी को संपूर्ण मानवी के रूप में स्वीकार करें। मैं उस स्तर तक पहुँचना चाहती हूँ जहाँ में मात्र मनुष्य के बारे में लिखूँ न कि स्त्री अथवा पुरुष के विषय में।”³⁸

स्त्री पुरुष का वर्ग न बनाकर एक मानव श्रेणी में ही रखना चाहिए। लोगों ने अपने विचार बदल दिया है। अब समाज में सर्वोत्तम की लड़ाई चल रही है। मानवता किसी के लिए मान्य नहीं रहा है। यही सामाजिक विडंबना है, जो अस्तित्वहीनता की ओर बढ़ चली हैं। शारीरिक उत्पीड़न महिलाओं के जीवन को कई मुश्किलों का जड़ बना देती हैं। यह महिलाओं में आत्मविश्वास की कमी को पैदा करती है। साथ ही वह लोगों को हमेशा शक की निगाह से देखने लगते हैं। 'जहाँ बाँस फूलते हैं' मिज़ोरम पर केंद्रित उपन्यास जहाँ सरकार के विरुद्ध लड़ाई करते हुए दिखाया जाता है। जो की आपने कौम के लिए जंग थी। जो फौजी दल हिंसा को रोकने के लिए आए थे, वही शोषण करते नज़र आते हैं,

“कामी फौजी कैंप में खूमा के साथ जिस राजनैतिक और सांस्कृतिक लड़ाई लड़ने के लिये खूमा के साथ जाती है और उसका जैसा यौन शोषण वहाँ होता है उससे वह यह निष्कर्ष निकालती

है कि इस फौजी विद्रोह से तो अच्छा है कि हम दोला की बात मान कर सरकार से मिलकर शिक्षा के प्रसार से ही मिजो को जागरूक बनायें।”³⁹

“इसी प्रकार जोरमी भी मिजोवासी सरकारी आफिसरों की वासना का शिकार हो जाती है। झा जो गांव का पोस्ट इंचार्ज है उसके वासना का शिकार हो जाती है और जब झा उस गर्भ का भागीदार नहीं होता तो जोरमी की वैश्या का जीवन गाँव के बाहर बिताना पड़ता है।”⁴⁰

इन दोनों ही कथनों से यह बात तो साफ हो जाती है कि समाज का रक्षक भी स्त्रियों के लिए भक्षक बन जाते हैं। ऐसे में यह सवाल उठता है, कि आखिर विश्वास करें तो किस पर, अपने-पराये सभी उनका लाभ ही उठाने के चेष्टा में लगे रहते हैं। पर दर्द कोई नहीं समझता है।

राज्य और समाज के भलाई के लिए जातिय समुदाय में ऐसे बहुत से भ्रम पाले जाते हैं। जिसका वास्तविकता सरोकार शायद ही होती है। खासी जो की मातृत्व और मातृवंशीय समाज के नाम से जानी जाती हैं। भारत के अन्य प्रांतों में जहाँ पुरुषवादी सत्ता और पितृसत्तात्मक जोड़ पकड़ी हुए हैं। वही मेघालय के खासी समाज में मातृवंशीयता चलती है। लोगों को यह लगता है कि खासी महिलाएँ कितनी भाग्यशाली हैं, उनके हाथों में सत्ता का भार रहता है। पर यह भी किसी भ्रम से कम नहीं लगती है क्योंकि वास्तविकता कुछ और ही दर्शाती है। नरबलि पूजा खासियों में फसल और अपने प्रदेश को अपादाओं से बचाएँ रखने के लिए कि जाती है और जिस व्यक्ति को बलि के लिए चुना जाता है। उसे राजा जैसी जिंदगी मिलती है। बल्कि कुछ दिनों के लिए वह राजा ही समझा जाता है। इन सबके बीच उसे रानी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करना होता है और यह समझा जाता है कि देवी माँ खुश होगी और पूजा स्वीकार करेंगी। लेखक लिखते हैं- “फसल के लिए भूमि-चयन का मामला हो या अच्छी उपज की प्रार्थना, मछली पकड़ने का सगुन-विचार हो या देवी आपदाओं, त्रिविध

तापों, रोग, शोक से मुक्ति की कामना, विवाह हो या संबंध विच्छेद, प्रसव हो या राज्यारोहण, बलि और शराब इनके अनिवार्य हिस्से हैं। जातीय अस्मिता के संकट की कल्पना-मात्र से भयाक्रांत खासियों में यह पराकाष्ठा तक तब पहुँच जाता है जब राज्य के कुशल-क्षेम के लिये नरबलि की पकड़ होती है-जिसे 'खाउरा' बनने का प्रस्तुत हो जाते हैं। लेकिन 'खाउरा' घोषित व्यक्ति दैवी प्रतिनिधि है। अतः उसका रहन सहन, परिचर्या, इच्छा, अनिच्छा सब दैवी और विशिष्ट मानी जाती है, वह राजा का स्थानापन्न बन जाता है और क्रमशः राजा भी। और राजा बनकर उसे रानी के साथ सोना एवं दैहिक संबंध भी स्थापित करना है। तभी देवी विधान परिपूर्ण होना है। इस पर क्या राजा, क्या रानी, क्या प्रजा सबकी सहर्ष स्वीकृति होती है।”⁴¹

सच पूछा जायें तो यह एक प्रकार का सामूहिक बलात्कार ही है। जहाँ समाज में सभी लोग ऐसे करने की स्वीकृति देती है। रानी की इच्छा , अनिच्छा का कोई मायने नहीं रखते हैं।

खासी समाज की महिलाएँ बहुत बेवाक रूप में नज़र आती है। साथ में नृत्य करते हैं। खुलापन देखने को मिलता है। संकोच से आत्मविश्वास का भाव उनमें नज़र आता है-

“उसी वक्त सियेम को नृत्य में शामिल होने के लिए इशारे से अनुरोध किया। औपचारिकता निभाने के लिए वह उठा तो जयंती अपना चक्र पूरा करते-करते उसके सामने आयी और हाथ पकड़कर नर्तकों के बीच ले गयी। इतने दिनों के परिचय में यह पहली बार था कि जयंती ने स्वयं आगे बढ़कर राली का हाथ छुआ था। इस पर राली दूर तक विध कर नृत्य करने लगा।”⁴²

‘देश भीतर देश’ की एक महिला पात्र जो एक शादी-शुदा महिला है। विवाह के बाद भी उसे किसी प्रकार का सुख नहीं मिला था। दो बच्चों भी थे और पति चुपचाप रहने वाला क्योंकि

उसे देखने और सुनने की समस्या थी। साथ बड़े मालवीय परिवार की बहू होने के बावजूद भी उसे संपत्ति में हिस्सा नहीं मिला था।

इसके चलते उसने परिवार की निंव संभालने के लिए पार्लर खोल लिया। बहुत सी परेशानियाँ आयी पर वह पीछे नहीं हटी थी। महिलाएँ चाहे तो कुछ भी कर सकती हैं। बड़ी-बड़ी ताकत भी उसके हिम्मत के आगे हार मान जाते हैं। उस महिला को उपन्यास में विनय की फेसबुकिया गर्लफ्रेंड कहा गया है। वह महिला कहीं-न-कहीं बहुत अकेली थी और उसे प्यार की तलाश थी। तमाम तरह की जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी वह एक महिला भी थी और एक मनुष्य भी जो जीवन में प्रेम चाहती थी और उस प्रेम को पाने का पूरा हक भी है।

“उस दिन उसने अपनी एक खास फेसबुकिया गर्ल फ्रेंड से एक देश में दो देश के सवाल को पूछा था। वह काफी परेशान था उस दिन। असम में छूट गया अपना सब कुछ उसे बहुत याद आ रहा था। वह उन पलों को याद कर बार-बार दुखी हो रहा था। लेकिन उसकी फेसबुकिया फ्रेंड ने उसके सवाल में कोई विशेष रूचि नहीं दिखाई थी। उसकी वह अर्धेड फेसबुकिया प्रेमिका अपने में बहुत व्यस्त और अशांत रहने वाली एक महिला थी। पता नहीं उसे प्रेमिका कहना चाहिए या नहीं, लेकिन उनकी बातों से लगता था कि वे आपस में एक-दूसरे के साथ प्रेम जैसा कुछ कर रहे हैं।

प्रेमिका के प्रोफाइल में तमाम सूचनाओं के साथ उसकी बनारसी साड़ी पहने एक खूबसूरत तस्वीर थी। देदीप्यमान चेहरा। बड़ी-बड़ी कटीली आंखें। माथे पर बड़ी टिकली। होठों पर सुर्ख लाल लिपस्टिक। फोटो में हाथ नहीं दिख रहे थे। कल्पना की जा सकती है कि हाथों में साड़ी के रंग की मैचिंग की ढेर सारी चूड़ियां जरूर होगी। उसकी बातचीत से विनय को लगता था कि वह निजत्व की तलाश में है। शायद उसके जीवन में प्यार की कमी थी। भोपाल की रहने वाली बबिता मालवीय एक बेटे और एक बेटी की माँ थी। बेटी की शादी हो चुकी थी। बेटा पुणे में

किसी कंपनी में काम करता था। पति देख और सुन कम पाता था। वह चुपचाप रहना ही पसंद करता था। बबिता की शादी भी जल्दी ही हो गयी थी। जिम्मेदारियों के बीच ही उसकी जिंदगी अब तक चली थी। वैसे उसकी शादी एक प्रतिष्ठित राजनीतिक परिवार में हुई थी। उसके जेठ मध्यप्रदेश में भाजपा सरकार में मंत्री थे। मालवीय परिवार एक ही छत के नीचे रहता था। लेकिन चूल्हा-चौका सबका अलग-अलग था। जायदाद को लेकर भाइयों में धमासान था। इसी के चलते बबिता को घर चलाने के लिए अपना ब्यूटी पार्लर चलाना पड़ता था। जब उसने भोपाल में पार्लर खोला था, तो भी परिवार में खूब धमासान हुआ था। मालवीय परिवार की इज्जत-आबरू का सवाल मंत्री जी ने उठाया था। लेकिन जायदाद से कुछ भी देने को लेकर वे राजी नहीं हुए थे। उनके कई बेटे थे। सारे दबंग। मंत्री के बेटे हो और दबंग ना हो, ये तो हो नहीं सकता ना। लेकिन बबिता ने किसी की परवाह न करते हुए अपना पार्लर चलाया। अब भी शानदार चल रहा है। शहर का पहला पार्लर होने के चलते उसकी साख भी है। तिस पर मालकिन मालवीय परिवार की बहू हो तो कहने ही क्या।”⁴³

उसी प्रेम की तलाश बबिता को विनय के रूप में देखने को मिला था- "तमाम व्यवस्थाओं और पचड़ों के चलते उसे कभी अपने लिए समय नहीं मिला था। फेसबुक के उसे नया जीवन दिया था। चुगली चर्चा करने वाली महिलाओं के ग्रुप की भी वह सक्रिय सदस्य थी। वह फेसबुक में हमेशा अपने प्रेम को तलाशती थी। उसकी इसी खोज का परिणाम था उसकी विनय से दोस्ती।”⁴⁴

कुछ गलत भी तो नहीं इस तरह के रिश्ते जिसमें अनैतिक जैसा कुछ नहीं है। थोड़ी सी प्रेम बड़े बातों के अलावा। अपने से प्रेम का हक सभी को है। खुद को सुखी रखने की जिम्मेदारी आपकी अपनी होती है और इस तरह सशक्त नारी का प्रतिमान बबिता थी।

आज की स्त्री आधुनिक और स्वतंत्र विचारों वाली हैं। वह अपने फैसले लेने के लिए किसी पर भी निर्भर नहीं रहना चाहती है। सामाजिक निरंकुश चाहे लाख उसका मार्ग रोकने की कोशिश करें। वह अपनी खुशियों का रास्ता तलाश ही लेती है। ऐसा ही कुछ ब्रह्मपुत्र की नारी पात्र लिली के रूप में देखने को मिलती है जो अपने इच्छा अनुसार जीवन जीना चाहती है। न की किसी के दिखाने पर- “कई नावे आ-जा रही थी। नाव-घाट से नावरियों और मछुओं की आवाजें सुनकर लिली को लगा कि इनमें उसके लिए कोई आवाज़ नहीं। मुझे नीरद पसंद है, तो डैडी को बीच में बोलने का क्या 'राइट' है? मम्मी पर भले ही हुक्म चलाया करें, भले ही राह चलते लोगों पर रौब गांठें, स्टीमर पर काम करनेवालों को भले ही डिसिप्लिन की धमकी दिया करें, मैं तो डरनेवाली नहीं हूँ। गुस्से में आकर डैडी घर को सिर पर उठा लेते हैं। घर में तो घर की तरह रहना चाहिए, घर को मछली बाजार तो नहीं बनाना चाहिए। और वह सोचने लगी- यह विशाल जलधारा अपने भीतर कोई भयंकर तूफान छिपाए वह रही है।... आज डैडी मेरे और नीरद के मामले में बोलते हैं, कल हस्पताल के मामले में टांग अड़ाएँगे।....”⁴⁵

लिली जैसी महिलाएँ सजगता का प्रतिनिधित्व करती है। जो दिसांगमुख के छोटे से बाँस के बने अस्पताल में काम करती है। साथ ही इस बात की जागरूकता है कि अस्पताल को बेहतर बनाने के लिए मदद लेनी चाहिए। चाहे वह किसी भी रूप में कहीं से भी प्राप्त हो पाएँ।

“जहाँ कभी अंग्रेजों ने सर्वप्रथम दिसांगमुख के नाव-घाट पर उतरने के पश्चात बाँसों का जेल बनाया था और जहाँ से उठकर जेल के शिवसागर चले जाने पर जेल-गाँव की बस्ती बस गई थी, वहाँ शिवसागर-दिसांगमुख सड़क के किनारे लिली ने बाँसों का हस्पताल खोल रखा

था। असमिया कारीगरों ने इस प्रदेश में मिलने वाले बाँसों से ही हस्पताल के वार्ड खड़े किए थे; बाँसों से ही लिली ने अपने रहने के लिए क्वार्टर बनवाया था।

अब तो खैर इस हस्पताल को सरकारी सहायता भी मिलने लगी थी, पर लिली का ख्याल था कि हस्पताल जैसी संस्था को अन्य आत्म-निर्भर संस्थाओं के समान चलाना उचित नहीं। जिस दिशा से भी सहायता आए, ठीक है; सरकार दे तो ठीक है, मिशनवाले अपने फंड से रुपया दे, तो ठीक; या शिवसागर, डिब्रूगढ़ और गुवाहाटी के धनी-मानी व्यक्तियों से चंदा लिया जाए, या दिसांगमुख और आसपास के गाँवों के खाते-पीते लोग अपनी इच्छा से हाथ बटाएँ, जैसे भी हो काम चलना चाहिए।”⁴⁶

साथ ही वह गाँधीजी की बात से भी सहमति रखती है कि हर गाँव उद्योगशाला बनना चाहिए और यह बाँस हस्पताल भी कोई उद्योगशाला से कम नहीं है जो नये-नये सोच को जगह देती है और इसे एक बेहतरीन अस्पताल बनाने का ख्वाब रखती है-

“गांधीजी ने किस व्याख्यान की रिपोर्ट में लिली ने पढ़ा था। कि वह इस देश के प्रत्येक गाँव को आत्म-निर्भर देखना चाहते हैं। 'हमारा हर गाँव एक उद्योगशाला बनना चाहिए!' ये शब्द तो ठीक ही हैं; इनके पीछे सच्चाई झलकती है। हमारा हस्पताल भी तो किसी उद्योगशाला से कम नहीं।”⁴⁷

स्त्रियों की संघर्ष की गाथा बहुत पुरानी और गहरी है। पुरुष चाहे किसी भी देश के क्यों न हो स्त्रियों की स्वतंत्रता और उसके सशक्त रूप को देख नहीं पाते हैं। पाश्चात्य संस्कृति में भी स्त्री के प्रति विरोधी नजरिए को देखा जा सकता है। स्त्रियों को निरंतर जंजीरों से जकड़े रखने की निरंतर कोशिश करते रहे हैं। औरतों को मूर्ख बनाकर हर आंदोलनों में उन्हें आगे कर दिया

जाता था। जबकि पीछे अपने को सुरक्षित रखते थे -"सबसे पहले 'वूमन्स फर्स्ट' की बात को ही लो। अंग्रेज पुरुष बड़े ही चतुर हैं। जीने के लिए उनके देश में प्राकृतिक सुविधाएँ बहुत कम हैं, अतः प्रायः ही नाना प्रकार के आंदोलन चलाने होते हैं, जिनके लिए बड़े-बड़े जुलूस निकालने पड़ते हैं। जुलूस के आगे-आगे चलने के अनेक खतरे हैं, अतः बड़ी चतुराई से स्त्रियों को आगे कर दिया जाता है कि पुलिस की गोली बारी, लाठी, डंडे की जो भी चोट पड़े, पहले स्त्रियों पर ही पड़ ले। स्त्रियों के मर जाने से कोई हानि भी कहाँ है ? जबकि पुरुष तो हर तरह से सुरक्षणीय हैं। अतः पीछे रहकर वे बराबर सुरक्षित रहते हैं, जैसे कि यहाँ कि मिलिट्री के बड़े अफसर सिपाहियों को फ्रंट पर भेजकर अपने मुख्यालयों में सुरक्षित रहकर युद्ध संचालन करते हैं। युद्ध जीतने पर सारा श्रेय स्वयं लेने का सुअवसर और मोर्चे पर जाकर गोली खाने के कुअवसर से पूरी सुरक्षा का इंतजाम। अंग्रेजों की यह नीति पढ़ी-लिखी भारतीय जातियाँ भी अपना रही हैं। अतः जो भी आंदोलन चल रहे हैं वे औरतों को ही आगे कर-करके किए जा रहे हैं।”⁴⁸

मणिपुरी पुरुष ने भी अपने बुद्धि का कम इस्तेमाल नहीं किया है। महिलाओं पर जिम्मेदारी सौंप कर स्वयं अनेक विवाह करके एक आरामदायक जीवन जीने का एक सफलतापूर्ण षड्यंत्र चलाई है और कई युगों तक स्त्रियाँ इसी कुम में फँसी रह गई। लेखक लिखते हैं- “जहाँ तक काम करने और काम की मजदूरी की बराबरी पाने का सवाल है इसके लिए अंग्रेज महिलाओं को कम संघर्ष नहीं करना पड़ा है। जिस-तरह मणिपुरी समाज में कुछ पुरुष एक से अधिक शादियां रचाकर भिन्न-भिन्न पत्नियों के जिम्मे भिन्न-भिन्न काम बाँट कर अपने निश्चित हो हुक्के गुड़गुड़ाते हैं।”⁴⁹

युग बदलते रहे परंतु स्त्रियों की शोषण की गाथा नहीं बदली है, हाँ रूप अवश्य बदल गए हैं। मगर हैवानियत और उत्पीड़न का सिलसिला कभी खत्म न हो पाया है और न ही कभी हो पायेगा ऐसा लगता है। मजदूरी से लेकर घरेलू काम हर क्षेत्र में स्त्रियाँ पिसती हैं। फिर भी उन्हें कभी वह सम्मान नहीं मिलती है जिसकी वह असल हकदार है-

“जब से पश्चिम में औद्योगिक क्रांति हुई, तब से अंग्रेज महिलाओं को घर-गृहस्ती के कामों के अलावे कर-कारखानों की भी चक्की में ढकेल दिया गया। दोनों जगह की खटनी से उनके शरीर की स्वाभाविक मसृणता जाती रही और उनकी भी हड्डियों में कड़ापन आ गया। हमारे राजाधिराज अंग्रेज साहब की अपनी राजधानी इंग्लैंड के कल-कारखानों में सन 1815 में श्रमिकों की जो गणना हुई थी, उसमें पुरुष श्रमिकों की संख्या मात्र 30% थी जबकि स्त्रियों की 70% प्रतिशत 1850 में अमेरिका के वस्त्रधोग में स्त्री श्रमिकों की संख्या बानवे हज़ार थी। 1861 में यूरोप-अमेरिका दोनों जगह के कल-कारखानों में केवल 40% पुरुष थे, शेष स्त्रियाँ और बाल श्रमिक थे, जिनसे काम अधिक लिया जाता था और मजदूरी कम दी जाती थी। यहाँ तक कि श्रमिकों की जो सभा-समिति होती थी- उसमें स्त्री प्रतिनिधियों को भाग लेने से भी मना कर दिया जाता था। 1890 ई. तक जर्मनी में स्त्रियों के लिए किसी भी प्रकार का श्रमिक संगठन बनाने की मनाही थी। संतान पैदा करना, पालना, घर-गृहस्थी का काम काज करना, कल-कारखानों में काम करके घर चलाने लायक धन कमाकर लाना और पुरुषों की दासता करना वहाँ की अंग्रेज स्त्रियों का स्वभाविक सामाजिक कर्तव्य माना जाता था। 1832 में जो ब्रिटेन में श्रमिक आंदोलन हुआ था, उसमें सबसे आगे स्त्रियाँ ही थी और सर्वाधिक हानि स्त्रियों को ही उठानी पड़ी थी। बड़ी कठोर लड़ाई के बाद सन् 1847 ई. में अंग्रेज महिलाओं ने दिन में

10 घंटे काम करने का अधिकार पाया था। जबकि उसके पहले उन्हें 14 घंटे काम करना पड़ता था। ग्लासगो आंदोलन में समान कार्य, समान मज़दूरी के लिए संघर्ष करने पर भी सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1888 से 1892 तक अंग्रेज स्त्रियों में जाने कितने- कितने संघर्ष किए। फ्रांस में तो स्त्रियों को तेरह घंटे काम करना अनिवार्य था। शिक्षा और सुमुचित मज़दूरी से स्त्रियाँ पूरी तरह वंचित थी। अमेरिका में रहनेवाली काली नीग्रो महिलाओं की हालत तो पशुओं से भी बुरी थी। उनसे काम तो खूब लिया जाता था, परंतु उन्हें ऐसी अस्वास्थ्यकर जगह में रखा जाता था, जहाँ जीना तक मुश्किल था।”⁵⁰

अफ्रीका में श्रमिक को खरीदना जब बंद हो गया, तो अमेरिका की काले महिलाओं को गंभीर शोषण का सामना करना पड़ा। उनका जीवन नरक से भी बदतर हो गया-

“जब से अफ्रीका से काले श्रमिकों की खरीद-फरोख्त बंद हो गई, तब से अमेरिका की काली महिलाओं पर और भी दबाव आ पड़ा। अब उन्हें विवश होकर अधिक-से-अधिक बच्चे पैदा करने पड़ते, ताकि गोरे लोगों को सस्ते में दास सुलभ हो जाया करें। उनकी दशा बछड़े बियाने वाली गायों जैसी हो गई थी। खुद भी खटो और खटने के लिये दास भी पैदा करती रहो। उनके बच्चे पैदा होते ही धनाढ्यों द्वारा खरीद लिए जाते, जिन्हें होश संभालते ही मालिक के पास पहुँचा देने को बेचारी काली स्त्रियाँ विवश होती थी। जब विश्वयुद्ध शुरू हुए तो युद्ध की विभीषिका भी सबसे ज्यादा इन पश्चिमी अंग्रेज स्त्रियों पर ही पड़ी। दिन भर खटते रहने के बाद रात को बच्चे पैदा करने के लिए उन्हें क्या कुछ नहीं करना पड़ता था? विधवाओं, कुमारियों तक को बच्चे पैदा करने पड़ते।”⁵¹

स्त्रियाँ समाज में जितना भी आगे बढ़ने की चेष्टा करें उन्हें रोकने वाले अनगिनत हाथ सामने आ जाते हैं। तमाम पुरुषों के समक्ष जब मैं बुद्धिमान, तेज-तर्रार, दो टूक बातें करने वाली कोई आ जाए तो उनकी यह कोशिश रहती है कि किसी भी तरह उसे नीचा दिखाया जाए। और उसको तौड़ दिया जाए, ताकि वह दुबारा उसके सामने आवाज़ न उठा पाएँ। ऐसे ही कुछ 'उफ़फ़' उपन्यास के नारी पात्र 'अक्षरा' के साथ देखने को मिलता है। तमाम तर्कों के बावजूद भी पुरुष वर्ग उन्हें नीचा दिखाने से बाज नहीं आते हैं।

“जीवनचंद्र दत्त आँखें बंद कर एक छोटी, पर प्यारी- सी नींद का आनंद ले लेना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें सभी सवालों के जवाब मालूम हैं। मि. श्रीधर दूर वाले कोने में पैर पर पैर चढ़ाये बार-बार घड़ी देख रहे हैं। कीमती वक्त जाया हो रहा है उनका। दूसरों को बताया है कि सीएम ने उन्हें यह देखने के लिए भेजा है कि उनकी नई शिष्या को रिव्यू मिटिंग कंडक्ट करना आता भी है कि नहीं।

अक्षरा ने एम एन बरुआ के साथ प्रवेश किया था कमरे में।

“दत्ता साहब!”

“जी, मैडम!”

जी सी दत्ता ने आँखें खोली हैं धीरे से।

“ पिछले आठ-दस दिनों में मैंने चार जिलों में आपके विभाग के कई दफ्तर

और अस्पताल देखे। बड़ी दयनीय स्थिति लगी उनकी।”

“आप कहाँ-कहाँ गयी, मैडम?”

“ बताया न, चार जिलों में गयी।”

“ हर जगह ऐसी स्थिति नहीं है।”

मुस्कान की एक झीनी पर्त उभरी है बैठक में मौजूद चेहरों पर।

“ वहाँ क्यों है?”

“ खबर लेता हूँ मैं।”

“ खबर लेने की क्या व्यवस्था है आपके विभाग में? मुझे बताया गया, बरसों से कोई भी नहीं आया इन्स्पेक्शन के लिए।”

“ बदमाश है, मैडम। देखो कि आप नयी-नयी आयी है तो.... इन्स्पेक्शन होता रहता है।”

“आप कितनी बार निकल पाये इन्स्पेक्शन के लिए?”

“ मेरी कार, मैडम, पिछले डेढ़ महीने से गैरेज में है। जेनरल ऐडमिनिस्ट्रेशन डिपार्टमेंट ने सात हजार रुपये सैंक्शन किये। गाड़ी खुलने पर पता चला, पच्चीस हजार लगेंगे। फाइल घूम रही है।”

“ और आपके डायरेक्टर्स, ज्वाइंट डायरेक्टर्स वगैरह?”

“ इस संबंध में, मैडम, स्टैंडर्ड इंस्ट्रक्शंस है सरकार के। निकलते रहते हैं समय-समय पर। मैं कांपीज भिजवा दूंगा।”

“ वो तो ठीक है, मैं जानना चाहती थी, अपने रिब्यू तो किया होगा, ये लोग कहां-कहां गये, क्या देखा ?”

“ पिछले महीने नहीं किया। मीटिंग्स वगैरह में ही इतना टाइम बर्बाद हो जाता है... दिल्ली जाना पड़ा दो बार....”

“ पिछली बार रिव्यू कब किया आपने ?”

“ आप, मैडम, बुरा मत मानिएगा; कमिश्नर हेड होता है डिपार्टमेंट का; सुविधा और समय के अनुसार हर काम करता है। विभागीय मंत्री हैं; उनकी सुविधा भी देखनी पड़ती है।”

“यह तो है, पर इंस्पेक्शंस और रिव्यू मीटिंग्स के रिकॉर्ड तो रखे जाते होंगे न? फॉलो-अप ऐक्शन की क्या मेकानिज्म है।”⁵²

‘अक्षरा’ तेजतरार महिला थी, परंतु पुरुष वर्ग बड़े चतुर है। वे कभी भी अपने अह्म को टूटने नहीं देंगे। चाहे सामने वाले को कैसा भी मेहसूस हो। लेखक आगे लिखते हैं- “ मुझे खुशी है, मैडम, कि आप यह सवाल पूछ रही है। जब तक कंप्यूटर नहीं आएगा....आपको ताज्जुब होगा जानकर कि केवल तीन टाइपिस्ट हैं विभाग में। जैसे-तैसे काम चल रहा है।”

“मतलब कि आप कुछ भी करने की स्थिति में नहीं है। और यही बात आपके विभागीय दफ्तरों और अस्पतालों को देख कर भी समझ में आती है ”

मुस्कुराते चेहरे सकते में आ गये हैं। सैकिया साहब ने नाखून रगड़ना बंद कर दिया है।

“ यह गलत आरोप है, मैडम। गलत सूचना दी जा रही है आपको। पांच सौ से अधिक मामले चल रहे हैं अनुशासनिक कार्रवाई के। डॉक्टर लोग इतना बदमाश है कि जानबूझकर सस्पेंड होना चाहता है। सीएम जानते हैं, मैंने क्या किया है डिपार्टमेंट के लिए। न गाड़ी है, न पेट्रोल का पैसा; न पेपर है, न.....”

“ यह भी तो आप ही बताएंगे न कि आपके विभाग को अलग-अलग कामों के लिए पिछले तीन बरसों में सात सौ करोड़ से भी ज्यादा की राशि मिली है तो ऐसा क्यों है कि न पेपर है, न पेट्रोल का पैसा ?

“ जिन कामों के लिए पैसा मिला है, वो काम हुए हैं।”

मिटिंग में मौजूद चेहरों पर चिंता की परछाई गहरी होती जाती है। अक्षरा बता रही है दत्त साहब को कि उनके विभागीय कागजात के मुताबित ही गाड़ी, पेट्रोल, पेपर, टी ए- डी ए, आफिस खर्च आदि के मद में कितना व्यय हुआ है।

“ तो जाँच करा ली जाए।”

“अडिक्शन बिकम्स डिस्ट्रक्टिव हवेन इट बिगिंग्स टू जेनरेट मोर हिट दैट लाइट।” अक्षरा मुस्कुरायी है, “इसलिए छुट्टी लेते हैं इस बहस से और असली मुद्दे पर आते हैं, जो यह है कि मोनिटरिंग का काम ठीक करने के लिए, आप जानते ही हैं, एक काम मेरा यह भी है, कुछ काम करने है। क्या-क्या किया जाना है, ये डिटेल्स उस फोल्डर में है, जो मिला है आपको। कुछ मॉडल फॉरमेट्स भी मैंने दिये हैं। मुझे बताया गया, मुख्यमंत्री ने पिछली समीक्षा बैठक में रिकॉर्ड- कीपिंग, रिपोर्टिंग, इंस्पेक्शंस, डॉक्यूमेंटेशन, इफेक्टिव रिव्यू मीटिंग्स इत्यादि की बात की थी। इन्हीं सब को ध्यान में रख कर कुछ दिशा-निर्देश बनाये गये हैं। मुझे पता है, आप अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर इन्हें बहुत बेहतर बना सकते हैं, पर मेरा अनुरोध है, इन्हें गंभीरता से लें। अभी जो हालात है फिल्ड में, माँग करते हैं ऐसी गंभीरता का। आज के बाद जब हम मिलेंगे, इन्हीं को आधार बना कर बात करेंगे। और अंत में, मैं यह जरूर कहना

चाहूँगी कि मेरी तरफ से ऐसा कुछ नहीं होगा, जो आपके सम्मान या आपके पद की गरिमा को चोट पहुँचाए।”

“ जर्नलवाजी है आपकी। वरना पद की गरिमा-वरिमा के चक्कर में नहीं रहते हमलोग।”

सच्चिदानंद प्रसाद बुदबुदाये थे।

अक्षरा चली गयी थी। ढेर सारी बातें सोच रखी थीं कहने को, पर मन खट्ट हो गया था। सोचा नहीं था, ऐसे शत्रुता का सामना करना पड़ेगा।”⁵³

बड़ी हैरत होती है कि लोग अपने काम को ठीक तरह से न करने के लिए शर्माते भी नहीं हैं। अक्षरा को दत्त साहब से बहुत ही निराशाजनक बातों का सामना करना पड़ा था। जिसकी उसे उम्मीद तक नहीं थी। स्त्रियाँ अगर आगे बढ़ने की कोशिश भी करें तो भी उसे पीछे धकेलने वालों की कोई कमी नहीं है। मनोबल तोड़ने की लगातार चेष्टाएँ कि जाती हैं। ऐसा दृश्य मनुष्यता एवं स्त्री की गरीमा का हनन करने वाली स्थिति हैं। इसलिए सभी स्त्रियों को एक मत होना जरूरी है। परंतु उसमें भी तमाम तरह की षड्यंत्र कर विभाजित कर देते हैं। उनके बीच फूट डाल देते हैं।

पूर्वोत्तर की महिलाएँ हर क्षेत्र में सक्षम होती हैं। परंतु उसे कई सारे बाधाओं का सामना करना पड़ता है। घरेलू, सामाजिक, ऑफिस हर क्षेत्र में वे बहुत मेहनत करती हैं। फिर भी उन्हें वह अधिकार नहीं मिल पाता है। संघर्ष, दौड़, निरंतर चलता ही जा रहा है। बाहरी लोग तो पूर्वोत्तर की महिलाओं की स्थितियों का कभी गंभीरतापूर्वक विश्लेषण नहीं किया है। पूर्वोत्तर के लोगों के इनके हिसाब से तो कोई समस्याएं ही नहीं हैं यह बस यूँ ही चिल्लाती रहती हैं।

मेरी आवाज सुनों की नायिका यायि अरुणाचल के गालों समाज की ऐसी व्यवस्था का उजागर किया है। जिसमें लड़कियों को पेट से खरीदने बेचने का कारोबार चलता है। खरीद फरोख्त का यह कारोबार विवाह तय करने का नाम दिया जाता है। 'यायि' भी उसी चलन का शिकार हो अपना सब कुछ गवा बैठती है। जहाँ उसे पचास वर्षीय बुढ़े व्यक्ति 'ताकार' से विवाह करनी पड़ी थी। 'नेप्प न्यादा' के व्यवस्था में उसकी सारी जीवन को ही उजार कर रख दिया था –“यह उपन्यास हमारे प्रदेश में फेली एक कुरीति 'नेप्प न्यीदा' की आलोचना करता है। 'नेप्प न्यीदा' का मतलब है पेट विवाह जिसका अर्थ यह है कि जब बच्चा माँ के पेट में हो, तभी उसकी शादी किसी के साथ तय कर दी जाय।”⁵⁴

संदर्भ सूची:

1. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.52
2. वहीं, पृ.52
3. वहीं, पृ. 52-53
4. श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य-साधना की परख , सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ.77
5. वहीं, पृ.77-78
6. श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद, 2006, पृ.51
7. वहीं, पृ.51-52
8. प्रमोद कुमार तिवारी, उफ़र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण: 2011, आमुख
9. वहीं, पृ.7
10. वहीं, पृ.7
11. वहीं, पृ.7
12. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, आमुख
13. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.142
14. वहीं, पृ.143

15. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु' ,रक्तयात्रा, ,नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद,जयपुर प्रथम संस्करण:1978, आमुख
- 16.वहीं, आमुख
- 17.वहीं, आमुख
- 18.वहीं, आमुख
- 19.डॉ. महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण:1999, आमुख
- 20.वहीं,आमुख
- 21.प्रदीप सौरभ,देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2012, आमुख
- 22.वहीं, पृ.166
- 23.वहीं, पृ.166-167
- 24.वहीं, पृ.167
- 25.वहीं, पृ.167-168
- 26.वहीं, पृ.168
27. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002,पृ.-7-8
28. वहीं, पृ.17
- 29.वहीं, पृ.17
- 30.वहीं, पृ.17
31. नवारुण वर्मा, जय आई असम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद,1983, आमुख

32. वहीं, भूमिका
33. वहीं, भूमिका
34. देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992, अमुख
35. वहीं, भूमिका
36. श्रीप्रकाश मिश्र रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 55-56
37. नंगे पांव: मरु यात्रा, डॉ गीता शर्मा, पृ. 81
38. वहीं, पृ. 82
39. श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य साधना की परख, सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ. 79
40. वहीं, पृ. 79
41. श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य साधना की परख, सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ. 175-176
42. श्रीप्रकाश मिश्र, रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 68
43. प्रदीप सौरभ देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 12
44. वहीं, पृ. 12-13
45. देवेन्द्र सत्यार्थी ब्रह्मपुत्र, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992, पृ. 235

46.वहीं, पृ.233-234

47.वहीं, पृ.234

48.डॉ. महेन्द्रनाथ दुबे मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1999, पृ.252

49.वहीं, पृ.252

50.वहीं, पृ.252-53

51.वहीं, पृ.253

52.प्रमोद कुमार तिवारी, उफ़्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण:

2011, पृ.220

53. वहीं, पृ. 221-222

54.जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृ.7

द्वितीय अध्याय

पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री की छवि

- (क) स्त्री के विविध रूप
- (ख) स्त्री-पुरुष संबंध
- (ग) स्त्री नैतिकता के प्रतिमान

द्वितीय अध्याय

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री की छवि

(क) स्त्री के विविध रूप

स्त्रियाँ कई रूपों की होती हैं। इससे इनके रंग-रूप से कोई ताल्लुक नहीं है। यहाँ विविधता का अर्थ है स्त्रियाँ किन-किन रूपों में हमारे सामने मौजूद हैं- माँ, बेटी, बहन, पत्नी। पूर्वोत्तर के उपन्यासों में स्त्रियों के कई रूपों के बारे में कही गई है। स्त्री एक शरीर मात्र नहीं है, बल्कि संसार, पृथ्वी, मानव जीवन की संरचना करती है। स्त्री के बगैर पीढ़ी नहीं बढ़ाई जा सकती है। महिलाओं को दया, ममता की देवी कहा गया है। स्त्रियाँ आजकल बहुत खुले विचारों वाली हो गई हैं। विचारों को संप्रेषित करना उसे अच्छी तरह से आती है। किंतु उसके इसी खुले विचारों के कारण मौकापरस्त पुरुष वर्ग इसका गलत मतलब निकाल लेते हैं। जो कि किसी सभ्य इंसान के लिए शर्मनाक होती है। 'उत्तर पूर्व' की नारी पात्र जूही बहुत खुले विचारों वाली महिला है। उसे महफिल में कई लोगों के बीच खड़े होकर भी पुरुषों से बात-चीत करने में किसी भी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं होती है और इसी के चलते चापलूस, गंदे इरादे वाले व्यक्ति उसका फायदा उठाने की फिराक में रहते हैं।

“कैम्पस में कानाफूसी शुरू हो चुकी थी। शर्मा जी की सृजनशीलता को तभी खुराक मिल गई थी। कई लोगों ने अकेले में कुटिल मुस्कान के साथ बधाई भी दे दी थी। कुछ निकट के लोग 'भाभी जी को लिख दूँ? कुछ खिलाओ-पिलाओ अगर जुबान बंद रखनी है' जैसे फिकरे छोड़ने लगे थे। स्वयं मनोज ने कैम्पस के निकटतम दोस्त से एक दिन कह दिया: 'यार, आज

मैंने एक कीड़ा हटाने के बहाने उसका कंधा छू लिया और वह कुछ बोली नहीं - बस मुस्करा दी।'

जाहिर है मनोज ने इसकी मनमाफिक व्याख्या कर ली थी और योजना का घोड़ा दौड़ाने लगा था। उसे क्या पता कि जूही क्यों मुस्कराई थी।"1

अपनी रक्षा और लोगों के गलत इरादों को नाकामयाब करने के लिए स्त्रियों को कई बार अपना रूप परिवर्तन करना पड़ता है। तभी अक्ल के दुश्मनों को बात समझ में आती है। ऐसा ही जूही ने मनोज के साथ किया। क्योंकि मनोज अपनी हदे भूल रहा था। उसे उसका औकात दिखाना बहुत जरूरी था।

"जूही! मैं आज एक बात स्पष्ट करने आया हूँ।'

'तो पहले क्यों झूठ बोले थे।'

'यह बताओ तुम आजकल मुझे 'इग्नोर' क्यों कर रही हो?'

'इग्नोर ?' जूही को मामला समझ में आ गया। आज वह भी कुछ निर्णायक कर बैठने बात सोचने लगी।

'और नहीं तो क्या ?'

'भाई! मैं तो पहले ही जैसा बर्ताव कर रही हूँ, घर से बाहर तो नहीं निकाला।'

'कितने दिनों से घर नहीं आई।'

'अरे मनोज भाई।' उसने भाई पर जोर दिया, 'संबंध आने-जाने की गिनती से नहीं तय होते। मैंने तो जैसा पहले दिन समझा था वैसा ही आज तक समझती रही हूँ। आपको फर्क क्यों लग रहा है मुझे नहीं मालूम।' हालांकि मालूम तो था ही।

मनोज समझ नहीं पा रहा था कि अब कौन-सा दांव चले अब तो एक ही अस्त्र बाकी था— जितना मासूम और असहाय चेहरा बनाया जा सकता था उतना बनाकर वह जमीन की ओर देखने लगा। इसी दौरान वह सोच लेना चाह रहा था कि कैसे जूही की कम-से-कम सहानुभूति तो प्राप्त ही कर ले।

‘मनोज भाई! मुझे प्रो. बर्मन के घर जाना है। उनसे कल ही बात हो गई थी। एक योजना पर बात करनी है।’ वह उठने का उपक्रम करने लगी। मनोज तिलमिला उठा। जूही ने सोचा आज इस रिश्ते को वहाँ पहुँचा ही दिया जाय जहाँ उसे पहुँचना है। थोड़ी खिलन्दरी दिखाते हुए सहज भाव से बोली:

“इधर चिट्ठी नहीं आई क्या भाभी जी को ? थोड़े तनाव में रह रहे हैं।’

तो उसे मालूम है। मनोज लड़खड़ा गया। यंत्रवत् उठा और यही बोल पाया:

‘तो मैं चलता हूँ।’

जूही ने उसे निढाल और पराजित---बल्कि अपमानित बाहर जाते हुए देखा। इस - सबके लिए जिम्मेदार तो वही था।”²

महिलाएँ अपने पति को अपने साथ, अपने पास रखना चाहती हैं। परंतु उन्हें ऐसे भी पसंद है जो अपने देश, अपने समाज के लिए जान न्यौछावर करने से भी नहीं कतराते हैं विजेलू की पत्नी अपने पति के साथ ऐसे ही उलझन की बातें देखने को कई बार मिलती हैं।

“ इस फैसले से उदास विजेलू ने घर आकर पत्नी से कहा, "लगता है हमारे लोग शांति चाहते ही नहीं। हमने आज जो फैसला किया उसमें उन्ही लोगों के हाथ मजबूत होंगे जो लड़ाई के तरीके में यकीन रखते हैं।”

उसकी बात से पत्नी को खुशी हुई थी। फिर भी पति को छेड़ते हुए कहा. "तुम तो लगता है यह भूल ही गए कि कभी तुम खुद मरने मारने के अलावा कुछ और जानते ही नहीं थे। विजेलू ने गंभीर होकर कहा, "नहीं, वह मैं कभी नहीं भूल सकता। भूल नहीं सकता, इसीलिए यह भी नहीं भूल पाता कि वह सब कितना गलत था। इमकोंगलिबा, शीलू और जसूकी जैसे लोगों ने जो बात कहीं पहले समझकर फिजो का साथ छोड़ दिया था, वही बात मैंने कैसे इतनी देर से समझी। इस देर का नतीजा मुझसे ज्यादा तुम्हें भुगतना पड़ा। मेरी वजह से तुम्हारी जवानी बुढ़ापे में बदल गई। तुम्हारी खूबसूरती बिना पानी के फसल सी सूखकर मुरझा गई। मेरी अपनी बेटी, मेरा अपना बेटा, अभी भी मुझसे ऐसे भागते हैं जैसे मैं कोई पराया होऊ। तुम्ही बताओ कि मैं यह जानकर भी सब देखकर भी कैसे भूल सकता हूँ कि यह सब मेरी उसी गलती का नतीजा है।"³

स्त्रियों में एक कला होती है। मनुष्यों के हृदय परिवर्तन के। स्त्री वह शक्ति है जो बदलते समय के साथ अपना सोच बदलती रहती है। उसके जुबान में वह ताकत है, जो हर व्यक्ति को सोचने-समझने में मज़बूर कर देती है। गौर करने वाली बात है कि वे किन परिस्थितियों के अनुसार बातें कह रही है। स्त्री दया की सागर है तो स्वार्थ मिमिसा भी उन्हीं के भीतर देखने को मिलती है 'रक्तयात्रा' उपन्यास में विजेलू के पत्नी के पल-पल बदलते चेहरे देखने को मिलती है। जहाँ वह अपने पति के अपने प्रांत के प्रति प्रेम को देखकर खुश होती है और वह कई सालों तक उसके बिना भी रही हैं। हर परिस्थितियों का अकेले मुकाबला भी किया था। अब वह थक चुकी थी और अपने पति को स्वार्थी होने का सिख देने लगती है। जो वायके में काम भी करने लगती है-

“यह कहकर वह चुप हो गया था। पत्नी उसके लिए मधु लेने चली गई थी। पर जैसे ही वह लौटी तो विजेलू ने उत्तेजित होकर कहा, “कसम तुम्हारी और बच्चों की, मैं तब तक चैन से नहीं बैठूंगा जब तक हमारे गुमराह लोग सही रास्ते पर नहीं आ जाते। मैं हर जंगल, हर गांव में अपनी आवाज उठाऊंगा। लड़ाई में यकीन रखने वाले लोगों से कहूंगा कि मुझे देखो। एक दिन में उन्हीं की तरह था। एक दिन में इन्हीं हाथों से हत्याएँ करता फिरता था। वहीं मैं आज तुम्हें सबके बच्चों की खातिर, उनकी आने वाली जिंदगी की खातिर यह खबर बताने आया हूं कि मैं भारी गलती कर रहा था। जिस डाल पर बैठा या उसी डाल को अपने दाव से काट रहा था। मेरी भूलों से सबक लो। जो पेड़ तुम्हें छाया दे रहा है उसी को मत काटो। जिंदगी की जो राह तुम्हारा इंतजार कर रही है, उसे छोड़कर मौत की राह मत पकड़ो। एक दिन सबको मरना है, मगर यों मरना, वक्त से पहले मरना खुदकुशी है।”

तब पत्नी को यही लगा था कि वह घर लौटकर भी नहीं लौटा है। उसने विनय से कहा, “अब तुम दूसरों के बारे में सोचना बंद कर दो। तुम उन सबके लिए बहुत कुछ कर चुके। अब सिर्फ मेरे और अपने बच्चों के बारे में सोचो। मैं अकेली घर और खेती नहीं सम्हाल पाती। अब दोनों साथ-साथ अपने खेतों पर जाया करेंगे। अब हमें बच्चों की पढ़ाई की फिक्र करनी होगी। तुम नहीं थे तो सोचो एकदम आवारा हो गया। पढ़ाई में उसका मन ही नहीं लगता। पढ़ेगा नहीं तो क्या करेगा आगे चलकर। देखो, मेरा हथकरघा भी टूट गया है। हमारे घर की छत भी बनने लगी है। अब तुम्हें मेरे लिए नया करघा बनवाना होगा। छत की मरम्मत करनी होगी। चर्च भी हम दोनों जाने कब से साथ नहीं गए। अब तुम्हें हर इतवार को मेरे साथ चर्च जाना होगा। इतना काम है हम दोनों के लिए कि तुम्हें कुछ और करने की फुर्सत ही नहीं मिलेगी। सुन रहे हो न मेरी बात।”

विजेलू ने उसकी हर बात सुनी थी। सुन-सुनकर उसकी आत्मग्लानि बढ़ती गई थी। उसने खुद क्यों नहीं सोचा कभी बीवी की, घर की जरूरतों के बारे में? उसने मन ही मन फैसला किया कि अब वह सिर्फ अपने घर, अपनी खेती, अपनी बीवी और अपने बच्चों के बारे में ही सोचेगा। बाहर की बातों से उसका कोई वास्ता नहीं।”⁴

महिलाओं के रूप भारत के अन्य प्रांतों के मुकाबले कुछ अलग ही देखने को मिलते हैं। गिरकर खड़े होने का जज़्बा उनमें फूट-फूट कर भरी हुई है। साथ ही वह पुरुषों पर आश्रित और समर्पित रहने की भावना से भी परे हैं।

‘ रक्तयात्रा ’ उपन्यास में ‘ भिक्खू ’ जी ने सनीयू (पुरुष) और निखोनो (स्त्री) पात्रों के माध्यम से एक स्त्री के बारे में बताते हैं। जो सर्वसुंदरी थी। और हर मर्द उसके रूप के पीछे पागल थे। किन्तु उसने किसी से भी विवाह नहीं की। वह स्त्री जिसे नागा समाज तिज्कभेफै कहकर संबोधित करते थे। वह स्त्री के चतुर रूप का प्रतिबिंबित करती है। चालाक से चालाक पुरुष भी उसके सामने घुटने टैकते थे। पर वह अविवाहित रही, और मरते-मरते कह गई कि वह एक बड़ा सा चमकीला तारा बन जाएगी और जो मुझे देखेगा देखता ही रह जाएगा। लेखक लिखते हैं – “सुनीयू ने भोर के तारे की कहानी सुनाते हुए कहा, “बहुत पुराने जमाने में एक लड़की थी तिज्कभेफै। बड़ी सुंदर थी, तेरी ही तरह।”

निखोनो इस तुलना से प्रसन्न होकर सनीयू से और सट गई थी। सनीयू कहता गया, “वह इतनी सुंदर थी कि गाँव भर के लड़के उसे प्यार करने लगे थे। वह हर-
किसी को यहीं जताती कि वह उसी से प्यार करती है।”

इस पर निखोनो ने कहा, “चल हट, मैं ऐसी थोड़े हूँ।” सनीयू ने हँसकर कहा, “अरी तेरी बात थोड़े कर रहा हूँ। तो फिर ऐसा हुआ कि उसका भेद खुल गया। लड़कों को पता चल गया कि

वह उन्हें बना रही है। उन्होंने कसम खाई कि अब वे उस लड़की को देखेंगे तक नहीं पर वह भी अजीब लड़की थी। बोली की जब मैं मर जाऊंगी तो एक बड़ा-सा चमकीला तारा बन जाऊंगी, जिससे हर कोई मुझे देखे तो देखता ही रह जाए।”

निमोनो ने कहा, “ सच ही अजीब लड़की थी। उसने शादी क्यों नहीं कर ली।”

सनीयू ने बताया, “नहीं की न। बस कुंवारी ही मर गई। तभी न ऐसी औरतों को जो एक साथ कई मरदों को भरमाए रखती हैं तिज्कभेफै कहते हैं।”⁵

ताकि लोग उसे जब भी देखें यह भूल न पाएँ कि स्त्रियाँ पुरुषों की कठपुतली नहीं हैं। बल्कि पुरुषों को उनके उंगलियों पर नचा सकती हैं।

आधुनिक युग की स्त्रियाँ कई कामों में उत्तम हैं। विचो जैसी नारी पात्र जो मरीजों का इलाज करने में अपने को होम करने लगी थी। वह यह सिद्ध करती है कि नारी केवल चार दीवारों का कार्य करने के लिए पैदा नहीं हुई है बल्कि उनमें मेहनत करने का जज़्बा फूट-फूट कर भरा पड़ा है। लेखक 'विचो' के माध्यम से लिखते हैं-

विचो डॉक्टर के कामों में हाथ बांटने लगी थी। वह घर-घर जाकर मरीजों का हालचाल पूछती, टैम्परेचर लेती और डाक्टर को बताती। दवा लेने में लापरवाही करने वाले मरीजों की शिकायत भी डाक्टर तक पहुंचा देती। धीरे-धीरे उसका पूरा दिन ही गाँव में बीतने लगा। अंधरा होने पर ही वह कैप जा पाती। कभी ज्यादा देर हो जाती तो वहीं नानी के पास रुक जाती। विजेलू ने उसकी इस बात पर कभी कोई एतराज नहीं किया। एक बार उसने प्रसन्नता के किसी क्षण में कहा था, "लगता है तुम डाक्टर होने के लिए पैदा हुई थी। तभी तुम्हें मरीजों से इतना प्यार है।”⁶

विचो जैसी महिला अपने काबिलियत और हुनर के माध्यम से पुरुषसत्ता को भी अचंभित कर देती हैं। उनकी यह काबिलियत मर्दों के अह्म को भी ठेस पहुँचा जाती है। जैसे कि डॉक्टर सिंह के साथ हुआ। लेखक लिखते हैं -

“एक दिन उसने डॉक्टर से कहा, “आप कहें तो में इंजेक्शन लगाने में आपकी मदद कर सकती हूँ।

डॉक्टर ने पूछा, “तुम्हें इंजेक्शन लगाना आता है?”

उसने 'हाँ' कहा तो डॉक्टर संदेह के साथ देखने लगा था। उसके वहाँ से हटते ही उसने दूसरे अफसर से कहा, “मेजर कुमार इस लड़की के बारे में आपकी क्या राय है।”

कुमार विनोदी स्वभाव का था। शरारत के साथ कह दिया, “बहुत खूबसूरत लड़की है कैप्टेन सिंह। क्यों तुम्हें कैसी लगती है ?”

सिंह ने गंभीर स्वर में कहा, “मुझे पता चला है कि यह लड़की इस गाँव की नहीं है। हाँ, इसकी नानी यहाँ जरूर रहती है। यह इतने दिनों से यहाँ क्यों है? पहले तो यहाँ कभी नहीं आती थी। कुछ दिनों से ही इसका आना-जाना शुरू हुआ है। अभी-अभी जब हमने इंजेक्शन लगाने की बात कही तो मेरा शक और पक्का हो चला। यह मामूली लड़की नहीं है। जरूर ही इसके कुछ ऐसे इरादे हैं जो अभी तक हम नहीं जानते। मुझे ताज्जुब नहीं होगा अगर कल यह सुनने में आए कि यह लड़की अंडरग्राउंड नागाओं से मिली हुई है और उनकी तरफ से जासूसी करती है।”⁷

डॉ. सिंह को कही-न-कही यह नागवार गुजरने लगी थी कि बिना किसी ट्रेनिंग के एक स्त्री इतनी सक्षम कैसे हो सकती है। यह आज के समाज का कड़वा सच भी है। स्त्रियों में अदभूत प्रतिभा पुरुषों को पसंद नहीं आती है। उन्हें नीचे गिराने के मौके तलाशने लगते हैं।

महिलाएँ पैदाइशी जिज्ञासु प्रवृत्ति की होती हैं। उन्हें नए- नए जानकारी इकट्ठा करना बहुत पसंद होता है। यही कारण है कि वे कई चीजें देखकर और प्रयत्न करके ही सिख जाती हैं। 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास के माध्यम से 'देवेन्द्र सत्यार्थी' जी ने ऐसे ही एक विदुशी स्त्री लिली के बारे में बताते हैं। जो की अंग्रेज़ लड़की थी। किंतु भारतीय संस्कृति और लोकपक्ष के बारे में जानने की तीव्र इच्छा देख असमिया लोग भी आचंबे में पड़ जाते हैं। देवेन्द्र जी बताते हैं-

“लिली एक अंग्रेज लड़की होकर भी गाँव की बातों में इतनी दिलचस्पी लेती है, यह सबके लिए बड़े आश्चर्य की बात थी।”⁸

हाथी के खाने के और दिखाने के दाँत अलग-अलग होते हैं। उस की चालाकी स्त्रियाँ भली-भांति समझती हैं। षड्यंत्र के तैहत उन्हें बहलाना-फुसलाना किसी के भी वश की बात नहीं है। प्रेम के बल पर वे अवश्य मूर्ख बन जाती हैं; अनेको बार परन्तु चालाकी उनकी समझ में पूरी तरह आती है। ब्रह्मपुत्र की नारी पात्र जूनतारा जैसी तेजस्वी स्त्री, षड्यंत्र में फंसे पुरुषों को भी निकालना अच्छी तरह से जानती हैं। देवेन्द्र जी लिखते हैं-

“नए दारोगा ने धनसिंह को न भड़काया होता तो मुकदमा शिवसागर कभी न जाता।” अतुल गंभीर नजर आ रहा था। “कभी यह भी सोचा कि धनसिंह का क्या दोष था? यह तो कोई भी कर सकता है कि पैसे देकर माटी खरीद ले धनसिंह ने भी यही किया। उसने एक मीरी की माटी सारी नहीं केवल आधी खरीद ली थी। यह कौन-सा अपराध था?”

“यही तो मैं भी कह रहा था।”

“तो क्या अब नेपालियों के सिर टूटने बंद हो जाएंगे ?”

“नेपालियों की वकालत तुमने कब से आरंभ कर दी ?” “मीरी सोचते हैं कि असमिया और नेपाली की मिली भगत है और दोनों मिलकर उन्हें दिसांगमुख से खदेड़ना चाहते हैं।”⁹

छल कपट से सदैव बचाएँ रखने की क्षमता जूनतारा जैसी चतुर महिला जानती हैं। जिस बात को लोग वकालत कहते हैं, वहीं जूनतारा के लिए न्याय पक्ष हैं। लेखक आगे लिखते हैं-

“असमिया और नेपाली भी तो मीरियों को अपना शत्रु मानने लगे थे।”

“सो तो वे अब भी मानने हैं और मानते रहेंगे।”

“यह तो न कहो।”

“तुम बस इतनी-सी बात पर रीझ गए कि एक बार मीरियों ने अपनी दबूर- पूजा नहीं मनाई और आगे से दबूर-पूजा में सबको आने की आज्ञा दे दी।”

“अब वे हाथ-पैर बांधकर किसी को 'येगुम' में नहीं डालेंगे, जैसे मखना को डाल दिया था।”

“तो क्या इससे आपस की शत्रुता मिट जाएगी? यह सब दिखावा हैं। राखाल काका भी भोले हैं जो इनकी बातों में आ गए।”

“राखाल काका तो स्वयं मीरी हैं। उनका प्रभाव तो सभी पर हैं। क्या मीरियों से यह बात छिपी हुई है कि असमिया और नेपाली काका पर जान देते हैं ?

“साधन और धनसिंह में जो शत्रुता है, वह तो इससे समाप्त नहीं हो गई। यह भी क्यों भूल रहे हो कि नए दारोगा के साथ मिलकर साधन मीरी बापू को गाँव-बूढ़ा की पदवी से हटाकर आधार मीरी को गाँव-बूढ़ा बनाना चाहता हैं।”¹⁰

इतिहास में हुई गलतियों को सदैव याद रखना चाहिए। नहीं तो स्वयं भी इतिहास का भाग बनकर रह जाएंगे। यह कठन जूनतारा जैसी कूटनीति को समझने वाली महिला पर बिल्कुल सटीक बैठती हैं। जो भटकाव की राह पर स्वयं तो नहीं चलती है। साथ ही दूसरों को भी इससे बचाने के चेष्टा में रहती है।

राष्ट्र हित के लिए केवल जुबानी लड़ाई लड़ना काफी नहीं है। बाहूबल का भी उतना ही जरूरत है। अपने प्रियजनों के लिए हर बात का हामी भरना बेवकूफी होती है। जब तक की आज के ज्ञान में यह बात साफ़ न हो जाएँ कि सामने वाला व्यक्ति वही सही हैं, और जिसके बारे में वह कह वहीं परमसत्य हैं। जब तक इस बात की गवाही आपकी अंतरात्मा न दे तो दो आँख मूंदकर उसके पीछे चलना नहीं चाहिए। यही कार्य जूनतारा ने भी किया लोग कई अलग-अलग रास्ते पर चलकर ही समाज का उद्धार कर पाते हैं। लेखक लिखते हैं -

“देवकांत क्या कर रहा है, यह आरती अधिक जानती है।” जूनतारा ने मुँह बनाकर कहा,

“आरती मछुए की लड़की ही सही, पर उसे बदनाम क्यों करते हो ?”

जूनतारा जानती थी कि देवकांत के लिए अतुल के हृदय में सम्मान की भावना है। वह यह भी जानती थी कि देवकांत का पथ अतुल का पथ नहीं है; अतुल कभी ऐसा कार्य नहीं करेगा जिसमें उसे देवकांत के समान छिपकर रहना पड़े, इसका जूनतारा को पूरा विश्वास था।

“पहले तो मुझे देवकांत से शिकायत थी कि वह दिसांगमुख की बात भुलाकर कलकत्ता की बात क्यों सोचता है

“और अब तुम देवकांत के भक्त बने जा रहे हो ?”

“सुनो तो, जब से उसने माजूली में कार्य आरंभ किया है...”

“नारायण भी नारायण है। वह बदला लेगा कि देवकांत याद रखेगा।”

“देवकांत को तुम इतना बुरा क्यों समझती हो?” “तुम भी तो उसे बहुत अच्छा नहीं समझते। तुमने ही तो कहा था कि पिस्तौल और बमवाला रास्ता तुम्हें बिल्कुल पसंद नहीं है। देवकांत का तो वही रास्ता है; चाहे वह कलकत्ता में रहे चाहे माजूली में।”

“उपाय अलग-अलग हो सकते हैं, पर लक्ष्य तो एक ही है।”

“तुम तो कहा करते हो कि जब तुम सो जाते हो तब भी खेत की माटी तुम्हारा पीछा करती है, तुम्हारे साथ सोती है खेत की माटी ! अब वह बात भूल गए ?”

“सो तो मैं अब भी कहता हूँ।”

“मछुए का काम है मछलियाँ पकड़ना, किसान का काम है खेती-किसानी और सिपाही का काम है लड़ना। देवकांत सिपाही हो सकता है पर तुम तो किसान हो।”¹¹

मिज़ोरम प्रान्त पर आधारित उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' में कामी नामक एक स्त्री पात्र का जिक्र करते हैं। कामी जिसे पसंद नहीं करती है। उसके मीठी बातों से भी उसका हृदय में क्रोध उत्पन्न कर बैठती हैं। माइकल की उपस्थित ने उसे बैचैन कर दिया था। और कटू वचनों से माइकल को शर्मिंदगी भी मेहसूस कराती हैं। लेखक लिखते हैं-

“माइकल ने देखा कि उसकी आँखें और होंठ सूजे हुए हैं। लगता था कि किसी ने उन्हें चूस चूसकर कामी को रात भर जगाए रखा है। बोला, “कल कौन तलडवाल आया था तेरे पास ?”

कामी आपादमस्तक जल गई, “गाँव भर के सारे मेरे ही पास तो आते हैं। बोलो किसके बारे में पूछते हो?”

“वही जो जंगल से आया था।”

कामी माइकल का मनोभाव ताड़ गई। फिर भी जितना हो सके बचना चाहती थी। बनकर बोली, “जंगल से तो कोई बंदर ही आएगा। कोई जवान आया तो इसका लेखा तुम्हारे पास होना चाहिए। जासूस हो। तुम्हीं बताओ।”¹²

नारी वह बला है जो अगर कुछ न बताना चाहे तो लाख कोशिश करके भी उसके मुँह से वह बात कोई निकाल नहीं सकता हैं। वे अपने प्रिय को बचाने के लिए स्वयं पर मुसीबत ले सकती है परन्तु उसपर आंच तक आने नहीं देती हैं। जिसका असर माइकल पर भी देखने को मिलता हैं। कामी के व्यवहार से उसे अपमान मेहसूस होने लगता हैं। अंत में लज्जित होकर वहाँ से उठ खड़ा होता हैं-

"हाँ, कामी! लेखा तो मेरे ही पास होनी चाहिए। जासूस अंतर्दामी होता है न! यहीं भ्रम तो हमारे देश को खाए जा रहा है। कर दो देश को जासूस के हवाले और चैन से सोवो। अरे हम भी तुम्हीं लोगों से पूछकर जानते हैं।"

कामी आश्चस्त हो गई। तो यह पट्टा हवा में ही तीर चला रहा है! वैसे ही बनकर फिर बोली, “आया था कोई। मुर्गी खाया, दारू पिया, मुझे घोड़ी बनाकर दो बार मैथुन किया और सुबह चला गया फटे कपड़े की तरह गाँव त्याग कर। कल देखना ट्राइजंक्शन का पूरा कैंप खाली हो जाएगा।”

माइकल समझ नहीं पाया कि यह व्यंग्य है या हकीकत । अधिक झुकना उसके सम्मान में चुभता था और अड़े रहना टूट जाना था। माइकल ने एक गहरी नजर उसके सूजे पोपटे चेहरे पर यह जानने के लिए डाली कि सच्चाई क्या है? उसके चेहरे पर रात के अभिसार के लक्षण थे, नहीं भी थे। तो क्या गारंटी कि ये जंगल के आदमी की देन हैं। न थे तो क्या गारंटी कि जंगल का आदमी इस घर में नहीं आया। बोला, “चाय नहीं पिलाओगी?”¹³

मौके दरवाजे पर हमेशा दस्तक नहीं देती हैं। जब प्रतिभा दिखाने का अवसर सामने से आये तो चुनौतियों को अपनाने से कभी घबराना नहीं चाहिए। यह सिद्धांत 'रूपतिल्ली की कथा' की नारी अल्खा साफ़ तौर पर हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। लेखक लिखते हैं-

“लेकिन जब बड़-पुजारिन ने उसे नृत्य के लिए अपना खास जोड़ीदार मानकर यह श्रृंगार किया तो वह जितना प्रसन्न हुई उतना ही एक संकोच से गड़ गयी कि क्या इतना बड़ा भार उठाने की सामर्थ्य उसमें है भी ? पहले से पता होता तो और कुछ नहीं तो नृत्य का इतना अभ्यास अवश्य कर लिए होती कि लोगों की निगाह देह्यष्टि से हटकर उसकी कला पर जाती। फिर भी बरे जाने का एक आवेग तो ऐसा था ही, जिसके बूते पर वह बड़ी से बड़ी जिम्मेदारी पूरा कर लेगी।”¹⁴

स्त्री चाहे तो अपने को जितना भी निष्ठुर क्यों न साबित कर ले। किंतु उसके मन के कोने में एक माँ और कोमल सा हृदय होता है। जो अपने प्रेमी के लिए निरंतर तड़पती रहती हैं। उसपर कोई भी मूसीबत आए उसके आगे वे स्वयं को खड़ी रखना पसंद करती हैं। यह स्वाभाविक ही होता है। स्त्रियों के साथ क्योंकि उसके हृदय में ईश्वर ने ढेर सारा प्रेम भर रखा है। जैसे की हमारी प्रकृति माँ स्वयं बर्बाद होकर भी हमारे लिए जिवीका प्रदान करती हैं। यह उदाहरण 'आहुति' मणिपुर प्रान्त पर आधारित उपन्यास के माध्यम से देखा जा सकता है-

“सबलोग अपने-अपने बिस्तरों में चले गये। चानु ने ऊँची मुसहरी गिरा दी थी, घर की बत्तियां बुझा दी गई थी। घुप्प अंधेरे में घर की दीवारें विलीन हो चुकी थी, सिर के ऊपर मुसहरी की छत भी नजर नहीं आ रही थी। चानु की आँखों में नींद नहीं थी, वह सांस रोके आँखें खोल अंधेरे में देखने की कोशिश कर रही थी। बगल के कमरे में माँ-बाबा सोये थे। सामने की चौकी पर उसके दोनों छोटे भाई-बहन सो रहे थे।

चानु ने आँखें बंद कर ली, उसकी आँखों से आँसू बहकर कपोलो पर गिर रहे थे। उसे पता नहीं चल रहा था, उसे नींद क्यों नहीं आ रही है, उसे यह भी मालूम नहीं हो रहा था कि आँसू क्यों गिर रहे हैं।”¹⁵

मणिपुर में अलगाववादियों का ढेरा जमा रहता है। राजनीति दांव-पंच में कई बार स्थिति गम्भीर हो जाती है। गैर मणिपुरी वासियों पर शोषण शुरू हो जाता है। यह स्थिति अस्थिर होती जरूर है। किन्तु लम्बे समय तक रहता है। इन हालातों में मणिपुरी महिलाएँ अपने समाज के विरोध जाकर भी अपने गैर-मणिपुरी लोगों को शरण देते हैं। उनकी रक्षा करती है। यह एक भावुक मंजर होता है। स्त्रियों की ऐसी सहायता करना आपस की विश्वास की भावना को बनाएँ रखते हैं-

“ उन सब का इस बार का अनुभव सामान्य था। सबों ने बताया, उनके पड़ोसियों ने बहुत मदद की। मणिपुरी पड़ोसियों ने उनकी सुरक्षा के लिये, उन्हें अपने घरों में रखा, कई दिनों तक उन्हें खाना खिलाया। कई जगहों पर गुप बनाकर उनके घरों की पहरेदारी की।

पर वे इसे अधिक दिनों तक नहीं चला सकते थे, उपद्रवकारी लगातार अपने दवाव बढ़ा रहे थे। अतः जब अधिकारियों से संपर्क हुआ, उन्होंने आँसुओं से उनकी विदाई की।

महिलाएँ अपनी पड़ोसी मणिपुरी महिलाओं के गले लग रोती रही। मणिपुरी महिलाओं ने रो-रोकर उनसे कहा, बहन फिर लौटकर आना, हमें तुम्हारे बिना बड़ा सूना लगेगा।”¹⁶

चानु ‘ आहुति’ उपन्यास की नायिका मनोज से प्रेम करती है। परन्तु इसका इजहार नहीं करते। हालांकि यह बात भली- भांति समझती थी। अपने प्रांत के ऐसे अशांति और खून-खराबा के बीच भी गैर-मणिपुरी मनोज की चिंता में निरंतर रोती रही। उसके परछाई में भी एक प्रकार की उदासी छलकती है। यह उसके सच्चे प्रेम की व्यथा बयान करती है।

“ चानु अपने भाई-बहन के साथ कमरे में आई, दोनों बच्चे मनोज के अगल-बगल बैठे। सामने चानु खड़ी थी। मनोज ने सिर उठाकर उसे देखा, उसके चेहरे पर उदासी की छाया नजर आई। वह कुछ समझ नहीं पाया। वह कुछ बोल भी नहीं पा रहा था।”¹⁷

एक विपत्ति दूसरे का दर्द बनना चाहिए। एक की पीड़ा दूसरे की वेदना होनी चाहिए। स्त्री - विमर्श और अनेक प्रकार के विमर्शों का जन्म इसी की देन है। 'उत्तर पूर्व' पूर्वोत्तर पर केन्द्रित करके लिखा गया उपन्यास है। यहाँ की नारी मुग्धा जो की गैर-मणिपुरी थी, वे सरकारी उत्पीड़न के विरोध राजनीतिक आन्दोलन करने वालों के लिए कानूनी लड़ाई लड़ने आई थी। वहाँ के न होते हुए भी वहाँ के दर्द को महसूस करने की चेष्टा में थी। उसका व्यक्तित्व इतना तेजस्वी था कि अच्छे-अच्छे सूरमा भी उसके आगे पानी भरते नज़र आते हैं। लेखक बताते हैं-

“उसे हाशिए से प्रेम था। वह जो भी हाशिए पर डाल दिया गया हो, यानी सब आल्टर्न हो - आदमी, समुदाय या क्षेत्र उसके साथ सहानुभूति रखती और उसके संघर्ष को अपना समझने लगती थी उसकी शुरू में पूर्वोत्तर भारत में दिलचस्पी वैसी ही थी जैसे नेहरूवादियों की, पर जब वह पूर्वोत्तर विद्यार्थियों के संगठनों में हिस्सेदारी करने लगी तो वह मात्र आउटसाइडर और सिम्पेथाइजर नहीं रह गई। वह उनके पर्वों में इन्द्रधनुषी परिधानों में प्रस्तुत मुक्त नृत्यों में उल्लास से शामिल होती। जब सुप्रीम कोर्ट में वकालत शुरू हुई तो उत्तर-पूर्व के मुकदमे उसके पास आने लगे। वह पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स में सक्रिय थी इसलिए मानवाधिकार वाले मुकदमे शर्तिया तौर पर उसी के पास आते वह एक तरह से नार्थ ईस्ट की एक्सपर्ट मानी जाने लगी थी।”¹⁸

जिसका जो अधिकार है, वह उसे अवश्य ही मिलनी चाहिए। चाहे कितने ही लड़ाईयाँ क्यों न लड़ने पड़े। यही मुग्धा का नैतिक विचार था। हालांकि मुग्धा इंफाल पहली बार आई थी। किन्तु

कानून के नाम पर वहाँ हो रहा जुल्म की दास्ताँ ने उस क्षेत्र को उसका अपना बना दिया था। इराबो मणिपुर युवक उसका संपर्क में था मुग्धा पर वह संपर्क भी अब खत्म सा हो गया था। फिर भी वह तनिक भी वहाँ अंजान प्रान्त में कानूनी लड़ाई के जज्बे से अकेले आने से भी पीछे नहीं हटी-

“ पर वह वहाँ गई पहली बार थी। इस बार वह मणिपुर में फौज द्वारा गाँवों में किये गए भारी जुल्म का मामला उठाने आई थी। उसे एक चर्च और स्कूल के गेस्ट हाउस में ठहराया गया था। उसका इराबो से बस इतना सम्पर्क रह गया था कि वह साल में एक- दो बार उसकी रुचि की कुछ किताबें उसे भेज देतीं। पहले खत भी लिखती थी पर जब इराबो जवाब ही नहीं देता था तो उसने खत लिखना भी बंद कर दिया था। पर किताबों की डोर जोड़े हुई थी।”¹⁹

‘राधा’ ‘उत्तर पूर्व’ की नारी पात्र जो कि पहले बहुत अधिक शांत और संकुचित स्वभाव की नारी थी। परंतु वक्त ने उसे पूरी तरह बदल दिया था। अब वह अपने को इतना बदल चुकी थी कि तनू जेसे नौजवान जो पहले उसकी तरफ देखना भी पसंद नहीं करता था। अब उसका दीवाना हो चला था। लेखक लिखते हैं-

“तनू पर तो इस वक्त इरू से ज्यादा राधा छा गई थी। कुछ भी मनभावना हो, व्यक्ति या दृश्य, वह उसे आँखों और कैमरे में बसा लेना चाहता था। कभी-कभी उसे अपना छायाकार होना अपर्याप्त लगता। वह चित्रकार, मूर्तिकार या कवि होने के लिए तड़प उठता। पर अफसोस करने के बजाय वह उस प्राप्त आनंद को जज़्ब करने में डूब जाता।”²⁰

राधा अब पहले की तरह डरी-सहमी रहने वाली नारी नहीं, बल्कि तनू जैसे मनचलों का मुंहतोड़ जवाब देने की कला में निपुण हो गई थी। लेखक बताते हैं -

“ वह अपने को रोक नहीं पाया। उसने कहा :

‘यार ईरु ! जरा राधा को बुलाना।’

‘बुलाना ? वह तो लगातार तेरे पीछे खड़ी है। सबसे ज्यादा तेरा इन्तजार उसे ही था।’ तनू ने सिर घुमाया तो राधा एक हाथ कमर पर रखे एक से दीवार का सहारा लिए चुन्नी चबाती एक तिहाई लावण्य छिपाए जिज्ञासु-सी खड़ी थी।

‘राधा यहाँ आओ मेरे सामने।’ तनू ने बुलाया।

‘बच्ची की तरह वह सामने आकर खड़ी हो गई।’ ‘ईरु! यह तो यथा नाम तथा गुण है। इसकी तो मैं हर घर में पूजा करवाऊंगा।’

‘क्या मतलब ?’

‘इसकी ऐसी तस्वीर उतारूंगा कि लोग कृष्ण को भूल महज राधा की पूजा करने लगेंगे।’

राधा आदतन भागने लगी तो तनू ने उसका हाथ पकड़कर बिठा लिया। बोला: ‘इसके आकर्षण ने तो पलभर को मेरा दोस्त ही मुझसे छीन लिया था। अभी तो मैंने इसे जाना ही नहीं था। यह तो इस यात्रा की बोनस हो गई।’²¹

‘मुक्ति’ की चाह हर कोई चाहती है। चाहे कोई भी स्त्री हो महिलाएँ उसके दुख से सम्प्रेषित कर पाती है। इसका एक मुख्य कारण है उनका ‘आपबीती’ क्योंकि वे भी इसी दर्द से कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी जरूर गुजरी होगी। अनजान महिला के साथ हुए अत्याचार और शोषण की कहानी को अपना सा मेहसूस कर थाम्बाल ‘मुक्ति’ उपन्यास की एक बुजुर्ग महिला क्रोध और घृणा का भाव से भर जाती है। महिलाओं का रूप कब कैसे हो जाए इसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता है-

“राज ने जब टूटी-फूटी हिंदी में यह पूछा, तो उसने भी कुछ शब्दों से कुछ हाथ चला चलाकर हाव-भाव से बताया कि उसके पति ने उसे नहीं भगाया है, वह बेचारा तो अत्याचारियों द्वारा मार डाला गया है। यह सुनकर बुढ़िया नागिन-सी फुफकार उठी और लड़की से बोली कि इससे पूछो कि “इस नन्हीं बच्ची के बाप को किस जालिम ने कैसे मार डाला है ?

राज ने जब यह प्रश्न किया तो उसने फिर उसी तरह शब्दों और हाव-भाव से बड़ी लकड़ी काटने के दाव को उठाकर अपनी गर्दन पर रखते हुए बतलाया कि उनकी गर्दन काटकर उनकी हत्या कर दी गई है। हत्यारे मुसलमान गुंडे थे, जिन्होंने बटवारे के अवसर का लाभ उठाकर एक सीधे-सादे सहृदय इंसान को काट-काटकर फेंक दिया।”²²

चाहे वह बंगाली उसकी कोई भी न लगती है। उसके व्यथा का समाधान वह अपनी बेटी की तरह समझकर करना चाहती थी। 'कियांगमाइची' मुक्ति की एक और नारी पात्र, जो मणिपुरी लड़की है। वह समाज में अत्याचार के खिलाफ हमेशा लड़ती है। वह अकेले ही सौ पुरुषों को परास्त करने की क्षमता रखती है। उसकी न्यायपालिका से पुरुष डरते और गलत कार्य करने से घबराने लगे हैं। उनकी सच्चाई की जंग इतनी बुलंद हैं। लेखक लिखते हैं-

“उसकी बात समझ लेने के बाद बुढ़िया क्रोध से आग-बबूला होती हुई बोली –“आने दो कियांगमाइची को ऐसे अत्याचारी मर्दों की वही अचूक दवा है। जाने कितने लम्पटों बदमाशों और गुंडों का सर काट चुकी हैं। इस पूरे इलाके के पुरुष गुंडे उसके नाम से ही काँपते हैं। उसके आते ही तुम उसे बतलाओ और तुम देखोगी कुछ ही दिनों में उन आततायियों के सिर लाकर वह तुम्हारे पैरों में रख देगी। अरे उसकी डर से तो अब हाल यह कि हमारी मणिपुरी समाज में जो बहुपत्नी विवाह की बुरी प्रथा प्रचलित थी, वह तक छूट रही है। उसने अत्याचारी पुरुषों को ठीक करने के उद्देश्य से ही तो आज तक अपना विवाह नहीं किया है। बेटी, तू अब तनिक

भी चिंता मत कर। तू ठीक जगह पर आ गई हैं। कियांगमाइची तुम्हारे पति के हत्यारों से जरूर बदला ले लेगी। उसे आने तो दे।”²³

एक माँ चाहे कितनी भी विपत्ती में क्यों न हो। वह अपने बच्चे के लिए मुकाबला करने को तैयार रहती है। वह बंगाली शरणार्थी महिला सुहांसीपुर की शरणार्थी बस्ती से अपनी और अपने बच्चे की प्राण बचाने के लिए मणिपुर तक रास्ता जंगल और नदी पार कर तय करती है। ऐसी अंधकार और बारिश में जब मर्द भी घर से निकलने से घबराते हैं। ऐसे में वह अकेली औरत बिना किसी सोच - विचार के अपने बच्चे के प्राण की रक्षा के लिए भाग खड़ी होती है। ऐसी स्त्री को अबला नहीं काली कहा जाता हैं-

“रात के इतने पिछले पहर में, जबकि हम मछली मारनेवाली मात्र इन दो औरतों के कोई और कोई मर्द भी घर से निकलने का साहस नहीं करता, तुम्हारे जैसी नौजवान औरत घर छोड़कर क्यों भागी जा रही हैं ?”²⁴

स्त्री तब तक ही शोषण का शिकार होती है। जब तक लड़ने की चाह न पाल ले। किन्तु मर्दों कि गलत हुकूमत के कारण वह अपने को अबला और बेसहारा समझ बैठती है। किन्तु यह सत्य नहीं है। इसे मान लेना वैसा ही है। जैसे आईने में प्रतिबिम्ब को ही वास्तविकता समझ बैठना है। यह देखने का नज़रिया मात्र है। ऐसे स्वप्न से जगाने के लिए एक क्रांतिकारी गरज की आवश्यकता होती है। 'कियांगमाइची कह रही थी-

“एक औरत बेचारी क्या खाक सहायता करेगी ऐसी खुराफातों में” मेहरू ने एक लंबी साँस खींचकर कहा- “और मान लो औरत सहायता करे भी तो बेचारी अबला औरत की सहायता से सबल पुरुषों को अपने जुल्म ढाने में कौन सी बड़ी कामयाबी मिल जाएगी।”

“पहले तो आप लोग यह साफ-साफ समझ लें कि स्त्री अबला नहीं है फिर यह और भी साफ समझ से कि बिना स्त्री की सहायता के संसार का कोई भी पुरुष किसी स्त्री का न कोई अनभल चाहता है, न करता है, न कर सकता है। यह बात मैं अपने जीवन के निजी अनुभवों के बल पर तो पूरी सच्चाई से कह ही सकती हूँ तथा अपनी स्वर्गीया माता के अध्ययन-अनुशीलन द्वारा प्राप्त अनुभवों से मुझे बताए गए प्रमाणों से भी कह सकती हूँ। मेरी माँ अपने सारे अध्ययनों की निचोड़ बता चुकने के बाद एक लोककथा अवश्य- अवश्य दुहराती थी।”²⁵

स्त्री कई बार किसी पहेली से कम नहीं होती हैं। उसके मन में कब, क्या बात आ जायें इसका पता कोई नहीं लगा सकता हैं। ब्रह्म का सबसे कठिन सवाल का जवाब है स्त्री को समझना। ऐसा ही कुछ रूप 'देश भीतर देश' की मिल्की में देखने को मिलता है। जिसका व्यवहार ऑफिस के युवक के प्रति प्रेमपूर्वक और स्नेही भरा हो जाता है। मिल्की एक महत्वाकांक्षी लड़की थी, उसने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपना रवैया विनय के प्रति परिवृत्त होने लगा था। लेखक लिखते हैं- " जिस मिल्की ने पहली बार पुबसरणिया पहाड़ में आये विनय को चाय के लिए अपने घर नहीं बुलाया था और रास्ते में मिलने पर बोलती नहीं थी, वह अब उसके साथ बतियाते हुए आने-जाने लगी थी बस में भी सीट खाली होने पर दोनों एक साथ ही बैठते थे। अब वह टिफिन में विनय के लिए भी कुछ-न-कुछ खाने के लिए लाती थी। ऑफिस में मिल्की के इस व्यवहार से सब हतप्रभ थे। किसी से सीधे मुँह बात न करने वाली मिल्की विनय से इतना कैसे घुलमिल गयी। काल व्याय के लिए तो यह मेलजोल हिन्दी सिनेमा के मसाले की तरह का था। असल में मिल्की बहुत महत्वाकांक्षी लड़की थी। वह कुछ बनना चाहती थी। उसे लगा कि विनय इसमें उसकी मदद कर सकता है। इसी के चलते वह विनय के नजदीक आ गयी थी। मिल्की के हर मुश्किल काम को पलक झपकते ही विनय करवा देता था। उसके काम की

तारीफ खडूस मैनेजर विश्वास भी करने लगा था। विनय तो नम्बर वन था ही ऑफिस में असल में मिल्की की नजरें मैनेजर विश्वास की कुर्सी पर थीं।”²⁶

मिल्की के लिए जो मित्रता था। विनय ने उसे प्रेम समझ लिया था। वह एक महत्वाकांक्षी स्त्री थी विनय उसके लिए एक साधन था और इसी कारण मिल्की ने उसके साथ मित्रता स्थापित किया। किंतु विनय जल्दबाजी कर बैठा। स्त्री के ऐसे विविध रूप के कारण कई बार पुरुष बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना बन बैठते हैं लेखक लिखते हैं-

"बातचीत का सिलसिला वही सामान्य बातों से भरा था। विनय ने मिल्की से असमिया भाषा को सीखने की अपनी इच्छा जाहिर की थी और मिल्की ने उसकी बात मान ली थी। उसने 'रैपिड हिन्दी असमिया कोर्स' की पुस्तक विनय को भेंट की।

किताब के पहले पेज पर उसने प्यार से लिखा था- 'प्रिय विनय के लिए ही।' विनय के लिए मिल्की के लिखे इन शब्दों का ऐसा जादू था कि वह जल्दी-से- जल्दी असमिया सीखने के लिए व्याकुल था। उसके लिए ये शब्द मिल्की की तरफ से प्यार का पहला इजहार था। जबकि मिल्की के लिए ये शब्द इसलिए खास थे कि उसके सामने किसी विदेशी मानुस ने उसके देश की भाषा सीखने की जबर्दस्त इच्छा जाहिर की थी।”²⁷

कुर्बानी केवल सैनीक ही नहीं देते हैं। उसकी प्रेमिका भी उसके पीछे अपना सारा जीवन उसके नाम पर समर्पित कर देती है। यह भी स्त्री का ही एक रूप है। जो निस्वार्थ प्रेम में अक्सर अपना जीवन अकेलेपन में ही समाप्त कर लेती है।

“अजय चेतिया।” - बुलबुल ने उसका नाम बताने के साथ ही बताया- 'वह बहुत होनहार था। पढ़ने में भी एक नम्बर का था। उसकी शादी होने वाली थी। अब उसकी प्रेमिका का क्या होगा ? ऐसी ही तमाम लड़कियाँ हैं जो शादी के बिना विधवा हो गयी हैं असम में। उनके प्रेमी

मुठभेड़ों में मार गिराए गये हैं। उनमें से बहुत सारी लड़कियों ने बन्दूक उठा ली है। ऐसी ही गति से मुठभेड़ों में असम के नौजवान मारे जाते रहे तो असम में युवाओं का अकाल पड़ जाएगा...”²⁸

इसलिए भी स्त्रियों को त्याग की देवी कहते हैं। ऐसी स्त्री पात्र ही समाज के नैतिक मूल्यों का संरक्षण करती है।

बिल्लियों की लड़ाई में अक्सर बंदर मात खा जाता है। विडंबना तो यह है कि जब तक इसका आभास होता है। स्थिति हाथ से निकल जाती है। ऐसा ही कुछ असम में घटित हो रहा था। जहाँ जाति और धर्म के नाम पर अलगाववादी अपना मतलब सात रहे थे। ऐसे षड्यंत्र - कारियों से बचाने और हिंदू - मुसलमान की आपसी लड़ाई में किसी तीसरे का फायदा उठाना इस बात की पुष्टि नमिता जैसी चतुर नारी पात्र 'जय आइ असम' उपन्यास में देती हुई नज़र आती है। जिसका असर महमूद और फूकन पर पड़ते हुए नज़र आती है। भटके हुए को सही राह पर ले आना भी नारी का ही एक रूप है-

“महमूद ने कहा- और हमारे उधर मुसलमानों को बताया जा रहा है यह हिन्दुओं का षड्यंत्र है।

असम में ये लोग न मुसलमान को रखना चाहते हैं न बंगाली को।

नमिता ने आवेश से कहा- यह सारा षड्यंत्र हमें व्यर्थ करना ही है। हम यह प्रमाणित करेंगे कि असम के जन - जातीय, मुसलमान हिन्दू आदि में अलगाव का जहर फैलाकर हमें मार्ग भ्रष्ट नहीं किया जा सकेगा। हम सभी असमिया हैं, हम सभी एक हैं एक रहकर विदेशियों के कराल ग्रास से असम को मुक्त करेंगे।”²⁹

इसलिए स्त्रियों को जगत कल्याणी का भी नाम दिया जाता है।

जब स्त्री के विविध रूपों की बात की जाती है तो समाज में स्त्रियों के भिन्न-भिन्न रूपों को देख समझ सकते हैं यायि को अपने भाई और समाज के पुरुषों द्वारा सताया जाता है। पुरुषों में विशेषकर वे वर्ग जो पंच पंचमेश्वर नियम कानूनों का पालन भगवान के हुक्म की तरह पालन करते हैं। 'यायि' यूँ तो पितृसत्तात्मक समाज से दबी कुचली हुई फिर भी उसकी अंतर की शक्ति उसे विरोध करने का साहस प्रदान करती है "जीजा जी, आपका मन कलुषित है। आप कितना गन्दा ख्याल रखते हैं। मैं तो आपकी बेटी समान हूँ। यह बिल्कुल ही उचित नहीं है कि मेरा व्याह आप से हो। छि: छि:!"³⁰

यायि अपनी जीवन नर्क बनने से बचाने के लिए अपना स्वर बीच-बीच में बुलंद करती रहती है। दूसरी ओर उसकी भाभी याजुम कमजोर स्त्रि वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। जिसे यह तो पता है कि गलत है। पर उसके विरोध खड़े होने का साहस उसमें नहीं है- "मेरे ख्याल में यह अच्छी बात नहीं होगी मगर मुझे अपनी 'न्यीदा' की परम्परा के विरोध में आवाज़ उठाने की तातक नहीं हैं।"³¹

(ख) स्त्री-पुरुष संबंध

स्त्री-पुरुष के संबंध के कई नये आयाम होते हैं। आधुनिक युग में उनके संबंधों में अनेक तरह के बिखराव और उलझने देखने को मिलती है। इसका एक कारण है स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण होना है। स्त्रियों का बाहरी काम काजों में भागीदारी, कई तरह के लोगों से मिलना-जुलना काम के सिलसिले में। यह मुख्य कारण बन जाता है उनके बीच टकराव का, क्योंकि पुरुषों में संदेह की भावना बहुत होती है। अपनी स्त्रियों का पराये पुरुषों से यूँ मिलना चाहे वह काम के सिलसिले में ही क्यों न हो बर्दाश्त के बाहर हो जाती है। इस बात को यू

समझा जा सकता है-"दाम्पत्य संबंधों में दरार आने का कारण, नारी के सजग व्यक्तित्व का केवल एक पक्ष हैं। अन्य कारण है, पुरुष की संदेहशील प्रवृत्ति। स्त्री का कार्यक्षेत्र घर तक सीमित नहीं रहा है, उसे रोजगार आदि के लिए बाहर भी जाना पड़ता है।

अनेक लोगों से मिलना-जुलना भी पड़ता है, उसके अनेक व्यक्तियों से संबंध हो जाते हैं। पुरुष उस पर संदेह करता है और हत्या तक करने को तत्पर हो जाता है।

स्त्री अगर पुरुष के साथ दोस्ती रखती है तो लोग इसका हमेशा गलत मतलब तलाशने लगते हैं। सही बात को गलत राह भी दिखाने लग जाते हैं। बिना बात की हजार बातें सुनने को मिलती है। बिना आग के धुआं निकालने में समाज के ठेकेदार माहिर होते हैं। वे महिलाओं के बुरे आचरण और खबरें फैलाने में अधिक हिस्सेदारी निभाते हैं। ऐसा कर वे अपने लिए एक सरल और कामयाब तरीका ढूंढ लेते हैं उन्हें बदनाम करने का। इस तरह से अगर वह उस महिला के साथ गलत तरीके का व्यवहार भी करे तो भी समाज के महाजनता उस पुरुष को ही सही समझे। चाहे उसके इरादे कितने ही घिनौनी क्यों न हो। दोस्ती को पाने और इस्तेमाल करने का चलन अभी के आधुनिक युग की सबसे बड़ी देन है। ऐसे में रिश्तों का कोई अहमियत ही नहीं रह जाती है।

“दूसरे दिन जब जूही मिली तो पहले की ही तरह सहज थी। मनोज का उत्साह लौटने लगा। कुछ हफ्तों के बाद जब जूही स्वयं बिना बुलाए उसके घर आ गई और चाय पीने का प्रस्ताव रख दिया तो वह खिल उठा था। उसके सपने फिर सिर उठाने लगे। उसके ख्याल से बात बढ़ नहीं रही थी- कभी-कभार मिलने और दो-चार मिनट के लिए मिलने तक सीमित थी। पहले तो वह कई बार कोशिश कर चुका था कि मामला आगे बढ़े पर इतनी मुलाकातों के बाद भी कोई नौजवान किसी भी लड़की से जिस तरह फ्लर्ट करने की कोशिश करता है वैसा करने की

हिम्मत वह जुटा नहीं पा रहा था, जूही कोई सामान्य लड़की तो थी नहीं। आतंकवादी आकर्षण।”³²

स्त्री-पुरुष का संबंध जब प्रेमपूर्वक और नैतिकता के धारा पर चले तो काफी सुंदर और मूल्यवान बन जाता है। नागा समाज पर आधारित उपन्यास 'रक्तयात्रा' में ऐसे ही संबंध को हमारे सामने प्रस्तुत की है। जहाँ विजेलू कई सालों बाद घर लौटता है। ऐसा नहीं है कि वे जिम्मेदारियों से डर कर भागे थे। बल्कि इसके पीछे का कारण है, अपने परिवार से पहले अपने देश प्रेम को सोचना नागा समाज को आज़ाद कराने के लिए जो लड़ाई लड़ी जा रही थी। उसमें कई पुरुषों का अपना घर परिवार त्यागकर जंगलों में छिपना पड़ रहा था। जिसमें विजेलू नाम का युवक भी शामिल था। कई सालों बाद जब वे अपने पत्नी बच्चों से मिलने आते हैं। जिसमें पत्नी उनसे शिकायत करती हुई नजर आती है। उनका भरा ही प्यारा नोंक-झोंक देखने को मिलता है। “टू टू, सोबो बच्चे के नाम थे। टू टू बड़ी थी और भाई से ज्यादा समझदार भी। वह पिता के पास चली आई। पर सोबू अपनी जगह से हिला तक नहीं। तब टू टू ने ही कहा, "आता क्यों नहीं, वहाँ खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है ?” सोबू बेमन से चला आया। पर पास आकर भी दोनों के मन में पिता के प्यार के लिए कोई विकलता नहीं थी। पत्नी ने विजेलू से कहा, "देखो, तुम अपने बच्चों के लिए पराये हो उठे हो।”

उसने जैसे कहा हो कि मेरे लिए तो पराये हो ही गए थे। बच्चों के लिए भी हो गए। विजेलू ने चुप रहकर ही पत्नी का आरोप स्वीकार किया। उसने टू टू, सोबो को बाहों में भरकर छाती से लगा लिया। संतान के स्पर्श की ऊष्मा आँखों में आँसू बनकर उमड़ पड़ी। पति के आँसुओं से पत्नी के मन का तमाम मैल घुल गया। पति के इंतजार में उसने जो पीड़ाएँ भोगी थीं वे भी

तिरोहित हो गई। उसने टू टू-सोवो से कहा, “अरे तुम गूंगे क्यों बने हो। अपो से कहो न कि मुंह हाथ धोकर कुछ खा लें। टू टू, जितने में कुछ पकाऊ तू जल्दी से जू ले आ।”³³

लेखक इसकी डोर कुछ इस तरह से बांधते हैं-

पर विजेलू ने दोनों बच्चों को छाती के और भी पास समेटते हुए कहा, “नहीं, अभी मैं कुछ नहीं खाऊंगा। अभी तो मैंने तुम लोगों से बात नहीं की। फिर उसी सांस में पत्नी को देखते हुए कहा, “अपने बच्चों को छाती से लगाकर कितना सुख मिलता है, यह मैंने अब जाना। मुझे उन सब पर तरस आ रहा है जो आज भी उसी तरह भटके हुए हैं, जैसे कभी मैं खुद था।”

पिता की बात न समझ पाकर टू टू-सोवो विजेलू को हैरत से भरकर देखने लगे थे। उनकी आँखों से विचलित होकर विजेलू ने भावाविष्ट होकर कहा, “तुम्हारी कसम मेरे बच्चो, मुझे तब तक चैन नहीं मिलेगी जब तक हर बिछुड़ा हुआ बाप अपने बच्चों के पास नहीं लौट आएगा।”

पत्नी पति को प्यार से भरकर देखने लगी थी। उसे लगा जैसे वह यह सब टूटू सोवो से न कहकर खुद उसी से कह रहा हो। हर पत्नी को उसका सौभाग्य लौटा देने की कसम खा रहा हो।”³⁴

स्त्री-पुरुष के संबंध अच्छे हो तो इससे सुंदर और प्यारा संबंध कोई नहीं है, ऐसा लगने लगता है। किंतु उसी रिश्ते में अगर कड़वाहट आ गए तो वही रिश्ता जहरीला लगने लगता है। हर समाज में स्त्री-पुरुष के अनेकों रूप देखने को मिलते हैं। चाहे वह प्रेम प्रसंग हो, घृणा प्रसंग हो, नफ़रत प्रसंग हो या वेदना प्रसंग हो। साथी या प्रेमी सच्चे विचारवाले हो तो कोसों दूर हो तो भी इंतजार का फल भी मिठा लगने लगता है। वहीं अगर साथ रहकर भी दिल के भाव न मिले तो जीवन जीना नर्क सा लगने लगता है। नागालैंड के समाज पर आधारित उपन्यास

'रक्तयात्रा' में दो प्रेमी जोड़े की 'निखोनों' और 'सनीयू' के प्रेम प्रसंग बड़े ही मनोहर लगता है।

लेखक ने कुछ इस तरह इसका व्याख्या किया है-

“निखोनो ने तारों को देखते हुए पूछा, "भला इतने थेमे (तारे) किसने बनाए ? ये कहाँ से आए ? ये इतने चमकदार क्यों है ?”

सनीयू ने बताया, “ये हमारे पुरखे हैं जो मर कर आसमान में जा सकते हैं। मरने के बाद हम भी आसमान में चले जाएंगे और इन्हीं की तरह चमकेंगे।”

निखोनो को मृत्यु-प्रसंग अच्छा नहीं लगा। वह तो अपने यौवन को, यौवन से प्राप्त सुख को अक्षय माने बैठी थी। उसने कहा, "नहीं, मैं मरना नहीं चाहती। मर जाऊंगी तो तुमसे अलग हो जाऊंगी। मैं तुमसे कभी अलग नहीं होना चाहती।”³⁵

सदैव साथ रहने की तीव्र इच्छा किसी मासूम बच्चे सा प्रेम, देखने में बड़ा मनोहर लगता है। दोनों मरने के बाद भी हमेशा साथ रहने की कल्पना में भी पहले कौन मरे, इसकी हौड़ लगी हुई है। सनीयू जहाँ पहले मरकर निखोनो के लिए मकान तैयार करना चाहते हैं, वहीं निखोनो पहले प्राण त्याग कर सनीयू के लिए कुत्ते का गोشت और पेठा मधु तैयार करके रखना चाहती है। ताकि सनीयू भूखा-प्यासा आये तो खा-पी सकें। हालांकि यह सब उन दोनों की कल्पना मात्र है। वास्तविक से उनका कोई लेना-देना ही नहीं है। फिर उनकी सोच से ही यह ज्ञात हो जाता है कि दोनों में कितना गहरा प्रेम है। मर कर भी साथ नहीं छोड़ना चाहते हैं- "सनीयू ने कहा, "नहीं, हम मर कर भी अलग नहीं होंगे। उधर देखो उन दो तारों को। ये दोनों तारे हमेशा साथ-साथ रहते हैं, जुड़वा बहनों की तरह।”

निखोनो मुग्ध भाव से तारों की उस जोड़ी को देखती रही और फिर सहसा पूछ बैठी, "तो तुम मेरे बिना नहीं रह सकोगे ? जब मैं आसमान में तारा बनकर पहुंचूंगी तो तुम भी मेरे पास आ जाओगे।"

सनीयू ने भावुक होकर कहा, "नहीं, पहले मैं जाऊंगा वहाँ। वहां जाकर तुम्हारे लिए घर बनाऊंगा। जब घर बनकर तैयार हो जाएगा तब तुम आना।"

पर निखोनो को यह बात नहीं सुहाई। बोली, "नहीं, पहले मैं जाऊंगी वहां। मैं तुम्हारे लिए कुत्ते का गोشت और पेठा मधु बनाकर रखूंगी। तब तुम आना, जिससे रास्ते में भूख लगने पर फौरन कुछ खा सको।"³⁶

जब पुरुष स्त्रियों की सुरक्षा और मान सम्मान की बात करें तो यह समझ लेना चाहिए कि उस समाज में पुरुषों और स्त्रियों के संबंध घनिष्ठ है। ऐसा ही कुछ 'रक्तयात्रा' उपन्यास में देखने को मिलती है। जहाँ नागा पुरुष अपने और अपनी प्रांत की अभिव्यक्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं। वही सैनिक उनकी तलाश में नागा स्त्रियों पर शोषण करने लगे थे। जो की कतई भी किसी भी समाज में मान्य नहीं हो सकती है। इसी के विरोध नागाओं की आक्रोश की ज्वाला बुलंद होती नज़र आती है-

"पर उनकी इस मुसीबत की न तो खीजेनिसा को फिकर थी और न फिजों को ही। विजेलू जैसे रक्त उन्मादी भी उनकी तकलीफों से बेखबर हिंसा और ध्वंस के रास्ते पर चलते रहे। उदार विचार के नागाओं ने हिंसा और रक्तपात की कार्यवाहियों के खिलाफ आवाज उठाई। लोग छिपे नागाओं की नीतियों की आलोचना करने लगे। इस पर फिजो ने सुरक्षा सैनिकों पर ही दोष मढ़ना शुरू कर दिया। उसने उन पर मिथ्या और अतिरंजित आरोप लगाते हुए कहा, "हम अपनी आजादी के लिए लड़ रहे हैं। मगर हिंदुस्तानी फौजें हमें गुलाम बनाने के लिए हमला

कर रही है। उनके सिपाही हमारे गाँवों को जलाते हैं। हमारी बहू-बेटियों को बेइज्जत करते हैं। कोई नागा औरत सुरक्षित नहीं। यह फौजी उनसे दरिदों की तरह पेश आते हैं। हम तब तक चुप बैठने वाले नहीं जब तक कि उन्हें अपने देश से निकाल बाहर न कर दें।" इस पर उदार नागा कहते "यह आग आखिर किसने लगाई? हर निर्दोष हत्या, बलात्कार और आगजनी की जिम्मेदारी उन लोगों पर है जो सीधे-सादे नागाओं को गुमराह कर रहे हैं। वे अपनी गलत जिद पर अड़े रहे तो नागा तबाह हो जाएंगे।"³⁷

औरत चाहे तो कितनी भी बहादुर और तेजस्वी क्यों न हो। वह अपने जीवन में एक पुरुष अवश्य चाहती है। जो उसे प्यार करें, उनकी जरूरत का ख्याल रखें। उसके हर दुख-सुख में साथ निभाए। 'जोतसोमा' रक्तयात्रा उपन्यास की एक नागा लड़की है। यूँ तो उसमें साहस और चुनौतियों का सामना करने की क्षमता भरपूर है। परंतु वह भी अकेले रहना पसंद नहीं करती थी। उसका अविवाहित होना ही उसके दुखों के कारण बनते जा रहे थे। 'भिक्षु' जी बताते हैं-

"जोतसोमा आने के बाद से विचो के मन का संघर्ष बढ़ चला था। बीच-बीच में वह कोहिमा आती पर जरूरत की चीजें खरीद कर लौट जाती। कोहिमा आकर उसके मन में सामान्य जीवन जीने की लालसा तेज हो उठती। जोतसोमा कैप में पहले जैसी व्यस्तता भी नहीं थी। अब वह घायलों के बजाय होमगार्डों की वर्दियाँ बनाने में ही व्यस्त रहती। जोतसीमा गाँव में भी आती जाती। वहाँ की अनेक औरतें वर्दी सीने के काम में उसकी मदद करतीं। यह काम उसे चोरों की तरह करना पड़ता। जो अत्यंत विश्व सनीय घर थे उन्हीं में उसका आना-जाना होता। उसकी माँ इसी गाँव की लड़की थी। इसलिए किसी को उसका वहाँ होना अजीब भी नहीं लगता। सब जानते थे कि उसके माँ-बाप मर चुके हैं। बड़ा भाई अंडरग्राउंड है। शादी

उसने की नहीं। वह इतनी खूबसूरती और जवानी लेकर भी शायद इसीलिए उदास रहती है।”³⁸

समाज में कुछ अच्छे लोग होते हैं। तो कुछ बुरे भी जो हर किसी पर संदेह करते हैं। खासतौर स्त्रियों पर जब वे उम्मीद से ज्यादा बेहतर काम करने लगती हैं। तो कई सारी पुरुषों में यह विचार एवं संदेह उत्पन्न होने लगता है कि यह कोई बहुरूपिया है। डॉक्टर सिंह भी कुछ ऐसे ही विचारों वाले व्यक्ति थे, जो विचों के काम करने के तरीके से संदेह करते थे। कुमार जैसे लोग भी समाज में मौजूद हैं जो स्त्रियों की काबिलियत देख प्रसन्न होते हैं। साथ ही उनके पक्ष में अपनी बात भी पुरुषवादिता वाले विचारधारा के लोगों के सामने रखते हैं। लेखक लिखते हैं-

“कुमार ने डॉक्टर की गंभीरता का मजाक उड़ाते हुए कहा, “तुम बीमारों का इलाज करते- करते खुद भी मन से बीमार रहने लगे हो। तुम्हें इस तंदुरुस्त लड़की में कोई बीमारी नजर नहीं आई तो इसे जासूस ही मान बैठे। अरे ईसाई लड़की है। मिशनरियों के साथ रही होगी। जब सात समंदर पार से आकर मिशनरी जंगली जीवन जीने वाले लोगों की सेवा कर सकते हैं तो यह खुद अपने लोगों की सेवा क्यों नहीं कर सकती ? इसे इंजेक्शन लगाना आता है, इसका मतलब यह तो नहीं कि इसे बंदूक चलानी आती है।”³⁹

मनुष्य के जीवन में ऐसे बहुत से पल आते हैं। जब मनुष्य आत्मग्लानि से भर जाते हैं। और अपने को हमेशा दोषी समझने लगते हैं। ऐसे विचार अक्सर लोगों के कटु वचन और कोसने से उत्पन्न होते हैं। अतुल भी राखाल काका के कारण ऐसे परिस्थितियों का सामना करने लगा था। तो अतुल की पत्नी जूनतारा उसके लिए ज्ञान प्रकाश बनकर आई और चीजों को सही ढंग से समझाने लगे। यहाँ यह पता चलता है कि भटकाव के स्थिति में जीवन संगिनी किसी जलती लौ की तरह जीवन में सही राह दिखाती है। उनके बीच की बातें कुछ इस प्रकार होती हैं-

“तुम कभी-कभी इतने उदास क्यों नजर आने लगते हो ?” जूनतारा ने पास आकर कहा । “मैं सोचता हूँ राखाल काका ने कितना जादू कर दिखाया है। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था । मखना की मृत्यु का बोझ अब तक अकेले काका ही ढोते आए हैं। वह ठीक कहते हैं कि मखना की चिता की राख ठंडी भी न हुई थी कि -” अतुल कहते-कहते रुक गया।

“तुम्हारी ये बातें कभी खतम भी होंगी ? मेरे तो कान पक गए इन्हें सुनते-सुनते। यह ठीक है कि मखना काले नाग के डसने से मर गया था। यह भी ठीक है कि हमारे विवाह की तिथि शीघ्र निकल आई थी। सारी दुनिया विवाह करती है । हमने भी कर लिया तो हमसे क्या अपराध हुआ?”

“काका तो यही कहते थे कि हम मखना की चिता की राख ठंडी हो जाने देते।”

“ तो काका जो करना चाहें तो कर लें ।”

“तुम तो लाल मिर्च बनी जा रही हो। हरि हरि हे माधव !” जूनतारा जानती थी कि अतुल ने उसे चिढ़ाने के लिए ही 'हरि हरि हे माधव' की थाप लगाई है। यदि वह भगतजी की लड़की है तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसके सम्मुख भगतजी के प्रिय बोल का उपहास उड़ाया जाए ।”⁴⁰

उनके बीच की बातें आगे चलकर तर्क-वितर्क में बदल जाती है। जहाँ जूनतारा अतुल को सोचने का मार्ग दिखाती नज़र आती है। जो सोचने पर तर्क संगत भी प्रतीत होता है-

“चैत की दबूर-पूजा मीरी लोगों ने इस वर्ष बंद रखी।” अतुल ने गंभीर होकर कहा, “पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था ?”

“ तो हम क्या करें ?” जूनतारा ने नाक-भौं चढ़ाई, “और यदि आश्विन की दबूर-पूजा का द्वार आगे से सबके लिए खोलने का फैसला भी हो गया तो क्या हुआ ?”

“तुम समझती हो यह साधारण बात है। अब दिसांगमुख वाले एक मुट्ठी होकर रह सकेंगे।”

“मैं यह नहीं मान सकती।” “यह साधारण-सी बात भी तुम्हारी बुद्धि में क्यों नहीं आती?”

“मीरी लोग अपने को राजहंस मानते हैं और असमिया लोगों को तो सूअर से भी घटिया समझते हैं। नेपालियों को वे सूअर का दरजा देते हुए भी कतराते हैं। उस दिन सुना नहीं था, साधन मीरी क्या कह रहा था ?”

“पिछली बातों को भुला देना ही अच्छा है।”

“नई बातें भी कौन-सी हैं जिन्हें याद रखा जाए ?”

“वह बात तो कब की खतम हो गई कि साधन मीरी ने धनसिंह को गंदे चूहे की गाली दी थी।”

“और वह जो उसने धन सिंह का सिर तोड़ डाला था ?”

“उसका घाव तो कब का भर गया।”

जूनतारा ने झुंझलाकर कहा, “यह कहना सहज नहीं। उसके सिर पर अभी - तक पट्टी बंधी हैं।”⁴¹

इतनी गर्मा-गर्मी बहस के बीच दोनो घनिष्ठ प्रेम को देखा जा सकता है। जूनतारा वैसे तो किसी नेता से कम नज़र नहीं आती है। उसकी भाषण कला से तो ऐसा ही महसूस होता है। एक शेरनी के भीतर एक नादान बच्ची छिपी हुई हैं-

“घर के पोखर के किनारे टहलते हुए अतुल और जूनतारा देर तक बातें करते रहे। अब तो सूर्योदय हो रहा था, यही तो गाय दुहने का समय था।

“गाय मैं दुह लूंगी।” जूनतारा मुसकराई।

“अपना रूप तो देखो।” अतुल ने हँसकर कहा, “दिन पूरे हो रहे हैं और कहती है- गाय मैं दुह लूंगी !” जूनतारा लजा गई। पोखर में तैरती हुई बत्तखें कै- कै कर उठीं, जैसे वे भी अतुल के साथ सम्मिलित होकर जूनतारा को छेड़ रही हों।”⁴²

अतुल और जूनतारा के प्रेम से प्रकृति भी उनके प्रेम संवाद में विलीन होती हुई नज़र आती हैं।

‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ मिज़ोरम के उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग आते हैं। जहाँ स्त्री-पुरुष के समंजस्य से बड़ा ही रमणिय वातावरण बनता नज़र आता है। पहाड़ी जनजातियाँ ज्यादातर खेतो और किसानों की जीवन पर ही निर्भर होता है। यह कार्य पुरुष-स्त्री दोनों ही मिलके किया करते हैं। ‘खूमा’ (युवक) और कामी (युवती) के माध्यम से श्रीप्रकाश मिश्र जी ने मिज़ों जनजाति के स्त्री-पुरुष संबंध उजागर किया हैं-

“कामी बोली, “एक आँतर और है। काटकर ही उठते हैं।” खूमा बोला: “इतनी धूप में पक जाओगी।”

उसकी आँखों की चमक ताड़ कामी भड़क उठी। पर उसी उत्साह से बोली, “जाने कब से पके हैं।” और अपनी ही बात पर शर्मा गई।

खूमा टिन की बाल्टी में रखे पानी के पास गया। पानी खौल रहा था। फिर भी एक मग ढाला और होंठों से लगाने ही जा रहा था कि कानों से गीत की एक कड़ी टकराई : “कन खोपुई

तिमाई तुरिन इनसुह स्यामरो नुला: " यानी अपनी राजधानी को सुंदर बनाने के लिए पीना छोड़ दो युवतियों! खूमा ने गर्दन मोड़कर देखा तो कामी एक हाथ से हँसिया सूरज की ओर तान नाच-नाचकर गा रही थी। खूमा गर्म पानी की कुछ बूँदें हलक में उतार, बाल्टी का बाकी पानी जमीन पर फेंक उठ गया और बाल्टी को हँसिया से पीट-पीटकर बजाता कामी के खेत की बाड़ फलाँग उसके पास पहुँच गया। दोनों बाल्टी पीट-पीटकर गाने लगे। फिर तो हर खेत से हँसिया और जो भी धातु हाथ लगी उसे पीटकर हर दिशा से नुला-तलडवाल आनन-फानन में इकट्ठा हो दीन-दुनिया से बेखबर हो नाचने-गाने लगे।"⁴³

आपसी छेड़-खानी और नृत्य के माध्यम से वे पानी की महत्वता को समझाते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच इस तरह के जवाब पंक्तियों से प्रकृति की महत्वता तो पता चलता ही है। साथ ही मिजो समाज में खेती-बारी महिलाएँ पुरुष आपस में मिलकर, मेल-जोल से कैसे रहते हैं। इसका भी पता चलता है-

"लड़का : अपन राजधानी को सुंदर बनाने के लिए पानी छोड़ दो, युवतियों।

लड़की: पीने से मिली तृप्ति को जो एक बार जान चुका है, वह भला पीना कैसे छोड़ सकता है। इस जिंदगी में जितने दिन हैं, उन पर व्यर्थ की ब्रूडिंग से तो अच्छा है आदमी पीता ही चला जाए।

लड़का: तब ऐसा नशा क्या पीना जो उतर जाए? अरे ऐसा नशा पीओ जो तुम्हें आपादमस्तक सराबोर करता, देश-काल-परिस्थिति से दूर ले जा अनंत काल तक चूर रखे।

लड़की: अरे तू तो वाई की तरह बोलता है, उसका दर्शन बघारता है। हमें वैसा नशा नहीं पीना जो हमारी आत्मा को सराबोर करे। हम तो वह नशा पीते हैं जो हमारे शरीर को तर करता है। जब शरीर ही प्यासा रहेगा, तब आत्मा का क्या करना?

सभी: पीओ, भाई पीओ। ऐसा नशा पीओ जो हमें इसी देश-काल का बना अपनी स्थिति का मजा लेने में सहयोग दे। हमारा आज तृप्त है तो कल भी तृप्त रहेगा।
वे होश में आए तो देखा कि खूमा की बाँहों में नुथलुई रौपारी है। कामी खूमा के दूर के पितामह के गोद में है और लालदोला जोरमी के साथ आलिंगनबद्ध है।”⁴⁴

पुरुष चाहे कितना भी शर्मीला क्यों न हो स्त्रियों के मामले में वह बेशर्मा बन ही जाता है। खासतौर पर तब जब वह महिला उसके प्रेम प्रसंग को न समझती हो। ऐसे में पुरुषों के मन में एक प्रकार की अहम् भावना जाग उठती है कि वह मुझे न कैसे बोल सकती हैं। माइकल मिजो लड़का जो पहले कामी से नज़र तक नहीं मिला पाता था। उसके व्यवहार में इतना परिवर्तन आ चुका था कि कामी स्वयं आश्चर्यचकित हो गई थी। यह माइकल का प्रेम कहे या फिर पुरुषवादी अहम् जो उसे बेतुका बना दिया था। लेखक लिखते हैं-

“रुआलखूमा की गिरफ्तारी के बाद से और भी। माइकल की शक्ल-सूरत ही कुछ ऐसी हैं। चारों तरफ “मेलछिया”² शब्द से ही अभिनंदित होता हैं।

लेकिन माइकल नहीं माना। उससे चिपककर बैठ गया। कामी को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह छोकरा जो उसकी आँख की एक सिकन से सहम जाता रहा है, लगता है, आज पूरा मर्द हो गया है। कामी अपने ही विचार पर झेप गई और मुस्करा दी। माइकल की ढिठाई बढ़ गई। बोला, “कामी तू इतनी सुंदर है! मुस्कराती रहो तो फूल झड़ें। पर हमेशा कटखन्नी पिल्ली बनी रहती हो।”

कामी की भौहें संकुचित हो गईं। बोली कुछ नहीं। माइकल का उत्साह बढ़ा। बोला, “जानती हो गुस्सा होने पर चेहरे की बत्तीस माँसपेशियाँ दबती हैं, पर मुस्कराने में सिर्फ दो।”

“पर किसी नारी पर पुरुष के झुक जाने से सारी माँसपेशियाँ तन जाती हैं-तुझे पता है?”⁴⁵

कामी कहीं-न-कहीं माइकल के बातों से चिढ़ गई थी। क्योंकि वह निजी मामलों में जरूरत से ज्यादा दखल दे रहा था। साथ ही वह अपने प्रेमी के बारे में माइकल को बताना नहीं चाहती थी। क्योंकि गैर-मिजो संबंध स्थापित होने पर मिजो पुरुष यह बात सहन नहीं कर पाते हैं। कई बार उनको मृत्युदंड भी मिल जाता है। कामी एक सभाविमानी लड़की थी। वह यह कभी भी नहीं चाहती थी उसके प्रेमी पर आंच भी आए। इसलिए वह चतुरतापूर्वक बातों को घुमाकर कह रही थी-

"वह कुढ़कर बोली, "क्या मेरे लिए भी चोली लाओगे ? बयालीस नंबर है ।" माइकल न चाहते हुए भी शर्मा गया। बोला, "ट्राइजंक्शन का कैप क्यों खाली हो जाएगा?"

कामी बोली, "तो क्या हमारे तलडवाल तुम्हारी गोली खाने के लिए पड़े रहेंगे? हमारा लालडेडा तुम्हारी धौस का गुलाम है?"

माइकल न समझते हुए भी बहुत कुछ समझ गया। बासा लौट आया और तुरंत आइजाल खबर भेजा, "ट्राइजंक्शन पर कैप कर रही बियाकबेला की टुकड़ी चुपके-चुपके बंगलादेश भाग जाना चाह रही है और प्रशासन का ध्यान बटाने के लिए ये आतंकवादी कार्यवाइयाँ की जा रही हैं बागियों द्वारा।"⁴⁶

खासी समाज महिला प्रधान समाज है, परंतु ऐसा नहीं है कि पुरुष वहाँ खा-पीकर ऐश करते हैं सब समाज का अपना एक नियम होता है अपना एक दायरा भी। खासी पुरुष मेहनती होते हैं। अपना घर अच्छी तरह से मेहनत के बल पर बसा ले। 'राफताब' 'रूपतिल्ली की कथा' का पुरुष पात्र जो यह चाहता था कि अपने पत्नी के साथ अलग से एक संसार बसाये। जहाँ अपने बच्चों को अपने हिसाब से पाले और कुछ-न-कुछ काम करके उनका पेट पाले। जिसके लिए वह अपने पत्नी का साथ चाहता था। पत्नी जो की माँ के घर को अभी तक छोड़ी नहीं थी। 'राफताब' का

अपना एक सपना था, परिवार को बसाने का, उसे साकार करने का जो कि हर व्यक्ति चाहता है। खासी में बेटियों की जिम्मेदारी और हैसियत घर में कुछ अलग प्रकार की होती हैं। इसलिए सामान्य परिवार की तरह उनके पारिवारिक सपना संपन्न में कुछ अड़चनें थी। जिसके लिए उसे अपनी पत्नी की मंजूरी चाहिए। लेखक लिखते हैं-

"पत्नी को कह आया था कि दो बच्चे हो गये हैं। अब यह ठीक नहीं लगता कि वह अपनी नानी के परिवार में मौसियों और बहनों के साथ बनी रहे। और वह रात में उससे मिलने उसके घर आये। उस घर का कुछ न ग्रहण करे- जमाई के लिए असम्मानजनक होगा ससुराल में रोज-रोज खाना-पीना। और न अपने घर का कुछ दे-जमाई से मौका बेमौका कुछ लेना सुहाता नहीं खासी समाज में। इसलिए अब अपनी झोपड़ी बनाने का प्रबंध करे। अब नजवा अपनी माँ की अंतिम बेटी तो है नहीं कि उत्तराधिकार में कुछ पायेगी। तब सब कुछ उसे स्वयं ही करना है-सुई से संदूक तक जुटाना है। इस घर में रहते हुए वह सिर्फ इतनी छूट ले सकती है कि अपने श्रम से कुछ बचाकर वह अपनी निजी संपत्ति बना सकती है। खेत-बारी तो है नहीं। सबके श्रम से झूम से सिर्फ इतना निकल पाता है कि जंगली पत्तों, फलों और कोमल तनों के साथ उसे खा-पीकर साल बिता लिया जाये तब वह तेजपात के पत्तों को बुहारकर अगर ढेरियाँ लगा ले तो दाउकी के बाजार में बंगाली बनिये को बेंचकर कुछ नकद पैदा कर सकता है। जंगल से बाँस, लकड़ी और बेंत लाकर अपना घर खड़ा कर लेगा। उन पैसों से कुछ बसन-बासन खरीद लेगा। अपना झूम कर लेगा तो बच्चों के पेट में गूदा भरने भर का अन्न जुटा लेगा।"⁴⁷

घर संसार पति-पत्नी के मेलजोल से ही चलती है। जिसके लिए उनके आपस के विचार मिलना अत्यावश्यक है। साथ ही अपने पति की आत्मसम्मान का रक्षा भी पत्नी के हाथों में है। जिसका ध्यान उसे रखना चाहिए। साथ ही पति का भी यह दायित्व होता है कि अपनी पत्नी के जरूरतों का ख्याल वह भी रखें।

प्रेम में हर कोई सुंदर बन जाता है। ऐसा लोग कहते हैं। इसका कारण है अपने प्रेमी या प्रेमिका को देख उनका मन खुश हो जाना और चहरे की मुस्कुराहट उसकी सुंदरता बढ़ा देती है। चानु 'आहुति' उपन्यास की मणिपुरी लड़की मनोज के प्रेम में बहुत परिवृत हो चुकी थी। जिसे देख मनोज के मन में भी अजीब सी तरंगे बज उठी थी। प्रेम हर किसी को बदल कर रख देती है। यही चानु और मनोज के प्रेम कथा में भी उजागर होती है। जिसका वर्णन 'श्रीधर पांडे' जी कुछ इस प्रकार से करते हैं-

"चानु ने मनोज की बांह पकड़ बैंच की ओर बढ़ते हुये कहा, मैं फोटो खिंचवाने नहीं आई हूँ, यह तो न जाने बचपन से कितनी बार किया है। मैं तो आज आई हूँ ताकि कुछ पल आपके साथ झील के किनारे बिता सकूँ। बैंच पर बैठते हुए मनोज ने घुमकर बगल में बैठी चानु के चेहरे की ओर देखा। न जाने क्यों आज चानु पहले वाली चानु नहीं मालूम हो रही थी। इन दो वर्षों में हुए परिवर्तन को आज पहली बार उसने देखा उसका मुस्कुराता चेहरा देख उसके हृदय में भी पहली बार कुछ अजीब सी धड़कन महसूस हुई।" ⁴⁸

चानु मनोज के जीवन में एक उम्मीद की नई किरण बनकर आई थी। बंजर ज़मीन में सावन की पहली बूंद की तरह लगने लगी थी। निराशा और बेचैनी भरी जीवन में सूरज की पहली किरण बनकर सामने आई थी। मनोज को अपने प्रांत में बेरोजगारी और लाचारी के छाये ने घेर रखा था। और यहाँ मणिपुर में आने के बाद आतंकी और भय के छाये ने घेर लिया था। इन दोनों के बीच एक पतली सी उम्मीद और उमंग की रेखा चानु थी। जो उसे हर हालातों का सामना करने की ताकत एवं हिम्मत प्रदान करती थी। जिसका जिक्र लेखक ने कुछ इस प्रकार किया है-

"नवयुवकों में असंतोष दिखाई पड़ता, उनकी आम शिकायत रहती उनकी अधिक योग्यता थी, जिसकी अवहेलना कर स्थानीय लड़के को नौकरी दे दी गई। बहुतों ने छोटे-मोटे धंधे शुरू किये

थे, उनके भी कटु अनुभव थे। स्थानीय लड़कों ने उनकी दुकान से सामान ले लिया और दाम माँगने पर धमकी दी।

जिस समाज में इतना आंतरिक संघर्ष था, वहाँ अपने लिये स्थान बनाने के , प्रयत्न में वह लगा हैं। क्या वह सफल हो पायेगा? उसे निराशा घेर लेती, पर जब उसे अपने घर और गाँव की त्रासदी याद आती तो वह सोचता, यहाँ तो वह बहुत अच्छा है, उसे काम भी मिल गया है। धीरे-धीरे यहाँ अच्छे मित्र भी मिलने लगे हैं। उसे शर्माजी याद आते उनकी सज्जनता का वह कायल है। उन्होंने उसे अपने घर ले जाकर अपने परिवार से मिलाया था, सबने कितना आदर दिया, स्नेह दिया। और चानु ?

चानु से मनोज की अन्तरंगता बढ़ गई थी। मोयरंग और लोकताक भ्रमण के बाद वह अपने आप में परिवर्तन पाने लगा। हर व्यस्तता के बावजूद वह चानु के घर जाने का अपना रूटीन नहीं भूलता । जिस दिन वह नहीं जा पता, उसे लगता कोई बहुत बड़ा काम छूट गया। चानु बी. ए. के दूसरे वर्ष की तैयारी कर रही थी, मनोज ने उसकी पढ़ाई की तैयारी में अपना सहयोग जारी रखा था ।”⁴⁹

चानु ही थी, जो मनोज को उदासी के साये से बाहर निकालने का कार्य करती थी। प्रेम कब मन में पनपती है और कब इसकी जड़ें हृदय में मजबूत हो जाती है। इसका एहसास किसी को नहीं होता है। पर जब तक दिमाग को इस बात का पता चलता है। तब तक प्रेम रूह में जगह बना चुकी होती है। प्रेम की ताकत ही कुछ ऐसी होती है। जो पत्थर में भी फूल खिला देती है। बंजर ज़मीन को भी उपजाऊ बना डालती है। चानु के मन में भी मनोज का प्रेम कुछ इसी प्रकार हावी हो चुका था। जिसका सबूत उसके आँखों से निकले आँसू ही चीख-चीख कर कह देती है। लेखक बताते हैं-

“बच्चों ने कहा, 'मास्टरजी जानते हैं, दीदी बहुत रो रही थी और खाना भी नहीं खा रही थी।”

“क्यों?” मनोज ने पूछा।

चानु ने बच्चों को घुड़का और बोली 'ये झूठ बोलते हैं।'

बच्चों ने प्रतिवाद किया, नहीं हमने देखा है, जब भी माँ खाने को कहती थी तो दीदी बोलती थी, मुझे भूख नहीं। और कमरे में छिपकर धीरे-धीरे रोती रहती थी।”⁵⁰

चानु की वेदना का कहीं तोड़ नहीं था। जब तक की सकुशल होने की खबर न मिली। पर पुरुष ऐसी भावनाएँ अक्सर समझ नहीं पाते हैं। उन्हें सिर्फ वही सत्य लगता है। जिसको शब्दों के माध्यम से बयान किया जाता है। परंतु हर भावनाएँ शब्दों से नहीं जुड़ी होती है। कुछ आत्मिक होती है। जिसे केवल समझा और महसूस किया जा सकता है। मनोज जब अपने गाँव बिहार में जाने की बात कहता है। तो चानु अंदर-अंदर मर सी जाती है। क्योंकि इतने दिन बिना मनोज को देखे बिना प्राण के शरीर को लिये जी रही थी। आज जब उसमें सांस आई तो वह जाने की बात कह रहा है। यह सुनकर उसकी पीड़ा का कोई ठिकाना न रही और वह भीतर से कहीं मर सी गई-

“मनोज धीरे से हंस पड़ा, “अरे इसमें अधिकार देने की बात कहाँ से आ गई। इतना बड़ा संकट आया था, मैं बच गया, तुम्हें इसकी खुशी नहीं है क्या ?” एकाएक चानु की आँखों से आँसू निकल आये, उसने अपने दोनों होठों को दाबकर अपनी कांपती आवाज को रोकने की कोशिश की।

उसने मन ही मन कहा, “भगवान जानता है, पिछले दिन मैंने कैसे गुजारे। एक मिनट भी मैं चैन से नहीं रही, जब तक बाबा ने नहीं बताया आप राम अवतार के साथ सकुशल हैं।” बिना उत्तर दिए वह भागकर अंदर चली गई। मनोज खड़ा उसे देखता रहा।”⁵¹

चंचल, चतुर और आत्मविश्वास से भरी हुई नारी पुरुष को बहुत आकर्षित करती है। उसकी स्वप्निल छवि पुरुषों को उनका गुलाम बनाने में सक्षम होती है। तनू पर भी राधा की ऐसी आत्मनिर्भर वाली आकृति ने जादू सा कर दिया था। वह राधा का दीवाना हो गया था। किंतु गौरतलब बात तो यह है कि राधा की पुरानी छवि दुखियारी, डरी, सहमी वाली थी। तब तनू का ध्यान उस पर कभी नहीं गया। किंतु एकाएक राधा उसके लिए आकर्षण का केंद्र बन गई। कई बार ऐसा देखने को मिलता है कि पुरुष अपनी स्त्रियों की स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली छवि को दबाएं रखने की चेष्टा करते हैं। और छवि किसी ओर में दिखे तो वह उसके पीछे दुम हिलाते फिरते हैं। वे अपनी स्त्रियों को दूसरों की नज़र से बचाएं रखना चाहते हैं। परंतु दूसरी की स्त्रियों पर उनकी नज़र अवश्य रहती है। लेखक राधा के प्रति तनू के मोह को कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

“उनके पीछे खड़ी राधा पर तनू की नजर पड़ी तो उसकी कला पारखी आँखें थम-सी गईं। उसने उसे इतने करीब से पहले कभी देखा ही नहीं था। देखा भी हो तो क्या अब वही दुखियारी राधा थी ? यह तो स्वप्निल आँखों वाली लहराती बयार में झूमती लता सी एक ऐसी नारी थी जो तालिबान को भी बुत परस्त बना दे।”⁵²

स्त्रियों में मर्दों के लिए भिन्न-भिन्न धारणाएँ होती हैं। कुछ उन्हें साहसी मानते हैं। तो कुछ उन्हें सबसे खतरनाक मानते हैं। साँप के जहर से भी जहरीला समझते हैं। इन सभी कथनों से ही स्त्री-पुरुष के बीच का संबंध समझ आता है। जहाँ थाम्बाल एक बंगाली स्त्री को देख भूत समझ बैठती है। वहीं कियामाइशी द्वारा यह कहना कि भूत प्रेत आग के पास नहीं जा सकती है।

केवल पुरुष ही जा सकता है। इसका कहने का तात्पर्य है की भूत-प्रेत से भी खतरनाक पुरुष होते हैं। वे ऐसे जीव होते हैं। जो स्त्री जाति के लिए हानिकारक है। और सबसे खतरनाक जीव है। तभी वह ऐसे कार्य कर बैठते हैं, जो कोई और नहीं कर पाता है। कियांमाइशी के विचार मर्दों के प्रति बहुत नकारात्मक है। साथ ही वह उनसे घृणा भी करती है। लेखक लिखते हैं-

“उधर से फिर मणिपुरी भाषा में आवाज आई-अब चुप भी कर डरपोकनी। भूत-प्रेत कहीं आग के पास जाते हैं। अरे कोई स्त्री होगी। आदमी के अतिरिक्त और कोई जीव आग के पास नहीं जा सकता है।”⁵³

कियांमाइशी का संबंध पुरुषों के साथ नकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करने वाले ही हुए हैं। और उसके ऐसे विचार उसी का परिणाम है। मणिपुरी समाज में स्त्रियों पर हाथ उठाना और उन्हें मार-मार कर घर से निकाल देना। ऐसी घटनाएं अक्सर होती है। जो की थाम्बाल के बातों से पता चलता है। पुरुष और स्त्री के संबंध इस समाज में इतने अच्छे नहीं होते हैं। घरेलू हिंसा कुछ आम बात हो गई है। साथ ही वे अपनी पत्नी पर क्रोध कर उनका शारीरिक शोषण कर घर से तो निकाल ही देते हैं और नई औरत भी घर में ले आते हैं। कभी-कभी मारपीट का स्तर इतना भयानक भी हो जाता है कि पत्नी लहलुहन तक हो जाती है। थाम्बाल कहती है-

“बुढ़िया कियांमाइची पर कुछ बड़बड़ा ही रही थी कि उसकी नज़र उस स्त्री की टाँगों से बहते खून पर पड़ी। बुढ़िया ने बच्ची से कहा कि इससे बँगला और हिंदी में पूछ देख क्या उसके मर्द ने इसे मार-मार कर घर से भगाया है? उसने मारते समय चाकू भी मार दिए हैं क्या ? जो खून बह रहा है।”⁵⁴

थाम्बाल के प्रश्नों से यह तो अवश्य पता चल रहा था कि मणिपुरी समाज में भी महिलाओं को पशुओं सा व्यवहार किया जाता है। मारपीट करना औरत को बेवक्त घर से बाहर निकाल फेंकना। इस तरह की घटना घटित होती रहती है। उस बंगाली महिला की कहानी बहुत दुखद

थी। साथ ही उसके पुरुष के हत्या कर दिए जाने पर वह बेसहारा हो गई थी। पुरुष साथ हो तो किसी भी तरह का सहारा मिलता है। मनोबल प्रदान कराती है, पर उस बंगाली औरत का वह शक्ति भी अब खत्म हो चुकी है। और वह अकेली बच्ची को लिए भटक रही है। स्त्री-पुरुष के संबंध अगर अच्छे हो तो एक-दूसरे के लिए अह्म भूमिका निभाती है। लेखक लिखते हैं-

“इतनी सारी जिज्ञासाओं को सुनते-सुनते तो उसके कान दुःखने लगे। जब लड़की बार-बार दुहराने लगी कि “तुम कहाँ से भागी हो ?” - तो उसने बतलाया “सुहांसीपुर की शरणार्थी बस्ती से।”

सुनते ही बुढ़िया ने दाँतों तले अँगुली दबा ली। फिर वह जो बड़बड़ाई। उसका सारांश था कि- “इसका मतलब कि कम-से-कम चार घंटे लगातार तो तुम दौड़ ही चुकी होगी, तभी यहाँ पहुँच पाई होगी और पिछले इन चार घंटों में तो तीन घंटे तेज़ बारिश ही होती रही है। हे राम एक औरत अपने बच्चे की जान बचाने के लिए क्या कुछ कर सकती है ? अच्छा बेटे ! इससे पूछ कि इसके पति ने इसे इतनी रात गए क्यों मार भगाया है ?”⁵⁵

जिस तरह पुरुष स्त्रियों के लिए सहारा देने का कार्य करती है। ठीक उसी तरह स्त्री भी अपनी सही जीवन साथी के लिए हर हद तक जा सकती है। कई पीढ़ियों से स्त्रियों का शोषण करते आने के कारण भी वे अपनी शक्ति भूल गई है। स्त्री और सर्पिणी को थाम्बाल ने एक समान बताया है। जिस तरह सर्पिणी ने अपने जोड़ीदार पुरुष को मार डालने पर हर हालत में वह बदला लेकर ही रहती है। वही शक्ति हम इंसानों में भी होती है। बस उसे जगाने की जरूरत होती है। स्त्री-पुरुष एक जुट हो जाए तो बड़े से बड़े विपदा का खत्मा मिलकर कर सकते हैं। और इन्हीं शक्तियों का वर्णन थाम्बाल करती हुई कहती है-

“ थाम्बाल कुछ फुसफुसाई उस पर कियांगमाइची बोली - "भूल जाएगी? एक स्त्री अपने पति के हत्यारे की शक्ल भूल जाएगी ? तू क्या बावली हो गई हैं थाम्बा ! अरे स्त्री और सर्पिणी की एक ही जाति होती है। अपने जोड़ेदार पुरुष के मारनेवाले को सर्पिणी अगर एक झलक भी देख लेती है, तो उसकी आँखों में उसकी तस्वीर अचल हो जाती है। जब तक वह उससे बदला न ले, तब तक उसे कभी नहीं भूल सकती। ठीक उसी तरह कोई भी स्त्री अपने पति के हत्यारे के चेहरे की अगर एक झलक भी देख ले, तो जीवन भर नहीं भूल सकती। हाँ, यह जरूर है कि ज़माने-ज़माने के इस पुरुष शासित समाज ने स्त्रियों के स्वाभिमान को इतना कुचल डाला है कि स्त्री यह भूल ही जाती है कि वह बदला ले सकने में भी समर्थ है। वह बस हत्यारे की तस्वीर भर ही याद किए रखती है, उसका सर नहीं उड़ा देती। मगर तू चिंता मत कर। जब यह मेरे पास आ गई है और हर तरह से शरीर से चुस्त-दुरुस्त भी है, तो मैं खुद इसे ही ऐसा पक्का बना दूँगी कि खुद यही उस हत्यारे का सर काटकर पंडोहे में फेंक देगी ।”⁵⁶

स्त्री अपने जोड़ीदार के मृत्यु का बदला लेने के लिए काली का रूप भी धारण कर लेती है। पुरुषों के षड्यंत्र और कपट का विश्लेषण कियांगमाइची करती है। पुरुष जाति बहुत चतुर होते हैं। वे स्त्रियों को हराने के लिए स्त्रियों का ही सहारा लेते हैं। क्योंकि उनमें उतनी क्षमता नहीं होती है कि बिना स्त्रियों की मदद के उनका कामयाब होना नामुमकिन है। पुरुष जाति पुरुषों से बदला लेने की षड्यंत्र अक्सर नहीं करते हैं। इसका एक कारण है उनका यह समझना पुरुष वर्ग शक्तिशाली होते हैं और अगर उनको हानि पहुँचाने जाए तो नुकसान उन्हीं का ही है। इसलिए अह्म की संतुष्टि के लिए वे सदैव स्त्रियों को ही दबा कुचल कर रखना चाहते हैं। उनकी इसी कमीनेपन का जिक्र कियांगमाइची करती हुई कहती हैं-

“मर्दों के कमीनेपन से”- कियांगमाइची तुरंत ही बोली - “पुरुषों की जाति महाकमीनी होती है । जब कोई पुरुष किसी पुरुष से पिटता है और अपने दिलो-दिमाग से इस बात को महसूस कर लेता है कि मारनेवाला पुरुष सचमुच ही उससे शक्तिशाली है, तब वह उसका गुलाम बन जाता है । उसके तलवे चाटने लगता है और उसके द्वारा बतलाए गए बुरे-से-बुरे काम को भी करने में नहीं हिचकता । मगर जब किसी स्त्री से पिटता है और अच्छी तरह जान लेता है कि स्त्री सचमुच ही उससे शक्तिशालिनी है, तब अपने कमीनेपन पर उतर आता है । फिर किसी-न-किसी तरह का छल-छद्म कर उस स्त्री को खत्म करके ही दम लेता है और अफसोस तो यह कि ऐसी स्त्री को समाप्त कर देने के लिए और स्त्रियों तक की सहायता तो लेता ही है, उसकी अपनी स्त्री भी जमकर उसका साथ देती है। स्त्री की बात मैंने इसलिए की, कि बिना स्त्री जाति की सहायता के कोई भी पुरुष स्त्री को नहीं मार सकता। और आज अभी जो हम बच निकली हैं उसका भी मुख्य कारण यही है कि अभी उन गुडों को अपनी स्त्रियों या दूसरी स्त्रियों की भी सहायता प्राप्त कर लेने का मौका ही नहीं मिला था ।”⁵⁷

जब किसी के प्रेम में होते हैं। तो उसकी हर चीज अपने लगने लगती है। उनके पसंद, नपसंद सभी को अपनाने का मन करता है। वह मंजर बड़ा सुंदर लगता है। यही सुंदरता विनय और मिल्की के प्रेम संबंध में देखने को मिलता है। लेखक प्रदीप सौरभ ने अपनी उपन्यास 'देश भीतर देश' के माध्यम से पुरुष-स्त्री का बड़ा ही सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे लिखत हैं-

“विनय टूटी-फूटी असमिया बोलने लगा था । वह कोई शब्द जब कभी गलत बोलता मिल्की उसे टोकती और सही उच्चारण और उसका अर्थ बताती। विनय को असमिया की पढ़ाई में मजा आ रहा था। वह जल्दी-से-जल्दी असमिया सीख लेना चाहता था। वह असमिया में प्रेम कविता लिख कर सबसे पहले मिल्की को दिखाना चाहता था । कविता लिखने को वह अपनी

असमिया लेखन की पहली परीक्षा मान रहा था। वह उस परीक्षा में पास होना चाहता था जल्दी-से-जल्दी। उसे जब भी समय मिलता वह असमिया लिखता-पढ़ता। उसने कुछ असमिया गानों के कैसेट खरीद लिये थे। वह उनको सुनता और जो शब्द उसे नहीं समझ आता उसे वह नोट कर लेता और बस में या फिर ऑफिस में वह मिलकी से उसका अर्थ पूछता। भूपेन हजारिका उसके प्रिय असमिया गायक बन गये थे। उसके घर में हमेशा भूपेन हजारिका के हिन्दी और असमिया कैसेट के दोनों वर्जन बजते रहते थे- 'दिल हुम हुम करे, घबराए....'⁵⁸

अच्छे लगते हैं ऐसे मधुर संबंध और सभी के मन में सकारात्मक विचार पैदा करती है। प्रेम राष्ट्रीयता और मनुष्यता की भावना को एकीकृत करती है। विनय असम का युवक नहीं था। जबकि मिलकी असमिया युक्ति है। पर दोनों के अच्छे संबंध और प्रेम प्रसंग से अनेकों दिलों में प्रेम और मानवता की भावना को उजागर करने का काम करती है और ऐसा होना अत्यावश्यक भी है। यह एकता की भावना को भी उजागर करती है।

जिस तरह चिंगारी और सूखी घास मिलकर आग उत्पन्न करती है। बिजली और बादल गरज कर बारिश लाती है। भूकंप और लहरें मिलकर समुंद्र में सैलाब लाती है। यही कुदरत का नियम है और यही नियम मानव समाज में भी चलती है। जब शोषण विरोधी स्त्री पुरुष के विचार मिलते हैं तो क्रांति की ध्वनि बजती है। यही क्रांतिकारी विचार है राजेन और नमिता के सोच आपस में मिलकर उत्पन्न होती है। लेखक राजेन के विचार बताते हुए लिखते हैं-

“राजेन बरुवा ने कहा—फुकन तुम क्या अखबारों की पुरानी फाइलें रखते हो ? अगर है तो तुम इमर्जेन्सी के दिनों के अखबारों को फिर एक बार निकाल कर पढ़ डालो। फिर जनता-शासन के दिनों के अखबारों से मिलाओ, और आज के अखबार खोल लो, देखोगे कि सब गद्दीवालों की भाषा एक है। जो सत्ता के बाहर होते हैं उनकी भाषा भी एक है। गद्दी पर आते ही भाषा भी अजीब ढंग से बदल जाती है। उस दिन हिन्दु स्तानी पंडित ने एक दोहा गाकर

सुनाया था - 'श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि', चुनाव में जीतने पर सभी राजनीतिक टेढ़े और बहरे हो जाते हैं।”⁵⁹

लेखक नमिता के विचार बताते हुए लिखते हैं-

“नमिता बोली- इसीलिए वर्तमान चुनाव-पद्धति को बदले बिना देश का उद्धार नहीं है। रुपया देकर, शराब पिलाकर, भोज देकर, मंदिर मस्जिद को चंदे देकर, मतदान केन्द्रों पर कब्जा कर, लोगों को बन्दूकों, लाठियों गुंडों के सहारे मतदान करने से रोककर हजारों हथकंडे अपना कर जैसे भी हो जीतकर सांसद और विधायक बन जाना ही जिनका ध्येय हो, उनसे देश सेवा का कोई काम हो सकता है ? हमारे गणतंत्र में इस चुनाव-पद्धति के कारण धुन पकड़ गया है। नहीं तो जनता की आस्था खो चुकनेवाले असम के इन विधायकों का क्या अधिकार है कि एक दिन भी बने रहें ?”⁶⁰

दोनों के विचार को जब आपस में मिलाएँ जाता है तो राजेन में विचारों और विरोध की आग तो हैं। परंतु उस आग को हँवा देकर सही जगह पर रावण की लंका को जलाने का मार्ग नमिता दिखाती हैं। नमिता प्रतिबिंब है उस नारी की जो पुरुषों के विरोध खड़ी होने के बजाय उनके साथ खड़ी होकर अन्याय के खिलाफ आवाज़ बुलंद करती है। पुरुषों के डगमग कदम को संभालने का कार्य स्त्री करती हैं।

अगर स्त्री संबंध की बात करे तो 'मेरी आवाज सुनो' में रिश्ते में कड़वाहट ही नज़र आती है। स्त्रियों को कमज़ोर और घर में कैदी का जीवन यापन करने के अलावा सामाजिक संरचना में उनका विशेष महत्व नहीं समझा जाता है। केवल बच्चे पैदा करना और उससे बड़ा करने के अलावा उन्हें एक मामुली और किसी भी फैसले में हिस्सेदार नहीं समझा जाता है। गाली-

गलौज, मार-पीट यहीं उनकी दिन चर्या का हिस्सा बन कर रह गया है “यायी अपने भाई मोकीर से जब ताकार पचास वर्षीग बुढ़े से शादी न करने को आपत्ति जताते है तो उसे जानवरों से भी बुरा व्यवहार किया जाता है- “मोकीर ने उसे जोर से चाँटा मारते हुए कहा । फिर उसका बाल पकड़कर खींचा और धक्का दे दिया । यायि मुँह के बल जा गिरी । इस दृश्य को देखकर भी किसी का दिल पसीजा नहीं; बल्कि सभी यायि को कुल-कलंकिनी करार दे रहे थे ।”⁶¹

ग) स्त्री नैतिकता के प्रतिमान

स्त्रियाँ नैतिकता के प्रतिमान मानी जाती है । उसका जीवन कई तरह के उतार-चढ़ाव से होकर गुजरती है । फिर भी वह नैतिक मूल्यों को कभी पैरों तले नहीं रौंदती है। जूही और मनोज की जब दोस्ती हुई तो मनोज ने अपनी नैतिक मूल्यों का पूरी तरह से कत्ल कर डाला और स्वार्थ सिद्ध करने के लिए। साथ ही जूही से नजदीकियाँ भी बढ़ाने के लिए । जिसके लिए उन्होंने अपने विवाहित होने की अपनी बात को सर्वप्रथम छुपाना जरूरी समझा और किया भी वही। उनको लगा था कि जूही उनसे जो दोस्ती बनाई है, उससे वह अपनी हर तरह की जरूरत जूही से पूरा कर सकते हैं। पर स्त्री-पुरुष के मित्रता का सिर्फ यही मतलब नहीं निकालता है । नैतिकता को बिना गवाएँ भी दोस्ती की जा सकती है । यह बात जूही को पता थी, पर मनोज के लिए मित्रता का एक ही मतलब निकलता है बाकी बातें उसके समझ के बाहर है ।

“तो क्या जूही को पता चल गया है कि वह विवाहित है ? हो सकता है । वह काफी हतोत्साहित हो गया । उसे क्या पता कि महिलाएँ जब पुरुषों से मित्रवत व्यवहार करती है ।

तो उसमें पुरुष का विवाहित होना या न होना तत्काल प्रासंगिक नहीं हो जाता। हाँ, मध्यवर्गीय पुरुष जरूर पहली ही मुलाकात के बाद किसी आकर्षक महिला को पूरी तरह पा लेने की बात सोचने लगता है। पिछले कुछ हफ्तों से मनोज जिस आसमान पर जी रहा था उससे धड़ाम से नीचे आ गिरा था।”⁶²

स्त्री कभी भी यह नहीं चाहेगी कि उसके चाहने वाले उससे दूर हो जाए। किंतु इसके विपरीत उसका कुछ अलग सा रूप भी देखने को मिल जाता है। जब प्रेम और देश की बात आती है तो वह अपने प्रेम को सरहदों में जीवन की जंग लड़ने के लिए लाल तिलक लगाने को तैयार रहती है। ऐसे ही नैतिकता के रूप में विचो 'रक्तयात्रा' उपन्यास की स्त्री पात्र नैतिकता के नए आयाम स्थापित करती नज़र आती हैं। जो फौजी प्रेमी कुमार को चीन के खिलाफ लड़ने को जाने से रोकना तो चाह रही थी। लेकिन जैसे ही देश के प्रति जिम्मेदारियों का उन्हें एहसास हुआ, उनकी आँखों में उदासी की आँसू की जगह गर्व का अग्नि चमकते नज़र आती हैं।

“क्षण भर के लिए कुमार में छिपा देशभक्त योद्धा प्रबल हो उठा था। उसकी उदासी आवाज की आग में जलकर खाक हो गई थी। विचो पर भी कुछ ऐसा असर हुआ कि वह भी अपनी पीड़ा को भूलकर एक अनोखे भाव से भर उठी थी। उसकी आँखों की उदासी आँसुओं से तरल होने वाली थी कि वह उदासी, तरलता गर्व की चमक में बदल गई। उसने वीर नागा लड़की की तरह कहा, “मैं तुम्हारी ब्याहता होती तो मैं तुम्हें अपने हाथों लड़ाई के लिए सजाती। तुम्हारे हाथों में भाला और ढाल थमाते हुए कहती जाओ और दुश्मन का सिर काटकर लाओ। मैं गाँव के दरवाजे पर खड़ी तुम्हारी राह देखूंगी। अगर दुश्मन का सिर कोटे बिना आओगे तो तुम्हें उल्टे पांवों लोटा दूंगी। मेरे घर की चौखट पर दुश्मन का कटा सिर लाकर रखोगे तो मैं तुम्हें

तुंबी में भरकर मधु दूंगी, जिससे तुम उस मधु को कटे हुए सिर पर डालते हुए कहोगे कि मेरा दुश्मन हमेशा सोता रहे। मैं दुश्मनों के और सिर काटू।”⁶³

एक उत्तम कोटि की महिला वह होती है जो अपने प्रेमी या पति के प्रति पूरी वफादारी निभायें। अपने प्रेमी को ही पति के रूप में चाहे। यह महिलाओं की नैतिकता का पहली सीढ़ी मानी जाती हैं। नैतिकता हर मनुष्य का पहली सीढ़ी होनी चाहिए, जिस मनुष्य में नैतिक मूल देखने को न मिले, वह मनुष्य मनुष्य की कोटि में भी नहीं रहते हैं। विचो नागा महिला जो कुमार नामक एक सैनिक से प्रेम कर बैठती है जब कुमार जंग के लिए जा रहा होता है। तो विचो कुमार से पत्नी का हक मांगती है क्योंकि पत्नी के रूप में वह ताउम्र उसका इंतजार कर सकती है। एक प्रकार का हक बन जाता हैं। तब अधिकार की भावना पैदा होती हैं। विचो कुमार को कभी भूल पायें ऐसा मुमकिन नहीं है। वह एक नैतिक सिद्धांतों पर चलने वाली महिला हैं। कुमार जंग में बच पाएंगा कि नहीं, इसका सही मूल्यांकन करना भी उसकी बस की बात नहीं थी। लेखक लिखते हैं-

“कुमार चमत्कृत सा विचो को देखने लगा था। वह कहती गई, “और तब सब कबीले वाले, गाँव वाले मुझे ईर्ष्या से भरकर देखते। कहते विचो के मर्द ने दुश्मनों के सिर काटे हैं। तभी न उसकी चोटी में तेरहा के कई-कई पंख लगे हैं। लंबे-लंबे पंख सफेद-काले पंख।”

पर जब उन पंखों पर उड़ती हुई उसकी कल्पना थक चली तो पीड़ा से दंशित स्वर में बोली, “पर मैं तुम्हारी प्रिया भर हूँ। तो तुम्ही बताओ कि मैं कैसे कहूँ कि तुम लड़ाई के मैदान में जाओ। दुश्मनों के सिर काटकर लाओ।”

उसकी बातों से भावुक होकर कुमार ने कहा, “मैं अपने कंधे के इस क्राउन को छूकर तुम्हें अपनी पत्नी बनाता हूँ। हम फौजियों के लिए हमारे रैंक की निशानी बहुत पवित्र होती है। जब हमसे हमारा रैंक छीना जाता है तो हमारे कंधों के क्राउन और स्टार नोच लिए जाते हैं। इसलिए मैं अपने रैंक की निशानी इसी क्राउन को छूकर कसम खाता हूँ कि...”

वह कहने ही जा रहा था कि इसी क्षण से हम पति-पत्नी हुए। तुम पत्नी की हैसियत से मुझे कह सकती हो कि जाओ और अपने देश की आन के लिए अपनी जान तक की बाजी लगा दो। पर वह कहते-कहते रुक गया। उसे लगा कि उसे ऐसा कोई अधिकार नहीं। जब वह ऐसे मुहिम पर जा रहा है जिससे जिंदा लोटकर आना किसी के बस की बात नहीं है, तो एक जवान जिंदगी को मौत के दामन से बांध देना न्याय नहीं।”⁶⁴

किसी भी महिला के लिए पत्नी या सच्चे प्रेम का अधिकार होता है। और जब तक उसे उसका अधिकार न मिले, एक प्रकार की बेचैनी या असुरक्षा की भावना उसमें विद्यमान रहती है।

“पर तभी विचो ने कहा, “चुप क्यों हो गए ? मुझे एक पत्नी का हक देने से भिभक क्यों गए ? “कुमार ने भावुकता से उबर कर कहा, “तुम जानती हो कि मैं लड़ाई पर जा रहा हूँ। कह नहीं सकता कि वहां से जिंदा लौटूंगा या नहीं। इसलिए मैं तुम्हें ऐसी जिंदगी से नहीं जोड़ सकता जिसका कोई भरोसा नहीं।”

विचो कुछ कहने ही जा रही थी कि कुमार ने जोड़ा, “पर मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ कि लड़ाई से जिंदा लौटा तो सीधा तुम्हारे पास आकर तुम्हारा हाथ माँगूंगा।

इस पर विचो ने उसकी भर्त्सना सी करते हुए कहा, “यह कहकर मेरा अपमान न करो। तुम अपने क्राउन की कसम खाकर मुझे अपना बनाओ या न बनाओ पर मैं अपनी जिंदगी की आखिरी सांस तक तुम्हारा इंतजार करूंगी, एक प्यार करने वाली बीवी की तरह इंतजार

करूंगी। लड़ाई में तुम्हें कुछ भी हो सकता है अगर इसी डर से मेरा प्यार बदल जाए तो मैं आप अपनी नजरों से गिर जाऊंगी। जब तुम दुश्मन से लड़ रहे होंगे, तब मैं भगवान से तुम्हारी जीत के लिए प्रार्थना कर रही हूंगी। मेरी सांस तुम्हें ही याद करती रहेगी। जब-जब मैं इधर आऊंगी तो यह जानते हुए भी कि तुम कहीं बहुत दूर हो इसी पेड़ के नीचे तुम्हारा इंतजार करूंगी। अपने घर में होऊंगी तो जब-जब मेरी आँखें दरवाजे की तरफ उठेंगी तो सिर्फ तुम्हारे आने की उम्मीद में। और जब-जब मेरे कान किसी आहट को सुनकर खड़े होंगे तो तुम्हारे कदमों की आवाज सुनने के लिए।"⁶⁵

विचो जैसी महिला ही समाज के नैतिक मूल का प्रतिमान होती है। ऐसी महिलाएँ ही समाज को व्यवस्थित रखती हैं। समाज के कुछ नियम होते हैं, जिन्हें कभी तोड़ना नहीं चाहिए। चाहे फिर वह पुरुष हो या स्त्री। इसी कथन की सजीव तस्वीर विचो जैसी महिलाएँ हैं। जो उस मूल्यों को किसी भी कीमत पर बिखरने या टूटने नहीं देती हैं।

महिलाओं का उदारवादी होना ही मानव संरचना की कल्पना है। चाहे जैसी भी परिस्थितियाँ क्यों न हों। वे सदैव नैतिकता को बचाए रखने की चेष्टा में लगी रहती हैं। स्त्री जाति नैतिक-मूल्य की धरोहर है। कई ऐसे तथ्य जो यह साबित करती हैं कि अगर स्त्री है, तो नैतिक मूल्य भी कहीं-न-कहीं जीवित हैं। इसका महत्त्व यह नहीं कि पुरुष नैतिक मूल्य का हनन करती हैं। मैं यह कभी नहीं कहती हूँ। परंतु कई मामलों में स्त्रियों को नैतिक मूल्यों की सुरक्षितता के रूप में भी देखा जाता है। पूर्वोत्तर केंद्रित उपन्यासों में स्त्रियाँ कई रूप में देखने को मिलती हैं। न्याय-प्रिय, लोकल्याणी, जगत-जननी, मानवता की रक्षक ऐसे अनेकों प्रसंग नजर आते हैं। स्त्रियों को कई मामलों में चरित्रहीन या पुरुषों को भटकाने वाली कहा जाता है। किंतु मौलिक सच्चाई में स्त्रियाँ समाज का कल्याण करती हैं। रक्तयात्रा में निखोनो और सनीयू के वार्तालाप के दौरान कई तरह के प्रसंग सामने आती हैं। जहाँ तारों के माध्यम से सनीयू निखोनो को भिन्न-

भिन्न स्त्रियों के बारे में बताता है। जिसका प्रासांगिक होने का कोई प्रमाण नहीं है। लेखक लिखते हैं-

“तभी कोई गीदड़ चिल्लाया। सनीयू ने समय का ध्यान करके कहा, “अच्छा तो अब घर चलें। बहुत देर हो गई। घर में माँ फिकर कर रही होगी।”

पर निखोनों पति के पार्श्व में प्राप्त एकांत सुख को छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उसने उसे अपनी दाहिनी बांह में लपेटते हुए कहा, “नहीं, अभी नहीं। पहले मुझे और तारों के बारे में बताओ।”

सनीयू ने उसके मांसल दबाव से प्रसन्न होते हुए कहा, “अरी में सब तारों के बारे में थोड़े ही जानता हूँ।”

निखोनों ने हठ करते हुए कहा, “तो जितना भी जानता है बता।”

सनीयू ने उसका मन रखते हुए कहा, “अच्छा तो इधर देख इन तारों को। इसे थैमैटिकरू कहते हैं। इनकी शक्ल वैसी ही है जैसी नागा औरतों की बरसाती की होती है। एक बार शाम के वक्त एक औरत बरखा से बचने के लिए बरसाती ओढ़े जा रही थी। तभी कुछ ऐसा हुआ कि किसी ने बरसाती छीन ली। पर छीनने वाला उसे दिखाई नहीं दिया। तभी बारिश भी रुक गई। उसने हैरत से भरकर आसमान में देखा। बादलों का नाम तक न था। तारे जगमगा रहे थे और उसकी बरसाती भी तारों का झुरमुट बनकर आसमान में जा टिकी थी। कहते हैं। वह औरत बड़ी नेक थी। सदा दूसरों की मुसीबत में काम आती थी। उसके बाद भी कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह जब भी घर से बाहर निकली हो तो बरसता पानी थम न गया हो।”

निखोनों ने उस काल्पनिक औरत की प्रशंसा करते हुए कहा, “मैं भी वैसी ही बनूंगी।”

सनीयू ने उत्तर दिया, “अरी तू तो है ही वैसी। उसी जैसी नेक और सुंदर।”⁶⁶

इस औरत के बारे में सनियू बताता है कि ऐसी नेक औरत समाज की रक्षक होते हैं। और हर परिस्थितियों में अपने को दूसरों की मदद में प्रस्तुत रखती हैं। और ऐसी स्त्रियाँ जन्म-जन्मांतर तक नैतिक प्रतिमान समाज के सामने उदाहरण रखती हैं।

निखोनो जैसी महिला अपने पति को कभी मरने नहीं देती है। पुरुषों में गर्व और आत्मविश्वास को बढ़ावा देती है। लेखक लिखते हैं-

"रास्ते में निखोनो ने पति की प्रशंसा में कहा, "तारों के बारे में तू इतना जानता है, मैं सोच भी नहीं सकती थी।

“ इस पर सनीयू ने सगर्व कहा, "अरी, अभी तो मैंने तुझे जूडियो खुपु के बारे में बताया ही नहीं। असल में यह तारा कभी-कभी ही दिखाई देता है। बड़ी लंबी मूँछ होती है इसकी। मैंने भी इसे आज तक नहीं देखा। अपने गांव की बुढ़िया लहुविलिअ को तो तू जानती है न। वही जो हमारी शादी पक्की करने तेरे घर गई थी। वह कहती है कि बहुत पहले उसने जूडियो तारे को देखा था। असल में पुराने वक्तों में इस नाम का एक आदमी था। उसे हुक्का पीने का शौक था। जब वह मरने लगा और उसके घर वाले रोने लगे तो उसने इन्हें दिलासा देते हुए कहा, 'रोते क्यों हो। मैं मरने के बाद तारा बन जाऊंगा और तब तुम सब मुझे देख सकोगे।' इस पर घर वालों ने पूछा, 'मगर हम तुम्हें पहचानेंगे कैसे ?' उसने कहा, 'आज से सातवें दिन मैं तुम्हें आसमान में हुक्का पीते हुए दिखाई पड़ूंगा। फिर सात पीढ़ियों बाद में दुबारा सबको दिखाई पड़ूंगा।’⁶⁷

इन हालातों में पुरुष अपने ज्ञान का प्रदर्शन विस्तार करने की प्रगाढ़ इच्छा बनाए रखता है। और ऐसे नेक औरतों को पति अपने प्राण से भी अधिक प्रेम करते हैं।

“तारा प्रसंग समाप्त होने पर भी निखोनों ने यह सोचते हुए कि एक दिन हर कोई मर जाता है और मर कर तारा बन जाता है, आतुर होकर कहा, “तुझे तारे बड़े पसंद हैं। पर कसम खा कि तू मुझे छोड़कर कभी तारा नहीं बनेगा।”

उत्तर में सनीयू ने उसे बांहों में भरकर प्रगाढ़ चुंबन से आश्वस्त करते हुए कहा था, “नहीं, तुझे छोड़कर मैं खुश नहीं रह सकूंगा। मैं कभी तारा नहीं बनूंगा। मैं कभी तुझसे दूर नहीं जाऊंगा और न तुझे ही अपने से दूर जाने दूंगा।”⁶⁸

स्त्रियाँ लोगों के अच्छा व्यवहार और उनका मिज़ाज देखकर यह अनुमान लगा लेती है कि वह सज्जन व्यक्ति है। इसका एक कारण यह भी है कि वह नैकी के राह पर चलना पसंद करती हैं। और सामने वाले से भी यही आशा रखती है। ‘रक्तयात्रा’ में विचो जैसी लड़की इतनी पुरुषों के बीच मरीजों की मदद करती हैं। डॉक्टर के काम में साथ देती है और फौजी से यह उम्मीद लगाती है कि वह नागालैंड की सुरक्षा करेंगे कई सारे गलत पुरुष भी वहीं में छिपे होते हैं, पर स्त्रियाँ नैतिक मूल्य कभी न मरे इसकी आशा नहीं छोड़ती हैं।

“विचो उत्तर में मुसकुरा कर रह गई थी। डॉक्टर के साथ अव-तब आने वाला अफसर उसे अच्छा लगने लगा था। वह उसे सरल और सौम्य लगता। उसे देखकर वह यही सोचती कि ऐसा आदमी कभी किसी निर्दोष को नुकसान नहीं पहुँचा सकता। फौज होती है मरने मारने के लिए, पर जैसे वह सिर्फ मरतों को बचाने के लिए ही फौजी बना हैं।”⁶⁹

ब्रह्मपुत्र असमिया समाज के उपन्यास में स्त्रियाँ अपने स्वतंत्र सेनानी प्रेमी, पति, बेटे के बिना भी घर चला रही है। और उनका अर्चन ऐसा है कि पर पुरुष उन पर निगाह तक नहीं डाल सकता है। आरती जैसी प्रेमिका अपने स्वतंत्र सेनानी प्रेमी के साथ विवाह की आशा लगाए रहती है। उसे इस बात का आभास भी है कि शायद दोनों का विवाह कभी संपन्न नहीं होगा

क्योंकि पुलिस उसकी तलाश में दिन-रात लगे हुए है पर वह उसके लिए होम हो जाने तक को तैयार है। इस बात का पता जूनतारा और आरती के संवाद के माध्यम से ज्ञात होता है-

“देवकांत कहाँ होगा, यह तो कोई नहीं जानता।”

“वह अपनी पाँत में उड़ रहा होगा।” आरती मुसकराई। जूनतारा ने हँसकर कहा, “तेरे सपनों में देवकांत अवश्य आता होगा, पर तू कभी बताएंगी थोड़े ही।”

“आता है तो आए, मैं कैसे रोक सकती हूँ ? तू अपने अतुल की बात सुना, कैसा निकला ?”

जूनतारा चुप रही। आरती ने हँसते-हँसते उसके गले में बाहें डाल दी। “वर वधू की कुंडलियाँ मिलाकर किए गए विवाह ने कुछ तो रंग दिखाया होगा। विवाह से पहले की सात रातें कितनी शुभ थी। तुम्हारे घरवाले ब्रह्मपुत्र से पानी लाकर तुम्हें स्नान कराते रहे; और अतुल के घरवालों ने भी सात दिन तक ऐसा ही किया। बता तो सही कि वर-वधू के लिए लड़कियाँ अलग-अलग पानी क्यों लाती हैं; वर-वधू की प्रशंसा में इतने गीत क्यों गाए जाते हैं ?”

“तू क्यों इतनी उतावली हो रही है ? तू तो ब्रह्मपुत्र में डुबकी लगा लेगी और हो जाएगा तेरा शुभ स्नान।”

“मैं क्यों डुबकी लगाने लगी ? मैं भी दुलहन बनकर बैठूंगी।” “तेरे लिए आम की समिधाओं से कौन हवन करेगा ?”

“हम भी उसी पंडित को बुलाएंगे। मेरे विवाह में भी एक-दूसरे को पान- तांबूल भेंट की रीति का पालन किया जाएगा, जैसा तेरे विवाह पर हुआ था।”⁷⁰

गुलामी और कायरता की बोली किसी को पसंद नहीं आती है। स्त्री-जाति हर चीज़ का विश्लेषण बड़े समीप से करते हैं। लोग जिसे पक्षता समझते हैं, वही स्त्रियों के लिए निष्पक्षता का निर्णय

समझती है। नैतिक मूल्य की रक्षा के लिए वह कभी भी तर्क-वितर्क करने से पीछे नहीं हटती है। जूनतारा जैसे बुद्धिमान स्त्री अपने पति अतुल का परिस्थितियों का विश्लेषण कर, समस्याओं का सही समाधान की आशा रखती है। जबकि धैर्य रखने में ही विश्वास रखता है। जो जूनतारा के लिए असहज परिस्थितियाँ हैं। दोनों के बीच का वार्तालाप कुछ इस प्रकार होती है-

“हमें शांति रखनी चाहिए।”

“यह शांति नहीं, कायरता है।”

“कभी आग से भी आग बुझी है ? आग तो पानी से ही बुझती है।”

“अपना ज्ञान अपने पास रखो। मैंने तो बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी आग-बबूला होते देखा है।

साधन मीरी तो सबसे यही कहता फिरता है कि दिसांगमुख का गाँव - बूढ़ा असमिया नहीं, मोरी होना चाहिए। कोई बात हुई भला !”

“और यदि बापू स्वयं ही यह बात मान जाएँ या मैं बापू को राजी कर लूँ

गाँव की भलाई के लिए ?”

जूनतारा ने हँसकर कहा, “सुअर गिर गया गड्डे में, बोला- कितना ठंडा स्थान है !”

“बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी! मेरी बात तो तुम समझोगी ही नहीं, जूनतारा !” अतुल ने उठकर अपनी पत्नी का सिर थपथपाया, “मैं कहता हूँ, शांति बड़ी वस्तु है। शांति से ही महावत हाथी को चलाता है। शांति से ही नाबरिया नाव खेता है। तुम तो भगतजी की लड़की हो, शांति की बात तुमसे अधिक कौन समझ सकता है ?”

“भक्ति और शांति तुम अपनी ही ज्ञान-गुदड़ी में छिपाकर रखो।” जूनतारा ने हँसकर कहा, “बड़ी-बड़ी बातें केवल कहने के लिए होती है।” “राखाल काका ने मीरी, असमिया और नेपाली को एक-दूसरे के समीप लाने में कैसा जादू कर दिखाया।” “तो क्या मीरी यह प्रचार करना छोड़ देंगे कि नेपाली लोगों ने दूध के धंधे पर तो इस प्रदेश में अधिकार कर ही रखा है, अब वे मीरियों की माटी खरीदकर उन्हें बेघर करने पर तुले हुए हैं।”

“मीरी ये बातें स्वयं थोड़े ही कहते हैं !”

“तो और कौन कहता है ?”

“उनके मुख से दारोगा बोल रहा है।”

“कौन दारोगा ? नारायण की तो माझूली में बदली हो गई।”

‘नारायण गया, गोपीनाथ आया। क्या अंतर पड़ता है ? पुलिस तो पुलिस

है। फिरंगी की पुलिस तो वहीं करेगी जो फिरंगी चाहेगा।” किसमें ऐसी शक्ति है कि फिरंगी से टक्कर ले?”

“देवकांत जो कार्य कर रहा है, वह तो किसी से छिपा नहीं।”

“देवकांत तो भागा-भागा फिरता है।”⁷¹

स्त्री के अनेकों रूप देखने को मिलती है। तर्क और तार्किक शक्ति स्त्रियों में बहुत अधिक होती है। लिली जैसे महिला जब नीरद से बातचीत करती है तो उसकी तार्किक शक्ति साफ तौर पर देखने को मिलती है। लेखक इस बात को कुछ इस प्रकार से लिखते हैं-

“लिली की हँसी रुकने में ही नहीं आ रही थी। नीरद को लगा कि शायद लिली उसके वस्त्रों पर हँस रही है। सफ़ेद धोती, सफ़ेद कमीज, नीरद को यही वेश पसंद था।

“ब्रह्मपुत्र को लोहित्य क्यों कहते हैं, जानती हो लिली ?” नीरद मुसकराया। लिली हँसती रही। जैसे उसे यह जानने की तनिक भी चिंता न हो पर नीरद के होंठों तक आई हुई बात पीछे न हट सकी, “यह बहुत पुरानी कथा है, लिली ! जब परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का सिर कुल्हाड़े से काट डाला, तो कुल्हाड़ा उसके हाथ से छूटता ही न था। कहते हैं उसकी माता का रक्त ब्रह्मपुत्र में गिरने से इसका जल रक्ताभ हो गया है। लोहित्य और रक्ताम पर्यायवाची हैं। माता का वध करने के पश्चात् बहुत समय तक परशुराम का मानसिक संतुलन डाँवाडोल रहा। ब्रह्मपुत्र के एक कुंड में नहाकर ही परशुराम को शांति उपलब्ध हुई। वह कुंड अब तक परशुराम कुंड कहलाता है।”

नीलकंठ नाव खेते-खेते गाने लगा :

ब्रह्मपुत्र कानो ते, बरहमथूरी जूपी

आमी खरा लोरा जाई

ऊटूबाई नीनीवा, ब्रह्मपुत्र देवता।

तामोल दी मानोता नाई।

लिली ने गंभीर होकर कहा, “यह गीत तुम अपनी पुस्तक में अवश्य दे सकते

हो, नीरद !”⁷²

लिली को तनिक भी इस बात से मतलब नहीं कि नीरद क्या बोल रहा है। वह इस बात पर जोर देती है कि जब कोई चीज़ मंत्र से नहीं बदलती है तो अंधविश्वास पाले रखने का क्या मतलब है। इस प्रसंग में नीरद भी कहीं-न-कहीं उसके सामने कमज़ोर नज़र आते हैं-

“नीरद मुसकराया, “ब्रह्मपुत्र के स्नान-मंत्र से भी कहीं अधिक मुझे यह असमिया लोकगीत अच्छा लगता है, 'ब्रह्मपुत्र के किनारे बरहमथूरी गाछ है जहाँ हम ईंधन लाने जाते हैं। इसे बहाकर मत ले जाना, ब्रह्मपुत्र देवता ! हमारी इतनी भी क्षमता तो नहीं कि तांबूल से ही तुम्हारा सत्कार कर सकें !' ब्रह्मपुत्र और जन- जीवन का कितना बढ़िया संतुलन है ।”

लिली ने हँसकर कहा, “जब ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है, तो वह किसी की प्रार्थना पर कान नहीं धरता।” “असम में घर-घर सुपारी के पेड़ नजर आते हैं। घर में कोई भी आए उसे पान-तांबूल अवश्य देते हैं। निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी तांबूल का टुकड़ा तो हर अवस्था में भेंट कर सकता है।” नीरद उत्तर की प्रतीक्षा में लिली की ओर देखने लगा।

लिली गंभीर होकर बोली, “कवि कहता है कि हमारे पास तांबूल तक नहीं है जिससे ब्रह्मपुत्र का सम्मान किया जा सके; पर प्रश्न तो यह है कि यदि उसे तांबूल भेंट कर भी दिया जाए, तो क्या ब्रह्मपुत्र अपनी बाढ़ की लहरों में बरहमथूरी का पेड़ बहा ले जाने का विचार छोड़ देगा ! मुझे तो इस विचार पर हँसी आने लगती है।”

“तुम प्रकृति को एक अंधी और बहरी शक्ति मानती हो ?”

“बिलकुल !”⁷³

मिज़ो समाज में कई नैतिक मूल्य हैं। कुछ नियम हैं, जहाँ वह पारस्परिक परिचय और आमोद प्रमोद में समय बिताते हैं। श्रीप्रकाश मिश्र जी इसके बारे में बताते हैं-

“ मिज़ो लोगों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और यौन नैतिकता के कुछ अपने नियम हैं। साधारण रूप से युवक-युवतियों के मिलने पर कोई सामाजिक बन्धन नहीं है। अक्सर संध्या समय लड़के-लड़कियों के दल गाँव में या गाँव के साथ लगे मैदान में मिलते हैं, जहाँ वे पारस्परिक परिचय

और आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करते हैं। उपन्यासकार ने एक स्थान पर ऐसे दृश्य का वर्णन करते हुए लिखा है, "गाँव के चारों तरफ फैले सारे निर्वृक्ष टीलों पर वयप्राप्त युवतियों का दल कसे नितम्ब पर हस्त-निर्मित रंगीन मोटे पुआत डाटे, आकार के अनुसार रूप ग्रहण करने वाली विदेशी चोलियों के ऊपर चुस्त ब्लाउज डाटे, धोकर कंधी किए स्वस्थ लम्बे काले बालों में विभिन्न किस्म के फूलों व तितलियों के सदृश तमाम लघु प्राणियों की अनुकृति वाले क्लिप डाटे तथा स्वस्थ स्वाभाविकता रंगीन चेहरों को बदरंग करते विदेशी क्रीम, पाउडर, लिपिस्टिक की सुगन्धित डाटे, कभी हाथ मटका कर, कभी आँख मटका कर तो कभी नितम्ब मटका कर बालों पर रंगीन पट्टी बाँधे और गले में गिटार लटकाए खिचे चले आ रहे युवकों के दल को खामख्वाह उत्तेजित किए जा रहा था। एक टीले पर जहाँ आम का अकेला पेड़ था, कुछ युवतियाँ बैठी गप्प मार रही थीं, वहीं पहुँच कर मलसोमा ने अपने गिटार के सभी तारों पर एक साथ हाथ मारा। पहले तो वे चौंक कर सी-सी कर चीख उठीं। फिर किसी ने ठीक से बजाने का प्रस्ताव दिया।"74

श्रीप्रकाश मिश्र जी बताते हैं कि कई बार ऐसा होता है कि स्त्री किसी ओर से यौन संबंध स्थापित कर लेती है। कई बार ऐसी स्थिति पति को नपुंसकता या स्त्री के सौंदर्य को नष्ट न होने देने की जिद में उसे मातृत्व-सुख से वंचित रखने के कारण भी करते हैं। लेखक लिखते-

“ यहाँ एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। वह यह कि कई बार विवाहेतर यौन सम्बन्ध पति की नपुंसकता या स्त्री के सौन्दर्य को नष्ट न होने देने की जिद में उसे मातृत्व-सुख से वंचित रखने की पति की जिद के कारण भी बनते हैं। ऐसे में भेद खुल जाने पर स्त्री चाहती है कि वह अपने प्रेमी से विवाह कर ले तथा पंचायत उसके प्रेमी का दण्ड क्षमा कर दे अथवा यदि दण्ड दिया ही जाना है, तो उसे भी बराबर का दण्ड दिया जाए, क्योंकि यौन अपराध में उसकी भी

बराबर की भागीदारी है। मिज़ो समाज दोनों का विवाह तो मानता है, किन्तु स्त्री को दण्ड में भागीदार बनाया जाए या नहीं इस विषय में वहाँ कोई परम्परा नहीं है। वानी के सन्दर्भ में यही होता है- " जब साइलो ने मुझे छोड़ दिया है और इसने मुझसे शादी करना कबूल कर लिया है, तब सजा किस बात की ?" पंचायत बोली, "जब तुम इसकी बीवी नहीं थी और साइलो की बीवी थी, उस समय किए गए कुकर्म की"। "वह तो अब खत्म हो जाता है"। "नहीं, मिजो कानून में बिना सजा खाए कोई अपराध खत्म नहीं होता। x x " तब उसके साथ मुझे भी कोड़े लगाओ। आखिर उसके अपराध में मेरी बराबर की साझेदारी है।" "उससे निपटने के लिए हमारे पास कोई परम्परा नहीं।"75

स्त्री जब किसी से प्रेम करती है तो उसके आहट मात्र से शर्मा जाती है। उसकी मौजूदगी उसे खुशी प्रदान करती है। किंतु उसी के स्थान पर अन्य कोई पुरुष उसे छू ले तो वह क्रोध से जल जाती है। मिजो समाज में स्त्री-पुरुष संबंध यू तो इतनी कठोरता से मनाही नहीं की जाती है। परंतु ऐसे समाज में स्त्रियाँ अपनी नैतिक मूल्यों को बचाएँ रखना चाहती है। कामी और माइकल की आपस की बातचीत से यह बात साफ तौर पर झलकती है-

"माइकल को देखकर दाँत पीस लिया। पर घर आए आदमी को अकारण ही डाँटकर बाहर निकाला नहीं जा सकता, इसलिए बेमन से पीढ़ा ढेलकर बोली, "लेड धूरो" ।

और दिन होता तो शायद माइकल उलटे पाँव लौट जाता। आज गरज अपनी थी। बैठ गया और बैठते ही गौर किया कि वह काफी उबासियाँ ले रही हैं और आँखें लाल हैं। मंगोल चेहरा कुम्हलाया हुआ है। वह खिसककर पास पहुँचा और हौले से उसके कंधे पर हाथ रख दिया। कामी जल गई। किंतु बड़े संयत स्वर में बोली, "ती सुह।"

माइकल जानता था कि यह मनाही मिजो परंपरा के अनुसार बड़ा ही असम्मानजनक है। कंधे पर मर्द का हाथ क्राँरी लड़की के लिए बड़ा सम्मानजनक माना जाता है। पर यह क्राँरी प्रौढ़ा, गाँव की सबसे अधिक पढ़ी-लिखी लड़की किसी बाई के हाथ रखते ही एकदम से बिफर जाती है।”⁷⁶

स्त्रियों को यूँ ही हल्के में लेना कहीं-न-कहीं गलत नज़र आता है।

चानु 'आहुति' उपन्यास की नायिका अपने प्रियजनों के लिए हमेशा अपने को आगे करती है। उसे अपने से ज्यादा मनोज की फिक्र होती है। मनोज जो की मैतेयी समाज का युवक नहीं था। किसी का रक्षा के लिए तत्पड़ता दिखाना ही मनुष्यता की निशानी होती है। और यही इसे ही नैतिक मूल्य के संरक्षक कहलाते हैं। मणिपुर के अशांति भरे माहौल में भी मनोज के लिए बेचैनी इसी नैतिकता को उजागर करती है। लेखक लिखते हैं-

“चानु तीन बजे ही कॉलेज से आ गई थी, बाजार से गुजरते हुये उसे अन्य दिनों के विपरीत कुछ दूसरे तरह का माहौल महसूस हुआ। चारों तरफ अफरा-तफरी हुई दुकानदार अपने सटर गिरा रहे थे। लोग बाजार से भागते नजर आ रहे थे। जब घर पहुँची बाबा और माँ को बाहर खड़े पाया। उसे देख दोनों ने जैसे राहत की सांस ली।”⁷⁷

वे आगे लिखते हैं-

बाबा ने कहा, “बेटी, रास्ते में कुछ गड़बड़ तो नहीं हुआ।”

“क्यों बाबा, क्या बात है। मैं तो सीधे कॉलेज से आ रही हूँ।” चानु ने पूछा नीलमणि बाबू ने कहा, “फिर बवाल हो गया, मारपीट हो रही है। पता नहीं अब मणिपुर में कभी शांति रहेगी या नहीं।” माँ ने कहा, “चलो, सबलोग भीतर चलो, दरवाजे बंद कर लो।”

चानु को बाजार में मची भगदड़ के कारण मालूम हो गया। कमरे में आने के साथ, उसे मनोज की याद आई। वह तो शहर से कम से कम दो किलोमीटर दूर बस्ती में रहता है। मनिपुरी बस्ती में न जाने कैसा वातावरण है, रात को उसका अकेला रहना ठीक नहीं। उसका मन बेचैन हो उठा, वह क्या करे। उसने बहुत सोच-विचार के बाद माँ से कहा-

“माँ, मास्टरजी तो वहाँ अकेले रहते हैं कहीं वहाँ भी उपद्रव न हो रहा हो।”

हो।“ माँ ने सिर उठाकर चानु की ओर देखा, उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई थी।”⁷⁸

मनोज की सलामती के लिए चानू माँ से भी नहीं डरी। बल्कि तर्क करने लगी। सही मनुष्यता की यही निशानी होती है। लेखक आगे बताते हैं-

“माँ ने कहा, “भगवान करे वहाँ शांति हो। पर अभी, कुछ नहीं हो सकता।” “क्यों, माँ मैं सायकिल से हो आऊँ, मुश्किल से पंद्रह-बीस मिनट का रास्ता है।”

“पागल हो गई है, शहर में हर जगह मारपीट हो रही, आग लगी हुई है.

और तुम घर से बाहर जाने की बात कर रही हो।” माँ की आवाज़ में नाराजगी थी। “मुझे कौन मारेगा, आसपास के सब लोग मुझे पहचानते हैं। मैं तेजी से जाकर लौट आऊँगी।” चानु ने माँ से कहा माँ ने डाँटते हुए कहा, “नहीं, चलो खाना खा लो। घर से बाहर नहीं निकलना है।”⁷⁹

चानू लगातार मनोज की चिन्ता में तड़प रही थी। क्योंकि उसे पता है, मनोज को बाहरी लोग समझ के कोई भी आक्रमण कर सकता है। दूसरी ओर मनोज इस बात से बिलकुल बेखबर था-

“चानु की चिन्ता से वे बेखबर थे फिर अभी तक लड़के-लड़कियों को लोग घर से बाहर नहीं निकलने दे रहे थे। कॉलेज बंद था, बच्चों का स्कूल बंद था, उन्हें बाहर जाने की जरूरत नहीं। बलवाईयों से अधिक डर लोगों को सुरक्षाकर्मियों से था। वे मनिपुरी लड़के-लड़कियों को सड़कों पर देख रोककर पूछताछ करते थे। चानु जानती थी, वह बाहर नहीं निकल सकती, पर मनोज का कोई समाचार नहीं मिलने से उसका मन अशांत था।”⁸⁰

स्त्री जिससे प्रेम करती है उससे बहुत कुछ उम्मीद भी लगा लेती है। उसकी खामोशी वह समझ जाये, ऐसे विचार पालती है। पर विडंबना तो यह है कि पुरुष कभी भी उसकी यह मनोभाव समझने की चेष्टा तक नहीं करते हैं। लेखक चानू और मनोज के बीच के वार्तालाप के माध्यम से यह बात साफ करते हैं। वे लिखते हैं-

“चानु, मैं सोच रहा हूँ घर चला जाऊँ। कई साल हो भी गए।”

चानु ने अपना चेहरा उठाकर मनोज की ओर देखा। एकाएक उसके मुख पर उदासी की छाया घनीभूत हो उठी। ऐसा लग रहा था जैसे कोई बहुत बड़े सदमे को सुन लिया है, उसकी आँखें भी छलछला आई थी। उसने खाली 'प्लेट-प्याले को उठाकर ट्रे में रखा और उठकर जाने के लिए मुड़ी। मनोज सकते में आ गया, वह समझ नहीं पा रहा था, क्या हो गया। उसने कहा, “चानु, ठहरो, तुमने कुछ नहीं पूछा दंगे में कहाँ था, कैसे था।” चानु रुक गई, उसने मुड़कर देखा और धीरे से बोली, मैं कौन होती हूँ, कुछ भी पृच्छने वाली, आपने यह अधिकार मुझे दिया है। क्या ?”⁸¹

वे मनोज की लापरवाही और चानू की व्यथा को कुछ इस प्रकार लिखते हैं- “मनोज धीरे से हँस पड़ा, “अरे इसमें अधिकार देने की बात कहाँ से आ गई। इतना बड़ा संकट आया था, मैं बच

गया, तुम्हें इसकी खुशी नहीं है क्या ?” एकाएक चानु की आँखों से आँसू निकल आये, उसने अपने दोनों होंठों को दबाकर अपनी कांपती आवाज़ को रोकने की कोशिश की। उसने मन ही मन कहा, “भगवान जानता है, पिछले दिन मैंने कैसे गुजारे। एक मिनट भी मैं चैन से नहीं रही, जबतक बाबा ने नहीं बताया आप राम अवतार के साथ सकुशल हैं।” बिना उत्तर दिए वह भागकर अंदर चली गई।

मनोज खड़ा उसे देखता रहा।”⁸²

स्त्री मन और भावनाओं के स्तर पर बहुत कोमल होती है। उसकी भावनाएँ कई बार तो वह प्रकट भी नहीं कर पाती है। केवल उसके आँखों से बहते हुए आँसू ही उस पीड़ा का मंजर व्यक्त करती है।

स्त्री क्षेत्र विशेष के आधार पर अपना रूप बदलती रहती है। स्त्री होना मतलब पुरुषों के अधीन रहना है। ऐसे प्रसंगों को वे पैरों तले रोंदती है। मुग्धा गुटू इसकी साक्षात् प्रमाण है। ‘उत्तर पूर्व’ के लेखक लाल बहादुर वर्मा इसका विश्लेषण बड़े ही सटीक रूप से करते हैं। वे लिखते हैं-

“बदलना नाम का आ गया कुछ दिन तो मत फूलो

है भांडा फोड़ देताकाम चाहे नाम जो भी हो

“मुग्धा गुटू अब अपने नामी-गिरामी पिता पी. एन. गुटू की बेटी की तरह परिचय कराये जाने पर कुढ़ती थी। जाहिर है कि अब वह स्वयं देश-भर में अच्छी तरह जानी जाती थी, कुछ क्षेत्रों जैसे, उत्तर-पूर्व भारत में तो, अपने पिता से भी ज्यादा एक खास बात और थी, जहाँ उसके पिता खास तौर पर सत्ताधारी समुदाय के बीच लोकप्रिय थे बेटी सत्ता-पीड़ितों के पक्ष में खड़ा होने के नाते जानी जाती थी। वह मानवाधिकार के लिए निर्भय होकर काम करने वाली

एडवोकेट थी और एक्टिविस्ट की और अपने कश्मीरी 'कनेक्शन' के बारे में उतनी ही गर्वीली थी जितनी 'लखनवी' कनेक्शन के। ननिहाल के लोग कई पीढ़ी पहले श्रीनगर से लखनऊ आ बसे थे और ददिहाल वादे तो खैर देहलवी थे ही। वह खुद पूरी तरह दिल्ली वाली थी- जे.एन.यू. वाली भी।”⁸³

मुग्धा एक आकर्षक व्यक्तित्व वाली स्त्री थी जिसके मन में स्नेह पलती थी। तो जुबान कड़वा बोलना भी जानती थी। जो साहसी रंगमंच जानती थी, तो सत्ता के काले रूप को मुंहतोड़ जवाब भी देना जानती थी। लेखक लाल बहादुर जी लिखते हैं-

“आभिजात्य की भंगिमा थी ही, वाम तेवर ने उसे और आकर्षक और उससे भी ज्यादा प्रभावी बना दिया था। जन से सरोकार नेहरू और इंदिरा गांधी दौर की प्रभावी रणनीति थी पर मुग्धा का सरोकार सतही नहीं था। जहाँ भी भारत सरकार संगीन की नोक पर लोगों को राष्ट्रभक्त यानी सरकार भक्त बनाने पर तुली हुई थी वहाँ फौजी आतंक के विरुद्ध बोलने वाले थे ही और कभी-कभी तो सरकार के बीच से ही कोई असहमति की अभिव्यक्ति चीख या आह्वान बनकर उभर जाती थी।”⁸⁴

मुग्धा हाशिए पर रह रहे वेबस आदमियों की रक्षा की लड़ाई करने पूर्वोत्तर आई थी। सच्चाई की जंग में स्त्री किसी से भी नहीं डरती हैं।

“स्वतंत्र भारत में दो सबसे अंधकारमय घटनाओं और काली करतूतों का श्रीमती गांधी से सीधा संबंध है, एक का उनके जीवन से दूसरी का उनकी मृत्यु से। उन्होंने आपातकाल में उस जनतंत्र की भी हत्या कर दी थी जिसने उनके खानदान को वह रुतबा दिया जिसे वह परिवार आज तक भुना रहा है। और वह मरीं तो उनके नाम पर ऐसा जाति संहारक षड्यंत्र और उन्माद फटा

कि विभाजन के समय के दंगे मात हो गए। उस समय जो दंगे हुए थे उनमें दोनों तरफ से बर्बरता की होड़ लगी थी पर 1984 में तो एकतरफा सिक्खों की हत्या हुई। उस दौरान मुग्धा ने सिक्खों का एक तरह से मौखिक इतिहास लिखा था।”⁸⁵

वे लिखते हैं- “वही मुग्धा पूर्वोत्तर में सरकारी उत्पीड़न के खिलाफ राजनीतिक आन्दोलन करने वालों की कानूनी लड़ाई लड़ने इम्फाल पहुंची थी। वह लोग भी जिनका व्यवस्था में विश्वास नहीं होता उसी व्यवस्था के नियमों कानूनों के हवाले से उसके कानूनों को नंगा करने के लिए न्यायालयों में भी जाते हैं।”⁸⁶

जहाँ शांत रहना स्त्रियों की निशानी होती है तो गलत भाव देखकर दो-टूक जवाब दे पाना भी स्त्री धर्म होता है। अपनी अभिमान की लड़ाई अगर स्त्री स्वयं न लड़ पाए तो किसी और से भी इसकी उम्मीद करना व्यर्थ है। अपनी नैतिकता की लड़ाई स्वयं ही लड़नी और जीतनी पड़ती है। 'उत्तर पूर्व' उपन्यास में राधा जैसी स्त्री पात्र पहले संकोचीत स्वभाव की थी। एकाएक उसमें तेजस्वी परिवर्तन देखने को मिलता है। जो तनू की मतलबी भरी बातों का कटूता और दो टूक जवाब देने में श्रम दिखाई पड़ती है। लेखक लिखते हैं-

“मणिपुर में अक्टूबर में भी पानी गरम हो तभी नहाने का मजा आता है खास तौर पर बाहर से आने वाले को। तनू बोला :

'नहाने से समझदारी का क्या रिश्ता? यह लड़की तो पाजी भी लगती है। पहले तो पास भी नहीं थी अब.....

'पहली बात तो यह कि मैं लड़की नहीं महिला हूँ—पूरे तीस साल की.....'दूसरी बात यह कि मूरख हो, क्योंकि महिलाएँ अपनी उम्र नहीं बताती। मैं तो इसे बाइस की मान फिल्म में रोल

के लिए सोच रहा हूँ। तीसरी बात यह कि उम्र वह जो दिखे -अ वोमन इज ऐज ओल्ड ऐज शी लुक्स.....

'ऐंड अ मैन ?'

'ऐज ओल्ड ऐज ही थिंक्स।'

'डबल स्टैण्डर्ड्स, हियर अगेन- औरत और मर्द के लिए हर जगह दोहरे मानदंड।'

'तो फेमिनिज्म आ पहुँचा मणिपुर भी ?"87

बदलते वक्त के साथ अपने को भी बदलना ही प्रगति कहलाती है और इस प्रगति में अपने आत्मसात न होना ही मनुष्यता कहलाती है। कामायनी के लज्जा सर्ग में जयशंकर जी ने नारी की रूप और व्यवहार कुशलता की वंदना की है-

“नारी! तुम केवल श्रद्धा हो

विश्वास- रजत- नग पगतल में।

प्रत्यूष- स्रोत- सी बहा करो

जीवन के सुंदर समतल में।”

वे आगे लिखते हैं-

“आँसू से भींगे अंचल पर

मन का सब कुछ रखना होगा-

तुमको अपनी स्मित रेखा से

यह संधिपत्र लिखना होगा।”

आज की युग की नारी आँसू बहाकर जीना नहीं जानती है। उन्हें नैतिक मूल्य का हवाला देकर भ्रम की दुनिया में कैद नहीं किया जा सकता है। उन्हें यह भली-भाँति ज्ञात है कि वास्तविक

नैतिक मूल्य का है और इसके आधार पर उद्धार और समाज एवं नारी जाति का कल्याण कैसे किया जाता है।

मानवता को पहचानने वाली ही मनुष्यता के उच्चतम श्रेणी में आती है। थाम्बाल 'मुक्ति' उपन्यास की एक नारी पात्र है। जो कि मणिपुर प्रांत की है। हिंदू - मुसलमान के लड़ाई में हिंदू का जो नरसंहार हुआ, उसमें भागी हुई एक बंगाली औरत सुहांसीपुर शरणार्थी बस्ती से भागी हुई थी। जो कि भागते-भागते मणिपुर में प्रवेश कर चुकी थी। उसके गोद में एक बच्ची भी थी। दोनों की ही हालात बहुत खराब थी। बारिश में पूरी तरह भीगी हुई, डरी-सहमी थी। ऐसे में उस मणिपुरी महिला ने अजनाबी होते हुए भी उसे अपनों की तरह मदद करने लगी। इस दृश्य को लेखक ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है-

“थाम्बाल ने वहाँ पहुँचते ही ईख की पत्तियों का एक मुट्ठा डालकर आग को धधका दिया। उस उजाले में उसने देखा कि सर से पाँव तक पूरी तरह भीगी हुई एक युवती अपनी पानी से लथपथ साड़ी के आँचल के नीचे एक नन्हे बच्चे को दबाए हुए ठंडक और डर के मारे थर-थर काँप रही हैं। थाम्बाल ने एक झटके में ही उसकी साड़ी खींचकर अलग कर दिया और अपनी खाँदाई (कंधे के ऊपर का वस्त्र-अँगोछा) उसकी ओर बढ़ा दिया। उसका चेहरा देखते ही वह समझ गई थी कि वह कोई मइतई नुपीमचा। (मणिपुरी लड़की) नहीं है, बल्कि मयांग (गैर मणिपुरी) है, अतः उसने इशारे से ही उसे साड़ी भी खोल देने और उसकी जगह उसका अँगोछा लपेट लेने के लिए कहा। हाथ बढ़ाकर उसने बच्ची को अपनी गोद में ले लिया। बच्ची और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। थाम्बाल आग में और पत्तियाँ डालकर आग धधकाने लगी और उसकी आँच में बच्ची को सेंकने लगी।”⁸⁸

स्त्रियाँ अपने साथ हुए अन्याय को अन्य स्त्रियों के समस्याओं के साथ जोड़कर देखती है। नैतिक मूल्य का सही मूल तभी मिल पाता है। जब उस कार्य के माध्यम से अन्य स्त्रियों को भी लाभ

हो समाज व्याप्त दुराचार, अन्याय, स्त्रियों के प्रति प्रतिहिंसा के भाव को लोगों के दिल, दिमाग और मस्तिष्क से निकाल पाए। यहीं काम यायि ने अपने जिम्मे लिया घर-घर जाकर सामाजिक कुरीतियों को हटाने के कार्य में लग गई थी जिसमें आलुक ने भी साथ दिया। आलुक भी सामाजिक रीति-रिवाजों के कारण यायि से विवाह करने में सफल नहीं हो पाया था- “उन्होंने तय किया कि वे अपने समाज की सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करने के लिए पहाड़ों के गाँव-गाँव में घूमेंगे।”⁸⁹

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृ.245
2. वही, पृ.254-255
3. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, प्रथम संस्करण: 1978, पृ.266-267
4. वही, पृ.267-268
5. वही, पृ.83
6. वही, पृ.216-217
7. वही, पृ.217
8. देवेंद्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992, पृ.149
9. वही, पृ.157
10. वही, पृ.157-158

11.वहीं, पृ.159-160

12.श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण:2011,
पृ.268

13.वहीं, पृ.269

14.श्रीप्रकाश मिश्रा, रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
2006,पृ.57

15.श्रीधर पाण्डेय,आहुति,जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.43-44

16.वहीं,पृ.46

17.वहीं,पृ.49

18.लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002,पृ.279

19.वहीं,पृ.279

20.वहीं, पृ.289

21.वहीं,पृ.289

22.डां.महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1999,पृ.150

23.वहीं, पृ.150-151

24.वहीं,पृ.150

25.वही,पृ.246

26.प्रदीप सौरभ देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2012, पृ.73-74

- 27.वहीं, पृ.75
- 28.वहीं, पृ.77
- 29.नवारुण वर्मा, जय आई असम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983, पृ.158
- 30.जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृ.14
- 31.वहीं, पृ.14
- 32.लाल बहादुर वर्मा उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृ.244-245
- 33.कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, प्रथम संस्करण: 1978, पृ.264
- 34.वहीं, पृ.264-265
- 35.वहीं, पृ.81
- 36.वहीं, पृ.81
- 37.वहीं, पृ.205
- 38.वहीं, पृ.216
- 39.वहीं, पृ.217
- 40.देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992, पृ.156-157
- 41.वहीं, पृ.157
- 42.वहीं, पृ.160

43. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण: 2011, पृ. 125
44. वहीं, पृ. 125-126
45. वहीं, पृ. 268
46. वहीं, पृ. 269
47. श्रीप्रकाश मिश्रा, रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 166
48. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ. 36
49. वहीं, पृ. 40
50. वहीं, पृ. 49
51. वहीं, पृ. 50
52. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृ. 288-289
53. डॉ. महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1999, पृ. 147
54. वहीं, पृ. 149
55. वहीं, पृ. 150
56. वहीं, पृ. 152
57. वहीं, पृ. 246
58. प्रदीप सौरभ, देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 75

59. नवारुण वर्मा, जय आई असम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983, पृ. 77-78
60. वहीं, पृ. 78
61. जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृ. 29
62. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृ. 244
63. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, प्रथम संस्करण: 1978, पृ. 273-274
64. वहीं, पृ. 274
65. वहीं, पृ. 274-275
66. वहीं, पृ. 84
67. वहीं, पृ. 85
68. वहीं, पृ. 85
69. वहीं, पृ. 217
70. देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992, पृ. 150
71. वहीं, पृ. 158-159
72. वहीं, पृ. 162
73. वहीं, पृ. 162-163
74. श्रीप्रकाश मिश्र साहित्य-साधना की परख , सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ. 101

75. वहीं, पृ.102

76. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण:2011,
पृ.268

77. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.42-43

78. वहीं, पृ.43

79. वहीं, पृ.43

80. वहीं, पृ.47

81. वहीं, पृ.50

82. वहीं, पृ.50

83. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृ.278

84. वहीं, पृ.278

85. वहीं, पृ.279

86. वहीं, पृ.279

87. वहीं, पृ.289-290

88. डॉ महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण:1999, पृ.148

89. जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृ.80

तृतीय अध्याय

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री

- (क) मिज़ो समाज और स्त्री
- (ख) खासी समाज और स्त्री
- (ग) मैतेयी समाज और स्त्री
- (घ) नागा समाज और स्त्री
- (ङ.) असमिया समाज और स्त्री
- (च) गालो समाज और स्त्री

तृतीय अध्याय

पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री

(क) मिज़ो समाज और स्त्री:

मिज़ो समाज पूर्वोत्तर भारत का अतुलनीय हिस्सा है। भारत के अन्य प्रांतों की तरह ही यह जाति भी आदिवासी जनजाति के नाम से ही जानी जाती हैं। पूर्वोत्तर के पहाड़ी एवं दुर्गम इलाकों में रहने वाले समूह को आदिवासी जनजाति कहते हैं। और उन्हीं में से एक जनजाति 'मिज़ो' जनजाति है। यह जाति मिज़ोरम प्रांत में रहने के कारण मीज़ो कहा जाता है।

मिज़ो समाज अपने खुलेपन एवं विवादित क्षेत्र के जनजीवन के यथार्थ छवि से जुड़ा और प्रस्तुत करता हुआ समाज हैं। यहाँ बहुत कुछ अस्वीकार्य भी है, परंतु इसकी भी अलग ही महत्व हैं। रूआलखूमा कविता के माध्यम से मिज़ोरम की लोक संस्कृति और जातियाँ प्रतिमा को समझ पाएंगे:

"मैं अपने गाँव की धरती पर

पाँव रखते ही

अनार के पौधे में रूपायित हो जाता हूँ

जैसे ही कोई फल तोड़ना चाहता है

अंगार बन कर गिर पड़ता हूँ

ज़मीन पर

जब कोई मेरा हृदय चीर कर

दाने निकलता है

लहू के कतारों में तब्दील हो जाता हूँ।

-पर यह तो कोई परी कथा है

या मैं कायर हूँ

सिर्फ स्वप्न देखता हूँ।" 1

श्रीप्रकाश मिश्र द्वारा रचित उपन्यास "जहाँ बाँस फूलते हैं" मिज़ोरम के जनजीवन पर आधारित उपन्यास है। यहाँ उनके समाज की अशांति, और नैतिक और अनैतिक हर तरह के रूप देखने को मिलते हैं। यहाँ कुछ ऐसे प्रसंग भी आये जो दिल दहला देती है। यहाँ के रीति - रिवाज यहाँ का कानून कुछ बहुत ही अलग है। श्रीप्रकाश मिश्र जी वहाँ रहे और वहाँ की जीवन के बारे में भली-भाँति जान पाएँ। संपादक सुरेश चंद्र जी के शब्दों में यह साफ पता चलता है-

"मुझे आश्चर्य होता है कि श्रीप्रकाश ने कैसे बिना इन संदर्भों का कोई हवाला दिये केवल उनके द्वारा उत्पन्न विसंगतियों का वर्णन, संघर्ष, मानवीय मूल्यों के विघटन की कसक, लोक आस्था और लोक संस्कृति के प्रति समर्पित जनजातियों के मन के भीतर घुटते अवसाद का चित्रण कर डाला। लोग कह सकते हैं कि वह तीन वर्ष तक लगातार मिज़ोरम के डोपा गाँवों के निवासियों के साथ घुल-मिल कर रहे थे, इसलिये उन्होंने उस जीवन के अवसाद को पूरी तरह से पहचान लिया हैं।"2

मिज़ो समाज में हम देखते हैं तो एक बात साफ तौर पर समझ आती है कि यहाँ ईसाई मिशनरियों का काफी प्रभाव पड़ा है। भारत के अन्य प्रांतों को अगर हम देखें जो पूर्वोत्तर के

बाहर है। वहाँ ईसाईयों का ऐसा प्रभाव नहीं मिलते हैं। इसके पीछे की सच्चाई भी बहुत दुखद है। जब इंसान दूसरे के हाथों कठपुतली बन जाता है, तो भले ही उसका दिल उस चीज़ को करने से इनकार क्यों न करें। दिमागी तौर पर गुलाम होने के कारण वह हार ही जाता है और वह इच्छाहीन कार्य करने पर विवश हो जाता है।

"अंग्रेजों के जमाने में इस पूरे क्षेत्र में ईसाई पादरियों का जबर्दस्त नियंत्रण था। इसी के आधार पर अंग्रेजी न जानने वाले मीज़ो लोगों को मिशनरियों ने दबा-धमकाकर हिंदी के खिलाफ अंग्रेजी भाषा को भी भारत की राष्ट्रीय भाषा के रूप में समर्थन दिलवाया। मिशनरी तो चाहते थे कि यह पूरा क्षेत्र मिशनरियों के हाथ में सौंप दिया जाए और अंग्रेजों के शासनकाल से चले आ रहे नेफा प्रदेश जैसे का तैसा बना रहे। नेहरू सरकार का भी साहस नहीं हुआ तो भी पूरा प्रदेश एक विचित्र मानसिकता के ऊहापोह में कभी बंदूक उठाकर विद्रोही के रूप में आता है, तो कभी अपनी लोक आस्था, लोक संस्कृति पर मिशनरियों के हमलों से लड़ने के लिए जनता को इकट्ठा करता है। कभी अपने को मंगोलोइड कहकर चीन की ओर देखता है तो दूसरी ओर वर्मा की ओर। विदेशी शरणार्थियों को शरण देते-देते, चाहे वह बंगलादेश के हो या फिर वर्मा के हो, अपनी लड़ाई को गर्माने की कोशिश करते रहे हैं।"³

शायद यही कारण है कि अब जब उन्होंने अपने हथियार डाल दिए हैं। तो कोई भी व्यक्ति या शासक उनके धर्म परिवर्तन की बातें करता है। तो वे उन्हीं को अपना दुश्मन समझने लगता है।

भारतीय हो या कोई भी समाज हो स्त्रियों को किसी न किसी रूप में कमज़ोर एवं हीन महसूस कराने से पीछे नहीं हटती है। वे ऐसे कुछ नियम जरूर बना देते हैं। जिससे पितृसत्तात्मक चाल भली-भांति दृष्टिगोचर होती है। पितृसत्तात्मक की चाल के आगे सभी बुद्धि चाल बेकार हो जाती है। मिज़ो समाज की सामाजिक संरचना में भी इस बात को ध्यान

दिया है कि स्त्रियों को कानून और नियमों के अधीन रखा जाए। यह उन्हें असहाय बनाने का ही कार्य होता है।

"मिज़ोरम जाति भी एक ऐसे ही वृक्ष के समान है, जिसके नीचे न सही आस-पास चारों ओर ऐसे ही भुक्कड़ लोगों की भीड़ जुट जाती है, चाहे वह चीन हो, तिब्बत और वर्मा हो या फिर अपना सहोदर भारत हो। कोई यह चिंता नहीं करता कि इस वृक्ष को किस पुरुष ने रोपा था और उसका उद्देश्य क्या था।

इस जातीय त्रासदी को यदि ध्यान में रखें तो मिज़ो जाति की पीड़ा, उसकी सामाजिक विसंगतियाँ, उसका स्वतंत्र मुक्त यौनाचार, उसकी मर्यादा में उनकी त्रासदी तो समझ में आयेगी ही, साथ ही उनकी पहचान भी हो जाएगी जो महत्त्वकांक्षी धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक लोग उसमें प्रदूषण पैदा करके उनकी जातीय अस्मिता को या तो संग्रहालयों में सुरक्षित रखना चाहते हैं, या जो धर्म के नाम पर उनके जातीय देवी देवताओं, उत्सवों झूमों और जालबुको (कुंआरे, कुंआरियों के आवास) में बिना किसी अपराध बोध के जीवन बिताते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो यह 'मोंरग' देश की तरह एक मातृसत्तात्मक समाज कभी रहा होगा जो आज भी एक अस्त-व्यस्त हालत में घिसट रहा है। यहाँ के पंचायत में केवल इतना स्वीकार करना है कि उस कुआरी लड़की के गर्भ में जो बीज पल रहा है वह किसका है। इसे स्त्री-पुरुष दोनों को पंचायत के सामने स्वीकार करना पड़ेगा। इसके बाद पिता चाहे तो माँ और बच्चे का पालन पोषण का भार वहन करें और चाहे तो न करें, मिज़ो उसे देवपुत्र मान कर के पाल लेंगे। और स्त्री भी अपनी लाज बचा लेगी और 'वेश्या' के रूप से जीवन बिताने के लिये समाज से बहिष्कृत नहीं की जायगी। इतने बड़े सत्य की स्वीकृति अपने आप में ही मुक्ति और

अराजकता के बीच,कुछ ऐसी मर्यादा में खुल कर स्वीकार करती है जो शेष भारतीय समाज में स्वीकार्य नहीं है।"⁴

गौरतलब बात तो यह है कि पुरुष अगर उस बच्चे को अस्वीकार कर भी दे, तो स्त्री के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं रहता है, जिससे कि वह अपने अस्मत को बचा सकें। यह मिजो समाज की कमज़ोरी के रूप में भी देखा जा सकता है, पुरुषों के हित के अनुसार ही समाजीकरण की व्यवस्था को स्थापित किया गया।

मिज़ो समाज में भीख माँगना एक प्रकार का अपराध माना जाता है। यह इनकी परंपरा से विपरीत चीज़ थी। चाहे वह मदारी का खेल दिखाकर ही क्यों न कमाई जाए। यह उनके लिए भीख के समान ही है। जिसका सार्थक रूप खूमा के बातों से झलकता है।

"जोवा कड़का "पू खूमा। वाई' का भालू छोड़ दे।"

खूमा बोला,"नहीं, हम जश्न मनाएंगे।"

"नहीं, भालू वाई के रोजी का सहारा है,छोड़ दे।"

"नहीं, इसका धंधा भीख माँगना है, जो मिजो परंपरा के खिलाफ हैं।"

"फिर भी छोड़ दे।"

"नहीं,यह हम गरीब लोगों को लुभाकर हमारी मेहनत की कमाई मुफ्त ले जाता है।"⁵

भारत में पूर्वोत्तर वह प्रांत है, जहाँ की जनजीवन बहुत कुछ भिन्न है। मिज़ोरम जैसे प्रदेश बाँस पर निर्भर प्रांत है। यहाँ की जीवन शैली में बाँस बहुत सी अनोखी रूप से जुड़ी हुई है। अनिल यादव जी ने पूर्वोत्तर समाज की महत्वता को भली-भाँति समझा। भारत में पूर्वोत्तर को आज़ादी के पश्चात जैसे भुला दिया गया था। उसी की अस्तित्व को दोबारा जगाने के लिए

उन्होंने "वह भी कोई देश है महाराज" जैसी तस्वीर प्रस्तुत की हैं। वह काबिले तारीफ है। वे लिखते हैं- "पूर्वोत्तर में जमीन पर जो कुछ भी है उसमें सबसे अधिक बाँस और सुपारी दिखाई देते हैं। बाँस यहाँ की जिंदगी में शरीर में खून ले जाने वाली धमनियों की तरह शामिल हैं। मेघालय में सिंचाई की नालियों की तरह, मिज़ोरम के सुदूर गाँवों में बरसाती पानी को घर तक लाने वाली पाइप लाइन, नागालैंड में चाकू की तरह और कई इलाकों में तो थाली- कटोरी की ही तरह इस्तेमाल किया जाता है। उसके फूलों के विध्वंस की ताकत भयानक हैं। यह बजती हुई बांसुरी के अचानक किसी स्वर पर गर्दन उतारने वाली तलवार में बदल जाने जैसा अजूबा लगता है।"⁶

मिज़ो समाज में बाँस उनके परिवार का हिस्सा हैं। बाँस में फूल खिलना उनके लिए किसी परिघटना एवं आपदा के संकेत होता है। बाँस के फूलों को खाने चूहे आते हैं। और आगे चलकर वहीं चूहे फसलों को नष्ट करने का कार्य करते हैं। यह बाँस में फूल उनके समाज के संतुलनता को दगमगाने के बड़ा सूचक साबित बन जाता है।

" ये फूल बिरले आते हैं लेकिन जब आते हैं तो प्रकृति नया असंतुलन पैदा करती है। चूहे इन फूलों को खाते हैं जिससे उनकी प्रजनन शक्ति असामान्य ढंग से बढ़ जाती है। लाखों की संख्या में पैदा हुए चूहे खेतों की फसलें, घरों में रखा अनाज, फल, सब्जियाँ समेत जो सामने आता है सब चट कर जाते हैं। साल बीतते -बीतते अकाल पड़ जाता है। आदिवासी बूढ़े का कहना था कि अगले तीन साल में इस इलाके में ज्यादातर बाँस की कोठियों में फूल आएंगे। उससे पहले अगर सारे बाँस जला नहीं दिए जाते तो तबाही तय है।"⁷

मिज़ो समाज में ईसाइयों के दौरान एक प्रकार की अशांति छा गई थी। क्योंकि वे अपने पूर्वज और धर्म को काफी मान्यता और तब्बजू देते हैं। जो उनके समाज में और धर्म पर घुसपैठ करते हैं। तो यह उनके लिए असहनीय बन जाती है। इसी का जिक्र श्रीप्रकाश मिश्र जी ने भी अपनी उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' में की है। यह मिज़ो समाज की शक्ति और निडरता ही है। जो अल्पसंख्यक एवं साधनहीन होते हुए भी अपने समाज की अस्तित्व बचाएँ रखने के लिए बड़े-से-बड़े का विद्रोह एवं लड़ाई के लिए हथियार उठाने से पीछे नहीं हटते हैं।

"आदिवासी असंतोष के प्रमुख कारण आर्थिक और सामाजिक रहे हैं। ईसाई मिशनरियों तथा धर्म परिवर्तन की घटनाएँ भी एक कारण रहे हैं। बाहरी लोगों ने इनके जीवन और जीवनपद्धति तथा इनकी परंपराओं में घुसपैठ की इन आदिवासियों ने हथियार उठा लिए। जब-जब इनका दमन और शोषण हुआ ये चुप नहीं रहे। इनकी मजबूरियों का फायदा उठाने की हर कोशिश का उन्होंने विरोध किया है।"⁸

मिज़ो समाज की स्त्रियों में एक प्रकार की खुलेपन देखने को मिलती है। किसी प्रकार की लाज-शर्म या पर्दा इस तरह की सोच इस समाज से कोसों दूर हैं। उनके विचार से स्वतंत्रता और निडरता साफ झलकती हैं। जहाँ अन्य लड़कियाँ लड़के से अकेले में मिलने से डरते हैं। मिज़ो लड़कियों में इसका विपरीत स्वभाव ही देखने को मिलता है। वे स्वयं पुरुषों को आमंत्रित करती हैं। यह सुनने में बुरा लग सकता है किंतु इसकी पीछे की मंसा बिल्कुल साफ रहती है। उस समाज में भारत की अन्य प्रांतों की समाज की तरह व्यभिचार का ताना-बाना नहीं बुना जाता है। जिसके कारण हर कोई भरोसे के लायक होता है। समाज के स्वतंत्रता वाले विचारों की ही देन है। जिसका उदाहरण हम जोवा और पुई के संवादों से समझ सकते हैं।
लेखक लिखते हैं-

"शाम को मिली तो बड़े चलते ढंग से कही, "जोवा! तुम्हारी टोकरी में सुबह बड़े अच्छे फाखते थे, कहाँ से पकड़ा?"

"तुइला' के किनारे से।"

"एक दिन मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। देखूँगी कैसे ट्रैप लगाते हो।"

"उसके लिए तो बड़े सबेरे चलना पड़ता है। तुम तो सोती रहती हो।"

"तो क्या हुआ ? तुम जगा देना।"

"हाँ! यह तुमने ठीक कहा। मैं जगाने जाऊँ और तुम्हारा शैतान बाप मेरी बोटी-बोटी कर दे।"

"तुम तो बुद्ध हो। मैं तो पीछे की केबिन में सोती हूँ। बस खिड़की पर हल्की-सी थाप देना। मैं जागती रहूँगी।"⁹

‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ के माध्यम से लेखक ने मिज़ो के एक ऐसे रूप को भी दर्शाया गया है। जिससे यह पता चलता है कि स्त्रियों की स्थिति किसी पशु से कम नहीं हैं। पर पुरुष स्त्रियों के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर उसे गर्भवती बना देते हैं। जिसके लिए किसी प्रकार की नियम भी नहीं हैं। स्त्री कभी इस डाल पर तो कभी उस डाल पर उसका कोई स्थाई रूप देखने को नहीं मिलता हैं। यहाँ एक साइलियान नाम के व्यक्ति का जिक्र है। जो व्यभिचार का सौदागर है। उसने विवाह को कभी नैतिक मूल्य नहीं दिया। कई सारी स्त्रियों के साथ दुष्कर्म कर उन्हें गर्भवती बनाया। फिर भी वह गांव में ही रहता है बिना किसी सामाजिक आपत्ति के, यह कुछ हजम ना कर पाने वाली बात लगती है। "इस इलाके के इतिहास में यह पहला मौका था कि साइलो की पंचायत में कोई गैर-साइलो सभाध्यक्ष बना था और यह श्रेय गाँव के बूढ़े जमदुग्गीलाल को मिला था। वह सताया हुआ आदमी था और सोच रहा था कि इस साइलो ने

हमारी जाने कितनी विवाहिताओं, कुमारियों को गाभिन किया तो पंचायत नहीं बैठी और इसकी बीवी गाभिन हो गई तो पंचायत बैठी है।"¹⁰

पंचायत का नियम भी बड़ा अनोखा है। थोड़ी सी सजा से बात खत्म हो जाती है। उसके बाद वह व्यक्ति आराम से रह सकता है। चाहे तो वह फिर से वहाँ सब बार-बार करते रहे। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण उनके पास यह वैकल्पिक होता है कि चाहे तो स्त्री और उस बच्चे को अपना नाम दे। और अगर न चाहे तो छोड़ दे। बच्चे को अपना नाम देने के बाद भी यह जरूरी नहीं है कि वह उससे शादी करनी ही होगी। ऐसा कोई कानून नहीं है। इन हालातों में विवाहित स्त्रियाँ अपने पूर्व पति के नाम पर ही रहती हैं। किंतु बस मृतक मात्रा के रूप में उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता है।

पंचायत बोली, "इसकी सजा दोला को दस कोड़े और सौ रुपया है।"

दोला बोला, "मैं राल्ते कौम का हूँ। लुशेई कानून मुझ पर नहीं लगता।"

अकसर ही चुप रहने वाले बूढ़े ने कहा, "जुर्म लुशेइयों के बीच करेगा, लुशेइयों के साथ करेगा और आइन बधारेगा राल्ते का? अरे दस कोड़े के साथ इसे बीस जूता भी मारना चाहिए और जूते का पैसा भी लेना चाहिए।"

पंचायत ने इसका समर्थन किया। किंतु साइलियाना संतुष्ट नहीं हुआ। बोला, "लालवानी का क्या होगा?"

"पंचायत बोली, "लालवानी का क्या होगा। वह तुम्हारी बीवी है, तुम्हारे साथ रहेगी।"

"अरे वाह! और उसका बच्चा?"

"तुम चाहो तो पाल लेना। नहीं तो दोला को दे देना। वह पाल लेगा।"

“मैं तो किसी भी हालत में नहीं पालूंगा।”

“ठीक हैं।”

“ठीक क्या खाक है ? लुशेई हरजाई हो गई बीवी को तब अपने साथ रखता है, जब वह लुशेई से लगी हो। यह तो राल्ते से लगी है।”

“तो क्या हुआ? हर मासिक के बाद लुशेई लड़की पवित्र हो जाती है।”

“हुआ करे। मैं नहीं रखने का। चाहो तो छान्ना (भरण-पोषण) बाँध दो।”

वानी सब सुन रही थी। झल्लाकर बोली, “कोई छान्ना की जरूरत नहीं। जो मुझे एक बच्चा भी न दे पाया, उसके साथ नहीं रहना चाहती। दोला मेरा बच्चा पालेगा तो उसी के साथ रहूँगी।”¹¹ मिज़ो समाज में सजा देने का एक रिवाज है। बिना सजा के कोई भी अपराध खत्म नहीं होती है।

“पंचायत बोली, “जब तुम इसकी बीवी नहीं थी और साइलो की बीवी थी, उस समय किए गए कुकर्म की।”

“वह तो अब खत्म हो जाता है।”

“नहीं, मिज़ो कानून में बिना सजा खाए कोई अपराध खत्म नहीं होता।”

“तो वह भी पैसे में चुकता कर लो।”

“नहीं, कोड़े की जगह भला पैसे कैसे ले सकता है ? इतना उदार कानून तो वाइरमा में ही हो सकता है। इसलिए वहाँ अपराध भी बढ़ते जा रहे हैं अपराध वहाँ बड़े लोगों के लिए मनोरंजन का साधन हो गया है”

“तब उसके साथ मुझे भी कोड़े लगाओ। आखिर उसके अपराध में मेरी बराबर की साझेदारी है।”

" उससे निपटने के लिए हमारे पास कोई परंपरा नहीं।" ¹²

मिज़ो समाज में रिश्ते बनाने का खुलेपन भली-भांति नज़र आती है साडा और जमुदग्गीलाल की संवादों से इस सच को प्रकाशित किया गया है-

साडा बोला, "दोला का स्कूल में बना रहना ठीक नहीं जाने कितनी लड़कियों को गाभिन करेगा।" "फिर तो तुम्हें भी गाँव में रहने का हक नहीं, जाने कितनी लड़कियों, औरतों, बूढ़ियों को तुमने गाभिन किया है।" ¹³

ऐसे स्वतंत्र विचारों के कारण महिलाएँ कई बार उत्पीड़न का शिकार भी हो जाती है। वे अच्छे और आराम की जिंदगी देखकर आसानी से बेहक जाती है। मिज़ो समाज आदिवासी समाज होने के कारण बहुत से मुश्किलों का सामना करती हैं। जैसा कामी और जोरमी के साथ हुआ झा ने कामी से शारीरिक संबंध बनाया। और कामी को यह विश्वास दिलाया कि वह कामी से प्रेम करते हैं किंतु वह प्रेम नहीं वासना है। जिसका शिकार जोरमी भी हुई। झा ने दोनों को ही अपनी हवस पूरी करनी की वस्तु मात्र ही समझा। जिसका हर्जाना जोरमी को बहुत अधिक चुकाना पड़ा।

"गाँवबूढ़ा ने कहा, "मिजो झूठ नहीं बोलता।" ¹⁴

यह वाकई शर्म की बात है कि एक लड़की की पूरी अस्मिता समाज के खोखले नियम और पुरुषवादी सत्ता के कारण सर्वनाश की कागार तक पहुँच जाती है और इससे भी शर्मसार करने वाली बात तो यह है कि समाज में लड़कियों की इज्जत की कीमत लगाई जाती है यहाँ स्त्रियों

के प्रति मिजो समाज की यह मानदंड किसी भी मानवाधिकार कार्य में मान्य नहीं हो सकती है।

"गाँवबूढ़ा फिर बोला, "कपू काहे रार मचाते हो? सिर्फ चालिस रुपए का दंड लगता है। देकर मुक्त हो जाओ। हम अवैध बच्चा ईश्वर का बच्चा मानते हैं। वह पल जाएगा। तुम्हारे मान जाने पर जोरमी मुक्त हो जाएगी। अन्यथा जीवन भर अभिशप्त की जिंदगी जीएगी। हम जब से ईसाई हुए हैं कुआँरी माँ पसंद नहीं करते। गैरईसाई से बनी कुआँरी माँ और भी नहीं।"¹⁵

धर्म के आड़ पर इस तरह चीरहरण किसी भी समाज के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकती है। और हैरानी की बात तो यह है कि ईश्वर जो सर्वोपरि होते हैं। उन्हें भी इन समाज के ठेकेदारों ने व्यापार बना दिया है। अंग्रेजों ने ईसाई धर्म को जबरन मिज़ोओं से कबूल करवाया। और कबूल करने के बाद इसका जो भयंकर रूप दृष्टिगोचर होती है। यह इंसानियत को कत्ल करने की बात है।

झा जैसे कामुक और समाज विरोधी वाले सोच के व्यक्ति के रहते स्त्रियाँ कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकती हैं। समाज की रक्षक ही अगर भक्षक बन जाए तो कोई किस पर भरोसा कर पाएगा। झा जैसे पुलिस वाले समाज को पंगु (handicapped) बना देते हैं और इसके साथ झा के साथ देने वाले अधिकारी उनको घिनौना और गंदा रूप प्रस्तुत करते हैं। लेखक एक प्रकार से अपने समाज के अधिकारियों का पर्दाफाश करते हुए नज़र आते हैं। जबकि वे स्वयं भी सुरक्षा अधिकार ही थे। हमेशा अच्छी ही जनता के सामने पेश करें ऐसा कोई नियम नहीं है समाज में सच्चाई प्रकाशित होनी चाहिए चाहे वह अच्छा हो या बुरा रूप प्रकाश में आना चाहिए। क्योंकि यह कोई आत्मकथा नहीं है। इसलिए बहुत से प्रांतों के नाम कल्पनिक भी हो सकते हैं।

"झा ने सोचा : ईसाई करे तो अमृत वाई करे तो विष।हाय रे मिजो न्याया। संयत झा गुसैल हो गया, "बात चालीस रुपए की नहीं है कपू। इससे अधिक तो हर हफ्ते किसी न किसी परिवार को यूँ ही दे देता हूँ। सवाल है इस तोहमत का। जो बच्चा मेरा नहीं, उसे बापपन कैसे दे दूँ?"

गाँवबूढ़ा फिर बोला, "मिजो झूठ नहीं बोलता।"

झा नहीं माना। उसके दफ्तर में रिपोर्ट हुई। एक वाई ने दूसरे वाई को बचा लिया। खबर जंगल गई। भूमिगत सरकार के क्षेत्राधिकारी ने निर्णय दिया : अपराधी को गोली मार दी जाए। मिजो का बच्चा होता तो जोरमी उसे वाई का बच्चा कभी न कहती। वाई का बच्चा है तो जोरमी ने भूमिगत सरकार के उस कानून का अतिक्रमण किया है, जिसके तहत गैर-मिजो से शारीरिक संबंध रखने वालों को ताजिंदगी समाज से बहिष्कृत रहना पड़ेगा।"¹⁶

मिजो समाज के एक धिनौना कानून सामने आता है। जब झा बच्चे को अपना नाम देने से इंकार कर देते हैं और दंड के चालिस रुपए देने से इनकार कर देते हैं। तो इसका दंड जोरमी को ताउम्र वेश्या के रूप में जीवन गुजारने को मिलती है।

"जोरमी का घर गाँव के बाहर बना दिया गया। यह मिज़ोरम के इतिहास में पहली बार हुआ। कामी अपनी सहेली की दुर्गति पर टूट गई। सोचा था वाई के साथ वह वाईरमा चली जाएगी। वहाँ की औरतों का जीवन फिर भी सुखपूर्ण है। पर्दे में रहती है सिर्फ घर का काम करती हैं। पुरुष उसको पालता है। यहाँ सुबह उठो तो मीलों नीचे तुइखुर से पानी लाओ। सुअर को चारा दो। दिन भर खेत में काम करो। लकड़ी के गट्टर ढोओ। कपड़े बुनो। अन्न उपजाओ, काटो, माड़ो, कूटो, भात बनाओ, चहेतों को खिलाओ और वह निठल्ला दारू पीए, मौज करे और हर साल एक बच्चा पेट में भर दे।"¹⁷

एक रिपोर्ट के मुताबिक जब हम महिलाओं की स्थिति के बारे में पढ़ते हैं तो मिज़ोरम की महिलाओं के दोयम दर्जे के बारे में जान पाते हैं। हालांकी वहाँ की महिलाएँ यह दिखाने की कोशिश करती है कि वह स्वतंत्र हैं। और हर जगह उनके समाज में समान अधिकार एवं सम्मान प्राप्त होता है किंतु यह एक प्रकार का भ्रम मात्र है। पर्दे के पीछे की हकीकत कुछ और ही तस्वीर बयान करती है।

मिज़ो महिलाएँ इस बात को कहती है कि महिलाएँ हिंसा का शिकार निरंतर होती रहती है। परंतु समाज में यह स्वीकार्य नहीं है। समाज के ठेकेदारों द्वारा यह सामान्य बात है। इसमें इतना हैरान या आपत्ति की कोई बात नहीं है। पुरुषों को यह पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे अपनी मनमानी करते रहे। और समाज के द्वारा इसका विरोध भी न किया जाए।

इन कथनों से यह साफ होता है। जैसा हम देखते हैं। वैसा ही हो यह जरूरी नहीं है। भारत के अन्य हिस्सों में ऐसे मान्यता है कि पूर्वोत्तर की महिलाएँ बहुत अधिक स्वच्छन्द है। किंतु भीतरी सच्चाई आत्मा को कपा देने वाली होती है।

(ख) खासी समाज और स्त्री:

खासी समाज पूर्वोत्तर का एक भव्य एवं प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण क्षेत्र है। यह भूमि अपनी प्राकृतिक सौंदर्य को बचाये रखने के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध है। यह भारत के एक प्रमुख पर्यटन स्थल से भी जाना जाता है। रोजमर्रा के कामकाज और व्यस्त जीवन शैली के बावजूद भी यहाँ एक प्रकार की असीम शांति का अनुभव मिलता है। यहाँ की संगीत अपनी पवित्रता और रूह को छू जाने वाली होती हैं।

मेघालय समाज तीन भागों में विभाजित है। यह जातियाँ विभाजन है। यहाँ की प्रमुख जनजाति है:

क) खासी

ख) गारो

ग) जयंतिय

"मेघालय संस्कृत भाषा के दो शब्दों को मिलाकर बना है। मेघ+ आलय=मेघालय। संस्कृत भाषा के इन दोनों शब्दों का अर्थ निकाला जाये तो "मेघ"का अर्थ होता है "बादल"। और "आलय" का अर्थ होता है "निवास" यानी "घर"।तो इस तरह मेंघालय का अर्थ होता है "बादलों का निवास" या फिर "बादलों का घर" भी कहा जा सकता है।"¹⁸

मेघालय में मातृवंशीया राज चलता है। यानी संपत्ति का अधिकार बेटियों को मिलता है। और पुरुष विवाह के पश्चात पत्नी के घर रहने आते हैं। एक प्रकार से घर जमाई का रिवाज वे पालन किया करते हैं। इन सारी चीजों के बावजूद भी क्या स्त्रियों को वह मान-सम्मान, अधिकार मिला है भी की नहीं। इसकी पड़ताल करना अत्यावश्यक है।

"मेघालय के अधिकांश लोग और प्रधान जनजातियाँ मातृवंशीय प्रणाली का अनुसरण करते हैं, जहाँ विरासत और वंश महिलाओं के साथ चलता है। कनिष्ठतम पुत्री को ही सारी संपत्ति मिलती है और वही बुजुर्ग माता-पिता और किसी भी अविवाहित भाई बहन की देखभाल भी किया करती है।"¹⁹

"खासी और जयंतिया जनजाति के लोग पारंपारिक मातृवंशीय प्रणाली का पालन करते है, जिसमें खून खटदुह (अर्थात कनिष्ठतम पुत्री) को घर की सारी संपत्ति की अधिकारी एवं वृद्ध माता-पिता की देखभाल की उत्तरदायित्व होती है। हालांकि पुरुष वर्ग, विशेषकर मामा इस संपत्ति पर परोक्ष रूप से पकड़ बनाए रहते हैं, क्योंकि वे इस संपत्ति के फेरबदल, क्रय-विक्रय आदि के सम्बंध में लिये जाने वाले महत्वपूर्ण निर्णयों में सम्मिलित होते हैं। परिवार में कोई पुत्री न होने की स्थिति में खासी और जयंतिया (जिन्हें सिण्टेंग भी कहा जाता

है)आइया रैंप आइडिंग का रिवाज होता है, जिसमें परिवार किसी अन्य परिवार की कन्या को दत्तक बना कर अपना लेता है,और इस तरह वह ट्राई आइडिंग(परिवार की मुखिया) बन जाती हैं। इस अवसर पर पूरे समुदाय में धार्मिक अनुष्ठान होते हैं व उत्सव मनाया जाता है।"²⁰

यहाँ एक बात गौरतलब है कि परिवार की कनिष्ठ बेटी ही संपत्ति का अधिकार होता है। किंतु शक्ति पुरुषों के हाथों सौंपी गई है।पुरुष (मामा) परोक्ष रूप में रहकर भी सारे निर्णय वहीं लेते हैं। ऐसे में वे संपत्ति का अधिकार किस काम का है। लड़कियों को परिवार को संभालने की सारी जिम्मेदारी सौंप कर वे मुक्त हो जाते हैं। कनिष्ठ बेटियों के लिए ऐसी जिम्मेदारी किसी बोज़ से कम नहीं है। एक तरह से उसके पर काटने के समान है। जन्मरान्त से ही वे इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए तैयार किए जाती है। उनके अपने सपनों की उड़ान कई के आगे लुप्त हो जाती है। उनका संपत्ति का अधिकार वैसा ही है जैसे जंग के मैदान में सिपाहियों का होता है। मरने के लिए सबसे आगे किंतु उसकी दौरे किसी और के हाथ में रहती हैं।

सदियों से चली आ रही रिवाज है कि समाज के जितने भी कानून और राजनीतिक प्रणाली होती है। वह पुरुषों द्वारा ही संचालित किया जाता है। किसी पुरुष मुखिया के हाथों ही किसी भी ग्राम की मंडली की भाग-दौड़ रहती है। हमेशा राजा ही यह सब देखा करते थे। तो मातृवंशीय कुल का ढोंग क्यों रचा जाता है।

खासी समाज बहुत कुछ अंधविश्वास पर आश्रित है।यह लेखक ने साफ तौर पर 'रूपतिल्ली की कथा' के माध्यम से समझाया है। हालांकि इस कथा में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह सच्ची घटना पर आधारित है। परंतु इसकी पृष्ठभूमि खासी समाज पर आधारित है। खासियों में बलि प्रथा का बहुत अधिक चलन था। बलि देकर वे समझते थे कि वे अपने

पापों से मुक्त हो गए हैं। किंतु यह उनकी भयानक अंधविश्वास का ही स्वरूप था। जो नरबलि देने में अपनी मान-सम्मान और खुशहाली का सूचक समझा जाता है।

"नौकर पाले ही इसलिए जाते थे कि जब कोई और विकल्प न हो तो उन्हें ही पकड़कर बलि चढ़ा दी जाय। भला यह कैसे होता है कि अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए दूसरों को काट चढ़ाया जाय, उस जिम्मेदारी को धारण करने के लिए। और ऐसा भला कैसे हो जाता है कि मरने वाला दूसरे की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर उसे मुक्त कर देता है।"²¹

पेट की भूख से बड़ी भूख और कोई नहीं होती है। और अकाल में गरीबों की दशा जानवरों से भी खराब हो जाती है। गरीबी वहीं जानता है जिसने जिया है भूखे पेट नींद भी नहीं आती है। धीरे-धीरे अपने और अपने प्रियजनों को मरते हुए देखना पड़ता है। इस परम सीमा को तब दिखाई देती है। जब उपन्यास के पात्र खरलुक्की स्वेच्छा से मात्र इसलिए नरबलि बनने को राजी हो जाता है ताकि उसे कुछ समय और उसके परिवार को आजीवन रोटी मयस्सर हो सकें।

"इलाके में सूखा नहीं पड़ा था। लेकिन गरीब के लिए क्या अकाल, क्या दुःकाल। सिर्फ भोजन के लिए जंगल की लकड़ी काटते, मधुमक्खियों का छत्ता नोचते, लाह इकट्ठा करते, नदी की बिलों से केंकड़ा पकड़ते, दौड़ा कर खरगोश, साही का आखेट करते-करते खरलुक्की अपने जीवन से इतना ऊब गया था कि अपने को परम् दुःसाहसी समझने लगा था। उसी दुस्साहस में मन ही मन तय कर लिया था कि उम्र आने पर वह राजा के सामने पेश होकर मुगा खाउरा बनने का अनुरोध करेगा। उस साल वह सत्रह वर्ष का हुआ तो गर्मियों के बीतने और बरसात शुरू होने से पहले जो ढोल बजा और गाँव के बीचो-बीच इलाके में उपलब्ध सबसे ऊँचे बाँस को गाड़ दिया गया तो खरलुक्की उस पर चढ़कर कूदने के लिए आगे आया। गाँव का लिडदोह कई महीने से उसे, अप्रत्यक्ष रूप से सही, उस बाँस पर से कूदने के लिए प्रोत्साहित करता आ

रहा था। इसमें यह भाव भी था कि बड़े बहादुर बनते हो; डाड के मौके पर बाँस पर चढ़कर कूदो तब न ! लेकिन खरलुक्की के लिए यह महत्त्वपूर्ण नहीं था। महत्त्वपूर्ण यह था कि कूद के बाद एक सप्ताह तक गाँव में उपलब्ध सर्वोत्तम भोजन और वस्त्र प्रदान किया जाता था पूरे परिवार को।"22

अज्ञानवश खासी समाज इस कार्य को महान मानता है। कोपिली नदी में नरबलि देने से माता खुश होकर उस इलाके को फसलों से मालामाल कर देती है। जाने वह कैसे वक्त था जब आदिवासी जनजाति अनगिनत नरक का सुख भोग रहे थे। लेखक लिखते हैं-

"खरलुकी के बयान से पूरा गाँव प्रसन्न और आश्चर्यचकित हो गया। उसे जो आदर मिलना था, उससे अधिक मिला-राजा और कोपिली की अमानत मान कर। फिर उसकी बात मानकर पूरा गाँव दूने जोश से चौगुना श्रम करने निकल पड़ा अपने नये झूम' में। और उस साल फसल अठगुना होकर झूमी। लिडदोह को तब लगता कि यह ड'खारों का झूमना शब्द किसी ऐसे ही झूम को देखकर बना होगा।

लेकिन खरलुक्की की माँ पागल होकर जिस-तिस के पास जाती और रो रोकर गुहार करती कि कोई तो उसके पूत को मनाये। लेकिन किसमें इतनी हिम्मत थी कि कोई उसके पूत को मनाये। कोपिली माई क्या कहेंगी! राजा जाने क्या कर बैठे !! खावरा बनने की भविष्यवाणी तो उसके पूत ने किया है और तब किया है जब उस पर देवी का आसन था। देवी ने जब उसे चाहा है और उसने स्वीकार कर लिया है तो कोई क्या कर सकता है !"25

राजा के पास पूरी शक्ति होती है कि वह अपने जनता के साथ कुछ भी करें। किसी को यह अधिकार नहीं होता कि इसके विरोध में कुछ भी आवाज उठा सके। यह बात लोगों से स्पष्ट होता है-

" वह न भी स्वीकार करता और देवी चाहती तो कोई क्या कर लेता? राजा अपने चाकर भेज कर उठवा लेता तो भी कोई क्या कर लेता? अरे शुक्र मानों कि देवी ने स्वयं चुन लिया है। राजा तुम्हारे खानदान को मालामाल कर देगा।" ²⁴

महिलाओं को ठगने की कई तरीके होती हैं। मातृ समाज की औरतें यानी कि मेघालय की खासी महिलाओं को यह अधिकार दिया जाता है। की वे क्षेत्र में अपना योगदान प्रदान करें। खेत खलिहानों में, बाहरी कामों में, घर के कामों में, यानी कि हर तरफ से वह जिम्मेदारियाँ ही निभाती रहे, और पुरुष वर्ग बीच में मजे उड़ाते रहे।

यह एक तरह से जिम्मेदारियों का खेल ही है। लड़की के ऊपर पूरे घर की जिम्मेदारी आ जाती है। यहाँ तक की पति की जिम्मेदारी भी अगर कहीं तो उसी के कंधों पर आ जाती है। हर क्षेत्र में वह पूरी तरह से थका देने वाली मेहनत करती है। किंतु संपत्ति कि वह मालकिन होते हुए भी पुरुषवर्ग उसकी निर्णय लेते हैं। यानी कि वह चौकीदारी करने का कार्य करती है। उसके किसी भी कार्य की सराहना यह कहकर टाल देते हैं कि यह तो उसका कर्तव्य है। उसे निभाना ही पड़ेगा।

खासी समाज मातृ समाज होते हुए भी ऐसे बहुत से कार्य हैं। जहाँ वे अपनी भागीदारी या हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। कहने को स्त्रियों को पूरी शक्ति देने का दावा करते हैं। किंतु यह दावा तब खोखले साबित हो जाते हैं। जब स्त्रियों को मुकनायक या कार्यवाहक से अधिक कुछ नहीं है। असली शक्ति और कानून बनाने का अधिकार मर्दों के हाथों ही रहती है। यह बात 'श्रीप्रकाश मिश्र' जी के उपन्यास "रूपतिल्ली की कथा" में प्रकाशित होती है।

"जयंती स्त्री थी। शिकार खेलने नहीं जा सकती थी। तो क्या, शिकार देखने तो जा सकती थी। यह भी खासी स्त्री के लिए एक नयी बात होती। वे शिकार देखने भी नहीं जातीं। तब राली ने कहा, "यह शिकार अन्य शिकारों से भिन्न है। खासिया लोग शिकार करने जाते हैं, भोजन के लिए। हम शिकार करते हैं खेल के लिए। हमारे यहाँ शिकार को 'स्पोर्ट' भी कहा जाता है। और हर खासिया स्त्री का हक होता है खेल देखना तो तुम खेल देखने क्यों नहीं जा सकती?"

जयंती ने कहा, "ऐसी मनमानी व्याख्या नहीं की जा सकती और ऐसी व्याख्या करने वाली में कौन होती हैं?"²⁵

"राली ने कहा, "तब व्याख्या कौन करेगा? वास्तविक राजा तुम हो। सियेम तुम्हारी जगह काम करता है। राजा का एक काम कानून बनाना होता है.....

उसकी बात बीच ही में काटकर जयंती ने कहा, "नहीं, राजा का काम आइन चलाना होता है, बनाना नहीं। आइन हमें परम्परा से मिलता है।"

"आइन चलाने के लिए उसकी व्याख्या की ज़रूरत होती है, और वह काम राजा करता है।"

"नहीं, व्याख्या नहीं, विशिष्ट परिस्थिति में उसे लागू करना होता है। यह लागू करना 'एप्लिकेशन' कानून बनाना नहीं होता"

एक ही बात है। एप्लिकेशन भी कानून के दायरे में होता है और व्याख्या भी।"

"तो भी मैं उसे नहीं कर सकती।"²⁶

नाम मात्र का ही यह अधिकार जिसको बदलना बनाना या परिवर्तन लेने की कोशिश कर यह सब पुरुषों के अधीन था। तो मातृ समाज यह कैसा समाज है। पितृसत्तात्मक ताकत यहाँ परोक्ष रूप में भी सशक्त है। वह बिना किसी दोष के भी स्त्रियों को गुलाम बनाये हुए हैं।

"नहीं, बड़ पुजारिन ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं होती। जिसे तुम 'गाड' कहते हो, वह हमारे यहाँ नहीं होता। हमारे यहाँ स्वर्ग भी नहीं होता और नर्क भी नहीं होता। उस गाड का अवतरण भी नहीं होता--न देवदूत के रूप में, न ईश्वर-पुत्र के रूप में न अवतार के रूप में। हमारे यहाँ तो बस यह पृथ्वी होती है। उस पर कुछ अदृश्य शक्तियाँ काम करती हैं। उनमें कुछ शुभकारी होती हैं, कुछ अशुभकारी। जो शुभकारी नहीं होती हैं, उन्हें यदि पूजा जाय तो वे हमें धन-धान्य, समृद्धि देती हैं। जो विनाशकारी होती हैं, यदि उन्हें न पूजा जाय तो वे क्षय कर देती हैं। पुजारिन बस उनके पूजा का विधान करती है, क्योंकि उसकी आदि पुरखिन, गोत्रमाता यह काम आरम्भ किये होती हैं।"27

खासी महिलाओं को पुजारिन का ओहदा दिया जाता है। और उन्हें यह विश्वास दिलाया जाता है कि ईश्वर (प्रकृति) की सेवा करो। उन्हें खुश करने के लिए पूजा करो। बलि चढ़ाओ कुछ भी अनिष्ट होने से बचाओ यहीं पुजारिन का कार्य होता है। इसी को सत्य समझ कर अपनी संपूर्ण जीवन इसी में न्योछावर कर देती है। कुछ और सोचने का भी विकल्प भी नहीं होता है। स्त्रियों को इस बात का एहसास कराया जाता है कि तुम हर कार्य नहीं कर सकती हो। तुम कमज़ोर हो, असशक्त हो। तुम्हें हम लोगों पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। हम लोगों से तात्पर्य यहाँ उन पुरुषों से है, जो समाज में पुरुषवादी विचारधारा फैलाते हैं चाहे पुरुषवादी समाज हो या मातृ वंशीय समाज ऐसी तस्वीर हर जगह देखने को मिलती है।

"महिलाएँ भी पुरुषों के साथ-साथ खेतों में काम करती हैं। उनकी आजीविका को चलाने के अलावा घर के कामों में उनका पूरा हाथ है। यह शायद इस कारण से है कि राज्य प्रशासन और विभिन्न खासी राज्यों की राजनीति में कोई महिला शामिल नहीं थी। उन्हें परिषद या

राज्यों के दरबार में जाने से रोक दिया गया। वे पुरुषों के कामों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। यह कहते हुए Ynda kynlh ka lar kynthei ka pyrthet ka la वाट, लेन लाजोट का टिंग (मुर्गी के बाँग देने पर परिवार सहित, दुनिया बदतर हो जाती है) महिलाओं की भूमिकाओं की सीमाओं के बारे में पारंपरिक द्रष्टिकोण को व्यक्त करता है। खासी महिलाओं को पितृसत्तात्मक समाजों में उनकी बहनों की तुलना में अधिक विशेषाधिकार और अधिक जिम्मेदार भूमिकाएँ मिली। हालाँकि प्रभुत्व और महिलाओं के स्थान के बुनियादी पुरुष रवैये को हालांकि अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, हालांकि यह अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। पुरुष अभी भी रक्षक हैं, बलवान (यू खादर बोर यू क्लेंगवित यू बीए रेनटीह) और योद्धा। शारीरिक शक्ति में कमी ने हमेशा किसी भी महिला की कुछ भूमिकाओं को सीमित कर दिया है"28

Women also work in the fields side by side with the menfolk. They have their hands full with the household work besides eking out their livelihood .It is probably for the reason that there was no women involved in state administration and the polities of the various khasi states. They were debarred from attending the council or durbar of the states. They did not, interfere in what they considered the business of men. The saying ynda kynth ka lar kynthei ka pyrthet ka la wat, lanelajot ka ting 9If the hen crows, the world, including the family, has changed for the worse)

expresses traditional attitude about the limitations of women's roles, khasi women were given more privileges and more responsible roles than their sisters in patrilineal. The basic male attitude of dominance and women's place however, cannot be denied although it is more overtly expressed. Men are still the protectors, the stronger (u khaddar bor u klengwait u bah ryntieh) and warriors. Deficiency in physical strength has always put limitations to certain roles of women.

‘श्रीप्रकाश मिश्र’ जी ने अपनी उपन्यास “रूपतिल्ली की कथा” में स्त्रियों को कई मर्दों के साथ शारीरिक संबंध करते हुए भी बताया है। किंतु उन्हें वह मिल नहीं पाता है, जिसकी तलाश हर लड़की को रहती है शायद यही कारण है कि खासी समाज की स्त्रियों को ऐसे संबंध स्थापित करते हुए दिखाया गया है। उन्हीं में से एक है अल्खा। अल्खा जब राजा से प्रेम के बारे में पूछते हैं तो उसका जवाब अल्खा के हृदय को चोट पहुँचाने वाली होती है। इससे यह तो समझ आता है कि राजा को अल्खा के शरीर से प्रेम है उससे नहीं।

“अल्खा हँसकर बोली, "आपका प्राण किसमें बसा है?" उसे उम्मीद थी कि ऐसे क्षण में कोई भी यही कहेगा कि तुममें बसा है। वही राजा भी कहेगा। लेकिन राजा बोला, "रानी में। रानी की सूपा-बढ़नी में। इसलिए वह बड़ा सम्हाल कर रखती है।”²⁹

यहाँ जो जवाब दिया गया है। इसमें अपनी पत्नी रानी में प्राण बसने की बात कहीं जाती है। अगर उन्हें अपनी पत्नी से इतना ही प्रेम है तो उसके साथ ईमानदारी से रहते। किंतु उनका

मन तो हर किसी के लिए मचलता रहता है। तो ऐसे प्रेम को कोई क्या नाम देगा। राजा का दोहरा चेहरा तब दिखाई देता हैं। जब अलखा को इस बात से झटका लगा कि राजा का प्राण रानी में बसा हैं। तब उनका दोहरा रूप देखने को मिलती हैं।

“अलखा की आँखें खुली की खुली रह गयीं। उन्हें देख कर राजा सहम गया। लगा कि कोई गलत बात कह गया है। तब तक देर हो चुकी थी। जो घर के भीतर का रहस्य था, वह बाहर के आदमी के कानों में चला गया था। अनहोनी हो गयी है। लगता है, वह इसको समझ भी गयी है। उस पर पर्दा डालन के लिए, उसका महत्त्व वह कम करके आँके, इसके लिए उसे अपनी गोद में और सटाकर दबकाते हुए, कोमल अंगों पर हाथ फेरते हुए बोला, “हमारा जन्म तो यूँ ही होगा। तुम्हारे साथ जो अधूरा रह जा रहा है, उसे पूरा होना ही है।”³⁰

पुनर्जन्म का ढोंग रचकर इस बात की सांत्वना देना कि मैं तुमसे बहुत प्रेम करता हूँ। अगर इस जन्म हमारा प्रेम पूर्ण न हो पाया तो भी अगले जन्म में पूर्ण कर लेंगे। इससे बड़ा धोखा तो शायद ही कोई होगा। अगला जन्म, पीछला जन्म यह एक झूठ मात्र है और कुछ नहीं। अलखा इस चीज़ से उभर नहीं पा रही थी। और एक सच्चे प्रेम की तलाश में फिर से खोज करने लगी। किंतु उसकी बातों से यह तो साफ हो चुका था कि लड़के कभी वफादार नहीं होते हैं। और किसी एक लड़की पर उसका मन ठहरता भी नहीं है। यही स्त्रियों की जीवन की कटु सच्चाई है। इसलिए स्त्रियाँ दर-दर भटकता रहता है।

“अलखा कहीं और खोई थी। जिस रहस्य को जानने के लिए वह आन पड़ी थी, वह इतनी आसानी से और यूँ ही अचानक मिल जायेगा, उसे विश्वास नहीं हो रहा था, इसलिए उतावलापन बढ़ती जा रही थी। इसे वह किसी के साथ बाँटना चाह रही थी। किसके साथ?

निस्सोर सिंह के साथ उसे बताने के लिए नहीं, इस बात की सत्यता जाँचने के लिए। पर वह रिजा का बच्चा जाने कहाँ होगा। किसी निजपत या नरटियाड की छोकरी का कुमारित्व भंग कर रहा होगा। क्या ऐसा कर रहा होगा?"³¹

खासी समाज का ढाँचा श्रीप्रकाश मिश्र जी ने अपनी अनुभूति के जरिए बड़ा ही सार्थक रूप प्रस्तुत किया है। स्त्रियों की वेदना और त्रासक जीवन का भी बड़े ही जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है।

(ग) मैतेयी समाज और स्त्री:

मणिपुर का शाब्दिक अर्थ 'आभूषणों की भूमि' है मणिपुर भारत का एक पूर्वोत्तर राज्य है। इसकी राजधानी इंफाल है। मणिपुर के पड़ोसी राज्य हैं: उत्तर में नागालैंड और दक्षिण में मिज़ोरम, पश्चिम में असम, और पूर्व में इसकी म्यांमार है।

मणिपुर में 33 (तींतीस) जनजातियाँ हैं अंगामी, चोथे, मिज़ो, मारम, मारिंग, सांग, जो, राल्ते, नागा, और कुकी आदि जनजाति। इन जातियों के अधिकांश लोगों ने ईसाई धर्म अपना लिया है। भारत के अन्य प्रदेशों से अनेक जातियों के लोग मणिपुर के अनेक स्थानों पर निवास करते हैं। इनमें पंजाबी, बिहारी, मारवाड़ी, नेपाली, बंगाली आदि मुख्य हैं। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध आदि सभी मणिपुर के क्षेत्र में देखने को मिलती हैं वे भी मणिपुर के अभिन्न अंग बनकर घुल-मिल गए हैं।

"मेइतेइ या मीतेइ पूर्वोत्तर भारत के मणिपुर राज्य का बहुसंख्यक समुदाय है। वे मणिपुर के मूल निवासी हैं इसलिए उन्हें कभी-कभी 'मणिपुरी' भी कहा जाता है। धार्मिक दृष्टि से अधिकतर मेइतेइ हिंदू हैं।"³²

The meitei people (also known as Manipuri) are an ethnic group that comprise the majority in Manipur, a northeastern state of India

"इनकी मान्यताओं 'सनमाही' नामक विश्वास- पद्धति भी शामिल है जिसमें ओझाप्रथा के मेइतेइ समुदाय के एक महत्वपूर्ण पूर्वज के बारे में मान्यता है कि वे पाखंगबा (अझदहा- रूपी देवता के रूप में प्रकट हुए थे।"³³

Meitei(meitei-lon, Manipuri) is a Tibeto-burmon language spoken by most of the population in the state of Manipur in India, where it is the official language.

मैतेई लोग मणिपुरी भाषा बोलते हैं जो तिब्बती-बर्मी भाषा है जो भारत में मणिपुर राज्य की ज्यादातर आबादी द्वारा बोली जाती है, जहाँ यह आधिकारिक भाषा है।"³⁴

मैतेई लोगों के बारे में बहुत कुछ विवादास्पद और निश्चित नहीं है। कई सारे विचार और धारणाएँ देखने को मिलती हैं। इनके हिंदू धर्म के पीछे आर्यों समुदायों से इनका संबंध तक कहा जाता है।

"मैतेई लोगों की उत्पत्ति निर्णायक रूप से ज्ञात नहीं है। यह ज्ञात है कि इंफाल नदी के उपजाऊ मैदान और घाटी के क्षेत्रों और मणिपुर नदी के सहायक नदियों पर उनके बस्ती ने मेइतेई को एक परिष्कृत गीले चावल की खेती प्रणाली विकसित करने में सक्षम बनाया, जिसने एक सघन आबादी को सहारा दिया और निकटवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों की तुलना में अधिक जटिल राजनीतिक और सामाजिक प्रणाली के विकास को प्रेरित किया।"³⁵

The origins of the meitei people are not conclusively known. what is known that their settlement on a fertile plain and valley regions of the imphal River and the tributaries of the Manipur River enabled the Meitei to develop sophisticated wet rice cultivation systems, which supported a denser population and drove the development of a more complex political and social system than in a adjacent hill areas.

“ रॉयल-क्रॉनिकल,चेथारोल कुंभवा के अनुसार मणिपुरी घाटी में अलग-अलग कुलों या जनजातियों का शासन था, जो बात में सात में विलीन हो गए।”³⁶

According to the Royal Chronicle,cheitharol Kumbaba,the Manipuri valley was ruled by a different clans or tribes,which later merged into seven.

इस तरह से यह स्पष्ट होता है कि मेइतई जनजाति को लेकर कई तरह के विचार लोगों में है। अगर हम उन कड़ियों को मिलायें तो एक बात उभर कर सामने आती है कि मैतेई समाज बहुत सारे जनजातियों और कुलों का मिश्रण हैं। जो कई कारणों से यहाँ के क्षेत्रफल में आए और यही कि समाज में घुल -मिल कर नया रूप प्रदान करने लगे। क्योंकि इन पर आर्यों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जाता हैं। इसलिए यहाँ हिंदू को मानने वाले की संख्या भी कम नहीं हैं। अंग्रेजों के आने के बाद यहाँ ईसाइयों का वर्चस्व भी स्थापित होने लगा। इस तरह मणिपुर कई सारी धर्मों का समावेशी राज्य भी कहा जा सकता हैं।

मैतेई लोग धीरे-धीरे कर अल्पसंख्यक रूप में सामने आने लगी है। क्योंकि मणिपुर समाज कई धर्मों और जातियों में विभाजित हो गया है। जिस कारण एक प्रकार से समाज में अशांति और अराजकता हमेशा फैली रहती है। मेईतई समुदाय की माँग है कि उन्हें अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिले ताकि उन्हें बहुत सारे सुविधाओं का लाभ मिल सके। जो अन्य जनजातियों को मिल रहा है। किंतु अन्य जनजातियाँ इस बात पर निरंतर विरोध कर रही हैं। उनका कहना है कि वे शैक्षणिक रूप से बहुत विकसित हैं। जबकि अन्य जनजातियाँ नहीं हैं। ऐसे में उनको अनुसूचित जनजाति का दर्जा बाकियों के लिए क्षती हो सकती है।

मैतेई समुदाय मणिपुर के मूल निवासी हैं। और प्रवासियों के आने से उनकी अस्तित्व खतरे में आ चुकी है। वे अपने ही ज़मीन में अजनबी होते जा रहे हैं। मैतेई समाज द्वारा बहुत लंबे समय से अपने अस्तित्व को बचाए रखने की लड़ाई लड़ रही है। उनकी माँग है कि उन्हें अनुसूचित जनजाति में शामिल किया जाये। जिसके लिए सरकार और मैतेई समाज द्वारा मतभेद चला रही हैं। जिसके कारण मूल निवासी बागी होते जा रहे हैं। और मणिपुर में निरंतर हड़ताल बगावत आदि चलने के कारण सामाजिक स्थिति बहुत अशांत होती जा रही है। एक प्रकार से कश्मीर की स्थिति जैसा माहौल भी बनता जा रहा है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि कश्मीरी लोग अपनी पहचान भूल चुके हैं। और मणिपुरी लोग अपनी पहचान मिटने नहीं देना चाहते हैं। द वायर में छपे "मैतेई समुदाय को अनुसूचित जनजाति में शामिल करने की माँग को लेकर मणिपुर में प्रदर्शन"के माध्यम से संपादक ने बहुत सी समस्याएँ हमारे सामने प्रस्तुत की हैं।

"इंडियन एक्सप्रेस की रिपोर्ट के मुताबिक शेड्यूल ट्राइब डिमांड कमेटी (एसटीडीसी)द्वारा आयोजित रैली में कई नेताओं, छात्रों और नागरिक संगठनों के सदस्यों ने हिस्सा लिया। एसटीडीसी मेईतई समुदाय को सामान्य श्रेणी से अनुसूचित जनजाति में शामिल करने की

माँग को लेकर 2014 से आंदोलन कर रहा है। 2011 की जनगणना के मुताबिक राज्य की कुल आबादी 28 लाख से अधिक है जिसका 40 फ़ीसदी सामान्य मैतेई हैं।

एसटीडीसी का कहना है कि सबसे बड़ा समुदाय होने के बावजूद मेईतेई पर अवैध प्रवासियों के आने की वजह से संवैधानिक सुरक्षा के बिना विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है।

रिपोर्ट के अनुसार यह रैली इंफाल पश्चिम जिले के ताउ ग्राउंड में शुरू हुई और हापटा कांगजेइबंग में खत्म हुई। इसमें नौ मार्च से सर्वसमिति से 36 घंटे की हड़ताल का आह्वान किया गया।

संगठन की माँग है कि अगर अनुसूचित जाति में मेईतेई समुदाय को शामिल करने को लेकर केंद्र को सिफारिश भेजने में राज्य की एन. बीरेन सिंह सरकार असफल रहती है तो नौ मार्च की शाम से 36 घंटे की हड़ताल की जाएगी।

एसटीडीसी के संयोजक रोमांस मेईतेई ने कहा, 'भारतीय संविधान के अनुसार स्वदेशी लोगों को अनुसूचित जनजाति समझा जाता है। मेईतेई स्वदेशी लोग हैं, हमारी माँग है कि हमें अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल किया जाए। कमेटी का कहना है की अनुसूचित जनजाति में मेईतेई को तुरंत शामिल करने की जरूरत को लेकर राज्य सरकार को तैयार करने के कई प्रयासों के बावजूद वे माँग को पूरा करने में नाकाम रहे हैं। इसमें समुदाय की दशा की ओर सरकार की लापरवाही का पता चलता है।'³⁷

इस लेख से यह बात तो साफ हो गई है। यह लंबी लड़ाई है सरकार उन्हें अनदेखा नहीं कर सकती है। अंधेरे में उम्मीद की किरण लिए वह समा जलाने की कोशिश कई वर्षों से कर

रही है। पूर्वोत्तर भारत जो अपनी प्राकृतिक सौंदर्य के कारण मशहूर है। वहाँ पता नहीं जंगलों के बीच अपनी जीवन बचाएँ रखने की लड़ाई न जाने कितने मोड़ लेंगी।

मेईतइ हिंदू धर्म के अनुयायी है। किंतु उनकी बहुत से रीति -रिवाज,धर्म-कर्म का रूप भारत के अन्य क्षेत्रों से कुछ भिन्न दृष्टिगोचर होती है। कई दशकों से मणिपुर में अलगाववादी गुट चल रही है। छोटे से क्षेत्र में बहुत से विभाजन हो गए हैं। देश भीतर देश की स्थिति पैदा हो गई है।

मणिपुर में हिंदुत्व का प्रभाव रहने के कारण यहाँ बहुत कुछ अव्यस्थित सा देखने को मिलती है। यहाँ भी वैसा ही माहौल हो गया है। जिसे खत्म करने के लिए पूरे भारत वर्ष में मुहिम चल रही है। जिसके कारण दलित विमर्श का जन्म हुआ। लेकिन पूर्वोत्तर जैसे अनोखे प्रदेशों में भी पवित्र- अपवित्र, अस्पृश्यता का जाल फैला हुआ है। यह मेईतइ समाज की कुछ गंभीर समस्याएँ हैं। मधु चंद्र जी की एक लेख जो न्यूज़किलक में छपी थी। इससे इन सारी समस्याओं को भली-भांति समझ सकते हैं। हालांकि यह विचार उनकी अपनी निजी है। जब अनुभव निजी है तो विचार भी जाहिर तौर पर निजी ही रहेगी। उन्होंने यह बात अच्छी तरह से समझाई है कि मेईतइ समाज में हिंदुत्व का असर कैसे और कब शुरू हुआ। और इसकी जड़े कितनी मजबूत हो चुकी है। इसका असर भी देखने को मिलती है। धर्म-कर्म, शादी-ब्याह तक भी इस विचारधारा ने अपनी पकड़ स्थापित किए हुए हैं।

"मणिपुर में हिंदुत्व के प्रसार के बाद,खासकर सोशल मीडिया में जातिवाद तथा अस्पृश्यता की चर्चा तेज हो गई है।

18वीं शताब्दी की शुरुआत में मणिपुर आए हिंदू मिशनरी शांतिदास गोसाई ने मेईतइ को हिंदू धर्म परिवर्तित कर उनके पवित्र ग्रंथ पुईया को जला दिया।

मेईतइ पुईया के जल जाने से मणिपुर की संस्कृति,भाषा,धर्म और सामाजिक सद्भाव पर हमला हुआ। मणिपुर में हिंदू अवधारणा ने उत्तर- पूर्वी राज्य में लोगों के जीवन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। मेईतइ समाज में जाति के अस्तित्व को राज्य के लोगों ने हमेशा अस्वीकार किया है क्योंकि मणिपुर के लोगों को भारत के तथाकथित 'अस्पृश्यता' के साथ वर्गीकरण करना पसंद नहीं है। लेकिन मणिपुर में पैदाइश से लेकर मौत तक जिंदगी के हर पड़ाव में जातिवाद के लक्षण और प्रथा दिखाई देते हैं।³⁸

जातिवाद की जड़ें जाने कितने समाज को बर्बाद कर चुकी है। 18 वीं शताब्दी में आर्यों ने अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए आदिवासी समाज के लोगों के दिमाग में गंदगी भरना शुरू कर दिया था। अपने ही लोगों के साथ घृणा और नफ़रत का व्यवहार करें इसकी सीख देनी शुरू कर दी। ब्राह्मणवाद के शिकंजों से कोई बाहर नहीं है। उन्हीं में से एक मेईतइ समाज भी है। वे उन धर्मगुरुओं के षड्यंत्र में फँस गए और अपनी ही मूल धार्मिक ग्रंथ 'पुईया'को जला स्वयं को ब्राह्मण समझने लगे। मणिपुरी समाज में ब्राह्मणवाद का असर पड़ने के कारण वहाँ के लोगों के दो भाग हो गए हैं। एक भाग अपनी अदीम पहचान को बनाए हुए आदिवासी ही है। और एक भाग (मेईतइ) हिंदुत्व के जाल में फँसकर कोल्हू का बैल मात्र रह गया है। क्यों राज्यों के आदिवासी लोग उनके अस्तित्व को ही मानने से इंकार कर रहे हैं।

मेईतइ समाज की लड़कियों में बहुत खुलापन है। वे न तो पर्दे में रहती है। और न ही दूर रहने की स्थिति वहाँ है, वहाँ की समाज की स्त्रियाँ चाहे कुंवारी ही क्यों न हो बेजीजक और बेबाक होकर बातें कर सकती है। उन्हें छेड़ भी सकती है। 'आहुति' उपन्यास में श्रीधर पांडे जी ने मनोज उपन्यास का नायक जो बिहार से नौकरी की तलाश में मणिपुर आया है। उसके

माध्यम से मणिपुर की लड़कियों की चंचल चितवन की व्याख्या की है। वे बताते हैं -"मनोज के यहाँ आने के दो-तीन महीने बाद ही होली पड़ गया था।

"छोटी-बड़ी मणिपुरी लड़कियों की टोली अपने आकर्षक रंग-बिरंगे परिधान में सड़कों पर निकल पड़ी थी। पाँच दिन पहले से उनका जत्था सड़को गलियों में लोगों को रोककर पैसा माँग रहा था। मनोज एक बार लड़कियों की एक टोली से घेर लिया गया। मनोज का लड़कियों के उन्मुक्त समूह के साथ जीवन में पहली बार सामना हुआ था। उनका खिलखिलाता चेहरा, शरारती चितवन, खुला व्यवहार देख क्षणभर तो वह मुग्ध हो गया था। पर दूसरे ही क्षण घबराहट से उसे पसीने छूटने लगे थे। दो छोटी लड़कियों ने उसके हाथ पकड़ लिये थे। वे मणिपुरी में कुछ बोल रही थी, जिसे मनोज समझ नहीं पा रहा था। सभी लड़कियाँ हँसकर दोहरी हो रही थी।

इस रिवाज के बारे में उसने सुन रखा था। पर इस तरह घिर जाने की स्थिति की उसने कल्पना नहीं की थी। लड़कियों की भीड़ में से दो सयानी लड़कियाँ निकल कर उसके सामने आईं। उन्होंने उसे हिंदी में समझाते हुए कहा-

"इन लड़कियों को पैसा दे दीजिए, यह मणिपुर का रिवाज है। लड़कियाँ इस तरह पैसा वसूल कर जमा करती हैं, इसी से वे होली का उत्सव मनाती हैं।"

दूसरी लड़की ने कहा-

"अगर पैसा न देंगे तो हम लोगों के ग्रुप के साथ -साथ घूमकर पैसा माँगना होगा।"

मनोज ने अपनी जेब से पैसा निकाल कर दिया, तब वे उसे छोड़ हँसते हुए आगे बढ़ गईं।"39

ऐसा खुलापन भारत के अन्य हिस्सों में देखने को नहीं मिलती है। और अगर वहाँ की लड़कियाँ इस तरह व्यवहार लड़कों के साथ करें तो लड़कें को यह लगेगा कि लड़की मुझे मौका दे रही है। मुझे पसंद करने लगी है। इस तरह के विचार मन में आने लगते हैं। और इसका भरपूर फायदा भी उठाने की चेष्टा करेंगे। किंतु मणिपुर जैसे पूर्वोत्तर राज्य में ऐसे विचार ने कभी अपना ढ़ेरा नहीं जमा पाई थी।

मनोज को इसी अवसर पर 'थौबल- चंबा' नृत्य देखने का मौका मिला है। और वहाँ के नृत्य देखकर वह गहरी चिंतन में खो जाते हैं। भारत के अन्य प्रदेशों से बिल्कुल भिन्न मणिपुरी लड़कियाँ और समाज बिल्कुल ही अलग तरह का जीवन जीते हैं। जो मनोज को बहुत अधिक प्रभावित करता है। लेखक लिखते हैं- "इसी अवसर पर 'थौबल -चंबा नृत्य देखने का अवसर भी मिला। उसे लोगों ने बताया इसका अर्थ होता है। चाँद के साथ नाचना। बस्ती के बीच बड़े से मैदान में नृत्य का वृत्ताकार आंगन बनाया जाता है, चारों ओर से बतियाँ जलाई जाती है। कई तरह के वाद्य यंत्रों से संगीत के स्वर का आयोजन होता है। जिस बस्ती मुहल्ले या गाँव में यह आयोजन होता है, वहाँ की सभी अविवाहित लड़कियाँ नृत्य के प्रांगण में अपने सजे - बजे प्रसाधनों के साथ उतरती है। थोड़ी ही देर में उसमें लड़के शामिल हो जाते हैं। ये लड़के लड़कियों का हाथ पकड़ कर नाचते हैं। ये लड़के दूसरी बस्तियों के होते हैं, इस गाँव के लड़के किसी दूसरी बस्ती में नृत्य करने जाते हैं। पूरा एक महीना नृत्य का यह उत्सव हर गाँव, बस्ती, मोहल्ले में चलता है। नर्तक बड़े गोलाकार में एक- दूसरे का हाथ पकड़ कर वाद्य की धुन पर थिरकते हुए घूमते जाते हैं। लड़की का हाथ एक लड़का पकड़ता है फिर दूसरी लड़की और उसका हाथ कोई दूसरा लड़का और उसका हाथ कोई दूसरी लड़की पकड़ती है।"⁴⁰

मनोज के जीवन में यह पहला मौका था। और समाज के लिए विचारधारा भी बनाती है। जो भारत में चले आ रहे सदियों पुरानी विचारधारा को पूर्ण रूप से खारिज करती है।

"इस रात्रि नृत्य में पूरे एक महीने साथ नाचने के बाद लड़कियों का नये लड़कों से परिचय होता है। यह परिचय उनकी जान - पहचान में बदलती है जो मित्रता का रूप धारण करता है , यह मित्रता प्रेम में बदल जाती है। कुछ महीनों के बाद लड़की अपने प्रेमी के साथ घर छोड़ भाग जाती है। वे अपने किसी मित्र या शुभचिन्तक के घर छिपकर तीन दिन रहते हैं। अगर तीन दिन वे किसी से पकड़े नहीं जाते हैं तब लड़के का पिता लड़की के पिता के पास शादी का प्रस्ताव लेकर जाता है। लड़की का पिता कोई भी शर्त रख सकता है, पैसा माँग सकता है या कुछ भी जिसे लड़के के पिता को पूरा करना पड़ता है। शादी तय हो जाती है तब लड़के का पिता बारात लेकर लड़की के घर आता है। शादी एक दिन में संपन्न हो जाती है। उसी रात लड़की को लेकर लड़के वाले अपने घर आ जाते हैं, चार दिनों के बाद लड़का - लड़की दोनों को लेकर वे फिर लड़की के पिता के घर आते हैं। इस बार सामूहिक भोज होता है जिसमें अतिथियों को भी सम्मिलित किया जाता है।

मनोज ने बड़ी उत्सुकतापूर्ण पूरे आयोजन की जानकारी प्राप्त की। इस समाज की व्यवस्था से वह चकित होने के साथ उसने मन ही मन अपने यहाँ की शादियों से तुलना भी की। यहाँ तो लड़के के पिता को ही लड़की के पिता के पास जाना पड़ता है, अगर दहेज देना भी पड़े तो लड़के के पिता को ही देना है। लड़की का लड़के के साथ भागना उसके अपने प्रदेश में एक बहुत बड़ा कलंक माना जाता है। ऐसी लड़की का सारा जीवन नष्ट हो जाता है, उसके परिवार का सामाजिक बहिष्कार हो जाता है। इस समाज में ठीक इसके विपरीत परम्परा है, उसे यह बड़ा अच्छा लग रहा था।"⁴¹

अगर मनोज जैसे प्रवासी जो सदियों से चले आ रहे रूढ़िवादी विचारधारा का हिस्सा रहे हो। जब उसके मन में इस समाज के नियम के लिए झुकाव आ सकता है; तो उन रूढ़ियों को बदलना अतिअवश्यक है।

किंतु इतना कुछ होते हुए भी यह तो स्पष्ट होता है कि यहाँ की समाज में लड़कियों की उन्मुक्त धारा क्यों न दिखाई जाए। पितृसत्तावादी विचारधारा यहाँ भी अछुटी नहीं है।

"वह समझ गया कि यह ' ट्राईबल ' परम्परा का अवशेष है। उसे पता है बिहार या अन्य प्रदेश की जन - जातियों में इससे मिलती जुलती परम्परा है। पर इसे यह जानकर कौतूहल हुआ की लड़की के भागने के उपक्रम में भाई या पिता बाधा उत्पन्न करते हैं। लड़की का भागना सफल माना जाता है जब वह घर के पुरुषों की जानकारी बिना भाग जाती है।"⁴²

आदिवासी समाज जो चीजें बेहतर भी थी। वह प्रवासियों के आने से विनाश की कगार में पहुँच गई है। प्रवासियों का असर बहुत गहराई तक मेईतई समाज के जीवन में घर कर लिया है। जो लड़कियों के लिए हानिकारक साबित हुई है। लेखक लिखते हैं-

"बाद में मणिपुर के बारे में अधिक जानकारी हो जाने के बाद, उसे लगा जब मणिपुर में हिन्दू धर्म का प्रभाव हो गया तब जनजातियों की परम्परा को रखते हुए हिन्दू धर्म की सामाजिक कठोरता का भी समावेश कर लिया गया।"⁴³

मेईतई समाज में प्रवासियों का इतना बोल-बाला है कि वह बाहर से आकर सभी क्षेत्रों में अपना स्थान बना लिये हैं। जिसके कारण उसी समाज में अपने लोग ही बेरोजगार होते जा रहे हैं। उन्हीं की बीच होर लग गई हैं। अब यह सब चीजें वे समझने लगे काफी हद तक जागरूकता विकसित हुई है। जिसके कारण वे भी कई सारे में आगे आ चुके हैं। एक तरह का

पछतावा भी उनके मन में घर कर लिया है। अवसर खोने का जिसका परिणाम आपसी दुश्मनी, रंजीशे ने जगह ले ली है।

"ढेर सारे लोग बाहर के यहाँ है , सबमें उसे नई स्फूर्ति दिखाई देती है । बाहर वाले लोगों में व्यापारी, शिक्षक, नौकरी पेशा और मजदूर अधिक है । सभी नये अवसर की खोज में अपना गाँव, नगर और प्रदेश छोड़ यहाँ आये हैं । स्थानीय लोग अपनी संस्कृति , कला - संगीत के प्रति बड़े जागरूक है मध्यमवर्गीय लोग ज्यादातर सरकारी नौकरी या शिक्षण संस्थाओं में है । कुछ लोग अब व्यापार में उतरने की कोशिश कर रहे हैं हालांकि व्यापार पर मारवाड़ियों का एकाधिपत्य है।"⁴⁴

मेईतइ समाज की लड़कियाँ उन्मुक्त की राह में अग्रसर है। हालांकि ऐसे बहुत सी चीजें जो उनकी अनुकूल है। फिर भी मणिपुर भूमि लड़कियों को चार दिवारी में कैद करके रखने वाला समाज नहीं है। लेखक लिखते हैं-

"सड़कों पर रंगीन परिधानों में हर उम्र की लड़कियों को सायकिल पर चलते हुए देखता है , तो उसे लगता है रंग - बिरंगी तितलियाँ उड़ रही है । यहाँ हर घर में सायकिल है , वह भी लेडी - सायकिल । चपरासी की लड़की हो या सरकारी कर्मचारी या किसी बड़े अधिकारी की लड़की, सब घर की लड़कियाँ सायकिल से ही स्कूल - कॉलेज, हाट - बाजार आती - जाती है । मनोज को यह दृश्य बड़ा ही मनोहारी लगता है । कुछ लोग इधर स्कूटर या इक्के - दुक्के कुछ लोग कार भी रखने लगे हैं ।

यह उसके लिये नया अनुभव है । उसने अपने गाँव नगर में किसी लड़की को कभी सायकिल चलाते नहीं देखा था । यहाँ स्त्रियों में पर्दा बिल्कुल नहीं है । बाजार में कई जगह स्त्रियों का एक छत्र साम्राज्य है । जिन मनिपुरी परिवारों में वह पढ़ाने जाता है , वहाँ भी लड़कियों को

पढ़ाना पड़ता है। शुरू में उसे थोड़ी हिचकिचाहट हुई थी, पर अब वह इससे मुक्त हो चुका है।”⁴⁵

मणिपुरी समाज के लोगों में किसी भी तरह के बुरे विचार नहीं देखने को मिलते हैं। वे हर इंसान को सही नजर से देखते हैं। यह उनकी समाज के खुलेपन के कारण संभव हुआ था। क्योंकि मेईतइ में लड़के-लड़कियाँ आपसी ताल-मेल और एक साथ घुल-मिल कर रहते हैं। जबकि मनोज बिल्कुल अलग परिवेश से आया हुआ लड़का था। जब चानु (मेईतइ लड़की)। जो कि दसवीं कक्षा में पढ़ती है। उसके पिता उसे हिंदी पढ़ाने के लिए कहता है। तो मनोज के मन में बहुत संकोच था। जबकि लड़की के पिता होने के बावजूद चानू के पिता नीलमणि सिंह के मन में किसी भी तरह की विचार उत्पन्न नहीं हुए सिवाय पढ़ाई के। वे बताते हैं-

"चानु को पढ़ाना शुरू किया था, उनके परिवार के साथ उसका संपर्क बढ़ गया था। चानु के साथ उसके छोटे भाई और बहन भी अपनी किताबें लेकर बैठ जाते थे। वे दोनों निचली कक्षाओं में थे, उन्हें पढ़ाने में मनोज को कोई कठिनाई नहीं थी। बल्कि उनके रहने से उसे सुविधा हो गई। चानु को पढ़ाने के प्रस्ताव से शुरू में उसे थोड़ी घबराहट हुई थी। दसवीं कक्षा की छात्रा चानु को पढ़ाने में कोई समस्या नहीं थी। पर जिन मणिपुरी लड़कियों को समूह में देखकर उसका मन प्रमुदित हुआ था, उनमें से एक के साथ पठन - पाठन के लिए एक घंटे साथ बैठने के प्रस्ताव से उसे थोड़ी असुविधा महसूस हुई थी। ऐसी किसी भी स्थिति से उसका अब तक सामना नहीं हुआ था। पर पहले दिन ही चानु के साथ उसके छोटे भाई - बहन अपनी किताबें लेकर आ बैठे तो उसे राहत मिली।”⁴⁶

मेईतइ समाज की स्त्रियों की स्थिति कि अगर जायजा लिया जाए तो यह तो साफ है कि वहाँ की लड़कियाँ कम-से-कम पर्दा में नहीं है। हालांकि बहुत से शोषण और पितृसत्तात्मक सोच से

अवश्य गुजरना पड़ता है। जहाँ लड़कियों को बहुत हद तक आजाद देखा जाता है। वहीं समाज बहु विवाह बहु पत्नी विवाह का भी बहुत ही भयानक रूप भी देखने को मिलती है। जिसमें स्त्रियों को मनुष्यों के स्थान पर पशु तक समझने की सच्चाई नज़र आती है। ऐसे ही प्रसंग लेखक ने हमारे सामने आहुति उपन्यास के माध्यम से रखा है। जो अंत में समाज के लिए एक प्रश्न चिन्ह छोड़ जाता है। मेईतइ समाज की स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा का पता तब चलता है। जब मनोज और चानू का प्रेम प्रसंग हमारे सामने आते हैं।

श्रीधर पांडे जी ने उपन्यास के आमुख में मणिपुर समाज की आतंकवाद, अलगाववाद से ग्रसित सामाजिक अशांति को बताया है।

"देश की वर्तमान स्थिति से मन उद्विग्न था, इम्फाल प्रवास की यादें ताजा थी। इस प्रवास के अनुभव बहुत निकट के थे। लगता है, सब कुछ अभी-अभी गुजरा है। आतंकवाद से ग्रस्त इस खूबसूरत सीमावर्ती छोटे राज्य के लोगों का संकट नजदीक से देखने के बाद सारे देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनीतिक अस्थिरता, नारी-उत्पीड़न, बाल शोषण, क्षेत्रीयता का उन्माद, साम्प्रदायिकता की आग 'हिंसा और घृणा' की फैली लपटें मन में देश के भविष्य के प्रति आकांक्ष उत्पन्न करती हैं।"⁴⁷

मणिपुर में कश्मीर जैसी स्थिति, स्थानीय लोगों का प्रशासन सरकार से मतभेद, निरंतर देश में अस्थिरता का माहौल बढ़ती जा रही है छोटी सी चिराग ने समाज में ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया था।

चानू के माध्यम से लेखक ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को दर्शाया है। उन्हें अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं है। खासतौर पर जब वह लड़का गैर-मेईतइ हो। पूरा समाज

इसका विरोध करना आरंभ कर देता है। चानु के चचेरे भाइयों के वाक्य से यह बात साफ होती है।

"दोनों एक साथ बोल उठे, ' क्यों, आप किसी मयांग (विदेशी, मणिपुर से बाहर के आदमी को मयांग संबोधित करते हैं।) से शादी करोगी क्या ? बाहर रहकर आने का मतलब यह नहीं कि आप को यह छूट मिल जायेगी ।'

चानु के मन में क्रोध का लावा फूट पड़ा । उसने तीखी आवाज में कहा, ' अगर मन करेगा तो कर लूँगी । यह मेरा व्यक्तिगत मामला है, इसमें किसी को पड़ने की जरूरत नहीं ।'

' आप मयांग से शादी नहीं कर सकती । पूरा समाज इसके विरोध में है । मणिपुर के नवयुवक इसको बरदाश्त नहीं करेंगे, बहुत बड़ा बवाल मच जाएगा । अंडरग्राउंड संगठनों ने फरमान को दिया है ऐसा करने वाले को बख्सा नहीं जायेगा। भूल कर भी ऐसा नहीं सोचिएगा।"⁴⁸

सेना जिस पर आम नागरिकों का सबसे अधिक भरोसा होता है। किंतु जब वहीं औरतों की अस्मिता लूटने लग जायें। तो स्त्रियाँ समाज को ही नंगा कर देती है। यह नंगापन उनकी शारीरिक अवश्य है। परंतु यह नंगेपन को दर्शाती है। मणिपुर में 'मनोरमा' की सेना द्वारा बलात्कार की दुर्घटना के बाद औरतों ने अपने शर्म छोड़ नंगे होकर उतर आए। यह नंगापन उस बीमार मानसिकता वाले पुरुषों के लिए था। जो अपनी हवस मिटाने के लिए अपनी वर्दी की लाज रखना भी भूल जाते हैं। तो स्त्रियाँ भी लाज की गहना की रूढ़िवादी सोच को नंगा करने से पीछे नहीं हटती है। लाल बहादुर वर्मा जी ने अपनी एक उपन्यास 'उत्तर पूर्व' जो मणिपुर से संबंधित है अंश मालवीय के कविता के माध्यम से 2004 मणिपुर में घटित

मनोरमा की अस्मत् को लूटने की घटना में औरतों के आक्रोश और विद्रोह को प्रकाशित करती है। जिसका शीर्षक है "मांस के झंडे"।

देखो हमें

हम माँस के थरथराते झंडे हैं

देखो बीच चौराहे बरहना हैं हमारी वही छातियाँ

जिनके बीच

तिरंगा गाड़ देना चाहते थे तुम

देखो सरेराह उधड़ो हुई

ये वही जाँघे हैं

जिन पर संगीनों से

अपनी मर्दानगी का राष्ट्रगीत

लिखते आये हो तुम

हम निकल आये हैं

यूँ ही सड़क पर

जैसे बूटों से कुचली हुई

मणिपुर की क्षुब्ध तलझती धरती

अपने राष्ट्र से कहो घूरे हमें

अपनी राजनीति से कहो हमारा बलात्कार करे

अपनी सभ्यता से कहो
हमारा सिर कुचलकर जंगल में फेंक दे हमें
अपनी फौज से कहो
हमारी छोटी उँगलियाँ काटकर
स्टार की जगह टाँक ले वर्दी पर
हम नंगे निकल आये हैं सड़क पर
अपने सवालों की तरह नंगे
हम नंगे निकल अये हैं सड़क पर
जैसे कड़कती है बिजली आसमान में
बिल्कुल नंगी....
हम माँस के थरथराते झंडे हैं

[मणिपुर में जुलाई , 2004 सेना ने मनोरमा की बलात्कार के बाद हत्या कर दी । मनोरमा के लिए न्याय की माँग करते महिलाओं ने निर्वस्त्र हो प्रदर्शन किया । उस प्रदर्शन की हिस्सेदारी के लिए ये कविता ...] -अंशु मालवीया⁴⁹

मणिपुरी समाज की पीड़ा और समाजिक चिंता के साथ-साथ लोगों के अविश्वास की दुखदायी घटना को हमारे सामने लाती हैं।

(घ) नागा समाज और स्त्री:

नागा नागालैंड की जनजाति है। जो पूर्वोत्तर का अभिन्न अंग है। किंतु एक समय ऐसा भी था। जब वे स्वयं को भारतीय मानने से इंकार कर रहे थे। वे अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहते थे। जो भारत के साथ रहकर नहीं हो सकती थी। वे एक राज्य के स्थान पर देश बनाना चाहते थे। आलम यह था कि यह दूसरा कश्मीर बन गया था। हमेशा लड़ाई, झगड़े, खून-खराबा, विरोध प्रदर्शन हर तरह की आपत्तिजनक चीजें इसी घाटी में हुआ करती थी। नागालैंड का नाम नागालैंड कैसे पड़ा इसकी भी एक दिलचस्प बात है। 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेजों और भारतीय सेनाओं ने मिलकर बैटल ऑफ कोहिमा में जापानी सेनाओं को पराजित किया था। 1957 तक यह क्षेत्र नागा हिल्स त्वेनसांग के नाम से जाना जाता रहा। 1961 में भारत सरकार ने इस क्षेत्र को राज्य का दर्जा प्रदान किया तथा इसका नाम नागा हिल्स त्वेनसांग से बदलकर नागालैंड कर दिया गया।

"नागालैंड क्षेत्र भारत के अधीन आने वाले जंगल में जीवन गुजर बसर करने वाले कई नागा कबिला समुदाय के लोगो का क्षेत्र था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेजो ने बहुत से नागा कबिलो के लोगो से सम्पर्क किया और बहुत से नागा लोगो को प्रथम विश्व युद्ध में फ्रांस और यूरोप भेजा था। जो लोग विश्व युद्ध से वापस आये उन्होने नागा नेशनलिस्ट मूवमेंट की स्थापना की। 12वी और 13वी शताब्दी में नागा लोगो का सम्पर्क अहोम के लोगो से हुआ। और 19वी शताब्दी में यह क्षेत्र ब्रिटिश शासन के आधिपत्य में आ गया। 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेजो और भारतीय सेनाओ ने मिलकर बैटल आफ कोहिम में जापानी सेनाओ को पराजित किया था। 1957 तक यह क्षेत्र नागा हिल्स त्वेनसांग के नाम से जाना जाता रहा। 1961 में भारत सरकार ने इस क्षेत्र को राज्य का दर्जा प्रदान किया तथा इसका

नाम नागा हिल्स त्वेनसांग से बदलकर नागालैंड कर दिया गया। उसके बाद 1963 में नागालैंड को पूर्ण राज्य घोषित कर दिया गया।⁵⁰

नागालैंड में 17 प्रमुख जनजातियाँ हैं: आओ, अंगामी, चांग, चाखेसांग, कोन्याक, कुकी, लोथा, फोम, पोचुरी, रेंगमा सुमी, जेलीयांग आदि। यहाँ के लोगों की संस्कृति बर्मा से मिलती - जुलती है। नागा लोग बहुत साहसी होते हैं। इतिहास में इनका नाम वीर योद्धा के नाम से जाना जाता है। "दुश्मनों की गर्दन काटना यहाँ की परंपरा थी। इनके वस्त्र पशुओं की खाल, पंख और पेड़-पौधों पत्तों आदि को मिलाकर बने होते हैं। जिससे यह अपने गुप्त अंगों को ढकते थे। सर पर पंछियों के पंख आदि का ताज लगाए होते थे। बाकी शरीर इनका नंगा होता था।"⁵¹

नागा समाज आदिवासी समाज होने के कारण बहुत अंधविश्वास भी पनपते देख पाते हैं। उनमें से एक है मृत्यु के जीवन उनका विश्वास अनश्वर आत्मा पर केंद्रित है यानी की शरीर मरता है आत्मा नहीं।

नागा पूर्वजों का मानना था कि आत्मा मृत्यु के बाद गायब नहीं होती है, लेकिन एक अलग दायरे में रहती है जिसे हम आमतौर पर आत्माओं के प्रसारण के रूप में जानते हैं। वे मरने के बाद भी अपनी एक अलग अस्तित्व बनाए रखते हैं। जो साधारण जीवन से भिन्न होती है। J.P.Mills अपनी पुस्तक एओनागाओं में लिखते हैं की "मृत्यु के बाद जीवन के एओ विश्वास का वर्णन उस आदमी के हिस्से के रूप में करता है जो मृत्यु के बाद अगले दुनिया में जाता है। आदमी को मरे हुए नहीं बल्कि, "स्वयं जाने के रूप में देखा जाता है। जो मृतकों की भूमि पर चला गया है।" माना जाता है कि एक व्यक्ति कुछ समय के लिए उस शरीर के पास रहता है।"⁵²

वे आगे बताते हैं- "एओ विश्वास के अनुसार आत्मा एक ईश्वर व्यक्तित्व नहीं है, पृथ्वी पर एक ऐसे शरीर के साथ लिप्त है जहाँ से इसे केवल मृत्यु पर मुक्त किया जाता है। बल्कि एक ऐसे शरीर से जिसे यह केवल मुक्त किया जाता है मृत्यु के समय।"⁵³

लुनग्रिट्सु नामक एक धारा की ओर मृतक अपने पूर्वजों के मार्क को पार करते हुए जाते हैं। यह नागा की अपनी मान्यताएँ हैं। जिसे हम एहो मिथ के माध्यम से विस्तारपूर्वक समझ सकते हैं -"अलग-अलग वर्गों को सौंपा गया है, जैसे कि ईमानदार आदमी की आत्मा, चोरो लुटेरों, हत्यारों के लिए एक और, जो गिरने से मारे गए, जिंदा जलाए गए, आत्महत्या के लिए एक और, जन्म देते समय मर गए और इसी तरह का ही कुछ भी हो।"⁵⁴

लोगों का यह मानना था कि आत्माओं को मृत्यु के पश्चात अच्छा जीवन या बुरा जीवन उनके कर्मों पर निर्भर करता है। जो अच्छे कर्म करते हैं वे अच्छी तरह से मुक्त हो पाते हैं। और जो बुरे कर्म करते हैं उनकी आत्मा नरक के देवता के साथ रहती है। यानी कि वह नरक में ही भटकते रहते हैं। यह मृत्यु के बाद का भय पुराने जमाने में बुरे काम न करने के लिए थे। जो आगे चलकर समाज के मान्यताओं का हिस्सा बन गया। लोथों भी एओ की तरह ही यह विश्वास रखते हैं कि मरण उपरांत आत्मा मृतकों की दुनियाँ में पहुँच जाते हैं। और वहाँ अन्य मृतकों के साथ अपना जीवन यापन करते हैं। जो जिस समूह का है उसी समूह के साथ रहते हैं।

लोथ नागाओं के बारे में जे.पी मिल्स कहते हैं कि-"जीवन के कुछ निचले रूप में आत्मा के पुर्नजन्म में एक विश्वास के निशान भी है। जिस घर में कोई मौत हुई हो। उसका कोई भी सदस्य किसी भी प्राणी की जान नहीं ले सकता है। चाहे जानवर, पक्षी या कीट, जब तक कि

'जीन' के दिन पूरे नहीं हो जाते और आत्मा अंततः मृतकों की भूमि के लिए खाना हो जाती है, यदि मारे गए प्राणी को दूसरे रूप में मृत व्यक्ति होना चाहिए।"⁵⁵

नागाओं में यह विश्वास है कि मृत्यु के बाद भी जीवन खत्म नहीं होती है। इसलिए उनकी जरूरत की चीजें जैसे बर्तन, घरेलू जानवर, कपड़े, भोजन, हथियार और इसी तरह की वस्तुओं की व्यवस्था मृतकों के लिए की जानी चाहिए। ताकि वे अपने मरणोपरान्त जीवन, सामान्य जीवन के ही तरह जी सकें।

The Ao belief of life after death as part of the man which passes after death into the next world. The man is seen as not dead but as 'going himself' as having gone to the land of the dead.

Ao belief is not an ethereal personality cumbered on earth with a body from where it is only freed at death, rather with a body from which it is only freed at death.

Ao myth there are three cities of hadeslaer with different sectors different sections are assigned such as for the honest man's souls another for the thieves, robbers, murderers another for these who died by falling burst alive, committed suicide, died while giving birth and the like.

There are also traces of a belief in the rein carnations of the soul in some lower form of life.No member of a household in which a death has occurred may cave the life of any creature,whether animal birds or insect,till the days of 'genna' are accomplished and the soul has finally left for the land of the dead, in case the creature killed should be the dead man in another form.

रक्तयात्रा नागा समाज का दस्तावेज है। यह उस समाज को प्रस्तुत करती है। जहाँ लोगों के सिर काटवाना सम्मान की बात समझी जाती थी। किंतु इन सब से भिन्न नागालैंड भारत का अभिन्न अंग होते हुए भी। यहाँ भारत के विरोध देखने को मिलती है। यह उनकी सामाजिक सोच है, जो उन्हें स्वतंत्र रखना चाहती है। किंतु इसका लाभ विदेशी लोग उठाते हुए देख सकते हैं। नागाओं के सोच में भटकाव की मात्र बहुत अधिक देखने को मिलती है। उपन्यास के लेखक 'भिक्षु'ने भूमिका में ही नागालैंड की सामाजिक पृष्ठभूमि को हमारे सामने प्रस्तुत की है। जिसमें भारतीयकरण से अधिक विदेशीकरण का असर देखने को मिलते हैं।

"किन्तु उन्नीस सौ सड़सठ के बाद के कई वर्ष शांतिप्रिय नागाओं के लिए अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण रहे। छुपे नागाओं में ऐसे तत्व थे जो चीन से सहायता लेने के समर्थक थे । यद्यपि चीनी कम्युनिज्म से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं थी, फिर भी चीन से सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक सहायता लेने के पक्ष में थे। इन लोगो के प्रयास से तथाकथित ब्रिगेडियर थिनुजिले और नागा नेशनल कौंसिल के सेक्रेट्री मुईबा के नेतृत्व में कोई तीन सौ नागा बर्मा के मार्ग से चीन के

यून्नान प्रांत में पहुंचने में सफल हुए। ए० केविचुसा मध्यस्थ रूप में छुपे नागाओं के संपर्क में था। उसने चीन से सहायता लेने का घोर विरोध किया। पर उसका कोई असर नहीं हुआ। थिनुजिले ने चीन से लौटकर आए छुपे नागा नेताओं को जब यह बताया कि चीन खुलकर उनकी सहायता करने को तैयार है तो तथाकथित जनरल मौवु, जिसे पाकिस्तान से लौटते समय गिरफ्तार कर लिया गया था और अंतरिम समझौते के फलस्वरूप क्षमादान के बाद छोड़ दिया गया था, एवं इससक सु के नेतृत्व में फिर सैकड़ों अंडरग्राउंड सैनिक प्रशिक्षण और सैनिक सहायता लेने चीन जा पहुँचे।

चीनी सहायता से बल पाकर अंडरग्राउंड नागाओं की आतंकवादी गतिविधियों से आम नागाओं को बेहद मुसीबतें झेलनी पड़ी। राज्य में हिंसा का वातावरण प्रबल हो उठा। चीन को लेकर स्वयं अंडरग्राउंड नागाओं में फूट पड़ गई। दीखु, त्वेनसांग और सेमा क्षेत्र के अंडरग्राउंड नागाओं ने इसी प्रश्न पर अपनी पृथक्ता घोषित कर दी। तथाकथित जनरल केटो ने फिजोवादियों से पृथक् अलग ही अपनी सैनिक सरकार बना ली और वह उग्र तत्वों के विरुद्ध भारतीय सेनाओं के साथ सहयोग करने लगा।

इस अवधि में जितना रक्तपात हुआ कदाचित् इससे पूर्व विगत बीस वर्षों में कभी नहीं हुआ था। सुरक्षा सेनाओं ने भी कड़ी कार्रवाई की। कोहिमा से कोई आठ मील दूर जोतसोमा की पहाड़ी पर छुपे नागाओं के फौजी कैंप को नष्ट कर दिया गया। इस कैंप में चीन में प्रशिक्षण प्राप्त नागा दूसरे अंडरग्राउंड नागाओं को ट्रेनिंग भी देते थे। इन छुपे नागाओं पर माओत्से तुंग के विचारों का कितना प्रभाव था यह उनकी डायरी के अंशों से स्पष्ट हो जाता था। 'हम युद्धों के पक्ष में नहीं, पर युद्धों से ही युद्ध मिटाए जा सकते हैं। हथियारों को खत्म करने के लिए जरूरी है कि हथियार उठाए जाएं' इत्यादि।

जनरल केटो और फिजोवादियों का संघर्ष तीव्र हुआ। केटो के अनेक पक्षधरों की धोखे से हत्या कर दी गई। केटो को भी एक दिन कोहिमा के बाजार में गोली मार दी गई। उग्रतावादी

खुगातो सुखाई के अनुयायियों ने प्रेजीडेंट म्हस्यों और राम्यो को भी छुपे नागाओं की फ़ैडरल सरकार के छदेमा स्थित हैंड क्वार्टर से गायब कर दिया ।

चीन से प्राप्त अति आधुनिक हथियारों के प्रयोग ने इस संघर्ष को नया आयाम दे दिया। छुपे नागा माओत्से तुंग के इन विचारों से प्रेरित होकर कि 'लड़ो, असफल होने पर फिर लड़ो, जब तक विजय न पा लो लड़ते जाओ, गहरी क्षति उठाकर भी संघर्ष करते रहो।' यह निरर्थक संघर्ष आज समाप्त प्राय है। नागालैंड में कई आम चुनाव हो चुके हैं, फिर भी फिजो की ओर उन्मुख असंतुष्ट तत्व अपनी हरकतों से बाज नहीं आए हैं। अब शिलांग समझौते के क्रियान्वयन से ही इस समस्या के अंतिम समाधान की आशा है।"⁵⁶

नागाओं में यह विचार थे कि अन्य भारतीय उनके दुश्मन हैं। साथ ही वे अपने स्वतंत्र अस्तित्व बनाना चाहते थे। जो कि मुमकिन नहीं थी। और उनकी इस सोच को हवा देने का काम चीन और इंग्लैंड ने किया था। यह बड़ा आतंकी माहौल था। हालांकि अभी भी कुछ अशांति है। कभी भी हिंसक रूप धारण कर लेते हैं। भारत का अंग होते हुए भी अधिकतर मिशनरियों का ही राज है। अंग्रेज चले गए। किंतु उनका धर्म यही छोड़ गए। मिशनरियों के प्रभाव से उनकी सामाजिक स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन भी आया है। जिन हत्या, सिर काटना इस तरह का रिवाज अब वहाँ से पूरी तरह से लुप्त हो चुका है। बहुत से सामाजिक बुराइयों में परिवर्तन देखने को मिलती है। शायद यही कारण होगा उनके ईसाईयत अटूट निष्ठा के पीछे।

'भिक्षू'जी ने उपन्यास में केदीलिनो के माध्यम से नागाओं में सिर काटने के गर्व को बड़े ही अच्छी तरह से बतलाया है। सिर काटना शौर्यवीरता की निशानी मानी जाती थी। वह व्यक्ति बड़े ही सम्मान प्राप्त माने जाते हैं। जो लड़ाई में दुश्मन के सिर काट कर लाये।

"केदीलिनो अंगामी के घर में काम की धूम मची थी। वह अपने कबीले में सर्व प्रतिष्ठित होने के लिए लेसे गेन्ना मनाने जा रहा था। अपने नाम के अनुरूप पहले से ही उसकी प्रतिष्ठा थी। कोहिमा गाँव में ही नहीं खोनोमा और जोतसोमा तक उसकी धाक थी। केदीलिनों का अर्थ है राज्यों का निर्माता। उसने भले ही किसी नए राज्य का निर्माण न किया हो, पर शिरच्छेदक होने के नाते वह सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उसने दूसरे कबीलों और गाँवों से लड़ाई में अनेक बार विजय प्राप्त की थी। दो बार तो वह शत्रुओं के सिर तक काटकर लाया था। उन सिरों को उसे अपने घर के बाहर गाड़कर संतोष कर लेना पड़ा था, जबकि वह उन्हें दीखू नदी के पार वाले आओ नागाओ या त्वेनसांग और रेंगमा नागाओं की तरह अपने घर के दरवाजे या आंगन के मेड़ पर टांगना चाहता था जिससे उसके बाद की पीढ़िया भी उसके पराक्रम की कहानियों को बार-बार याद करें और उन कटे हुए सिरों को दिखा- दिखाकर उसके शौर्य की गाथा हर किसी को सुनाएं। अब तो उसे पट्टीदार अधोवस्त्र में जड़ी कौड़ियों को चार लाइनों से ही संतोष कर लेना पड़ रहा था। कौड़ियों की तीन लाइनों वाला अधोवस्त्र तो दूसरे प्रतिष्ठित नागा भी पहन सकते थे पर शिरच्छेदक होने के नाते उसे कौड़ियों की चार लाइनों का अधिकार था। यही वजह थी कि इस उम्र में भी जबकि वह पचास पार कर चुका था जवान लड़कियाँ उसे हसरत भरी नजरों से देखती।"⁵⁷

यह नागाओं के सामाजिक रूढ़िवादी विचारधारा को दिखाती है। जहाँ शैतानों या राक्षसों जैसे तांडव करने वाले को सम्मान का पात्र माना जाता है। यह मानवता की कसौटी को पूरी तरह से नकारने वाली रीति- रिवाज है। नागा समाज में बहुत कुछ स्त्रियों के प्रति अस्थिरता और अनैतिक संबंध भी देखने को मिलती है। जहाँ पुरुष एक से अधिक लड़कियों के साथ काम संबंध रखने में मर्दागिनी मानता है और मोरंग में सोने वाले अन्य किशोरों से गर्व से इसकी चर्चा भी करते हैं। ऐसा नहीं है कि यह सारी चीजें छिपी रहती है। जिनका संबंध दूसरों

के बीवियों के साथ रहता है। वे कौड़ियों की चौथी लाइन अपने कपड़े में पहनते हैं। इस सोच को पशुता की श्रेणी में रखना कोई गलत नहीं होगा। ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही पुरुष माँ-बेटी दोनों के ही साथ भी काम-संबंध स्थापित करते हैं। यह स्त्रियों की पतन की राह है। जहाँ उन्हें वस्तु मात्रा ही समझा जाता है। यहाँ वासना के अलावा और कुछ नहीं है। बस शारीरिक संतोषी ही पर्याप्त समझना मानव मूल्यों का विनाश है। लेखक लिखते हैं-

केदीलिनो का ध्यान जब-जब अपने अधोवस्त्र की कौड़ियों की चौथी लाइन की तरफ जाता तो उसे चक्रीमा और केजेमा गाँवों के अंगामी नागा याद आ जाते । उनके रिवाज के मुताबिक कौड़ियों की चौथी लाइन का मतलब होता कि उसे कपड़े को पहनने वाले का किसी दूसरे की बीवी से संबंध है या वह एक ही नाम की दो लड़कियों को एक साथ अपने प्यार में भरमाए है। इसका यह भी मतलब लगाया जाता कि वह दो बहनों या माँ-बेटी को एक साथ अपने चक्कर में फँसाए है। चक्रीमा और केजेमा गाँवों के लोग ऐसे व्यक्ति को ईर्ष्या से भरकर देखते। वह खुद गर्व के साथ दूसरों की बहू-बेटियों से अपने काम-संबंधों की चर्चा करता । रात में मोरंग में जाता तो वहाँ सोने वाले गाँव के किशोर और युवा उसे घेर कर बैठ जाते और पूछते- जब उस लड़की को पता चला कि तुम उसकी माँ के साथ भी सोते हो तो उसने दाव से तुम्हारा सिर नहीं काट लिया ?"⁵⁸

ऐसे विचार किसी भी समाज में पनपना गलत है। पर नागा के आदिवासी समाज में यह आम बात थी। स्त्रियों को जब केवल काम-वासना की वस्तु समझी जाती है। तो औरत भी मृतक के समान ही हो जाती है। प्रेम की देवी कहलाने वाली स्त्री प्रेम का मूल तक नहीं समझ पाती है। ऐसा भी देखा गया है कि युवतियों के भी कई पुरुषों के साथ प्रेम -संबंध रहते हैं। ऐसी कोई युवती नहीं जिसका कोई गुप्त प्रेमी न हो। जाहिर सी बात जब पुरुष वर्ग स्त्रियों को प्रेम एक ही चीज़ के लिए करते हो, ऐसे में स्त्रियाँ भी उसी राह में जायेगी। उन्हें भी पता रहता है कि उनका प्रेमी रिश्ते में वफादार नहीं है। तो वह भी प्रेम की तलाश में हर दरवाजा

खटखटायेंगी किंतु सच्चा प्रेम मिल पाना मुमकिन नहीं है। लेखक लिखते हैं- “ वह जानता था कि उसके अपने गाँव में भी शायद ही ऐसी कोई कुआरी लड़की हो जिसका अपना कोई गुप्त प्रेमी न हो। खुद उसके जवानी में अनेक लड़कियों से प्रेम संबंध थे।”⁵⁹

शादीशुदा मर्द भी किसी ओर की बीवी पर निगाह रखता है। और इस चाह में रहता है कि कब उसे मौका मिले और वह उस स्त्री के साथ संबंध स्थापित कर सके। और यह भी उतना भी नहीं समझा जाता था। बस उसे उस स्त्री से मंजूरी मिल जाये। और स्त्री भी पुरुषों की उस चाल में फँस भी जाती है। क्योंकि उन्हें अपने पति से सच्चा प्रेम कभी मिल ही नहीं पाती है। इसलिए मन के किसी कोने में वह खालीपन रहता ही है, जिसे भरने के लिए स्त्रियाँ भी अनैतिक संबंध बना ही लेती है। यह जड़ संबंध है, जो समाज को शिकंजे से बांध देती है।

फिर वह दिन भी आया जब उसका यह सपना भी पूरा हुआ। वह देर शाम को खेत से लौट रहा था। लंबे बालों वाली लड़की भी तभी गांव के बाहर कुछ दूरी पर स्थित झरने से पानी भरकर लौट रही थी। उसकी पीठ पर बेंतों की टोकरी थी जिसमें पानी से भरी तुंबी रखी थी। घने पेड़ों से ढीठ अंधियारे में वह उसे तभी देख पाया जब वह तेजी से चलता हुआ उस से टकराते टकराते बचा। फिर वह उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया था। लड़की भय से कांप उठी। उसे लगा कोई शत्रु गाँव का आदमी है। वह निश्चय ही उसका सिर काटने के लिए घात में छिपा बैठा होगा। वह चीखने वाली ही थी कि उसने भरसक मधुर आवाज में कहा, “मैं केदीलिनो हूँ निनो।”

जवान लड़कियों को प्यार से पुकारने के लिए आम संबोधन, 'निनो'। यह प्यार भरा संबोधन सुनकर उसकी जान में जान आई। जब से उसकी शादी हुई थी किसी ने भी तो उसे निनो कहकर नहीं पुकारा था। शादी से पहले माँ-बाप या बड़े भाई ही उसे निनो कहते थे। इस एक शब्द ने उसपर कुछ ऐसा जादू किया कि सामने खड़ा सजीला केदीलिनो उसे अंतरंग लगने

लगा था। फिर भी वह चुप थी। केदीलितों ने कहा, “तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। तुम्हारे बाल बड़े प्यारे हैं।”⁶⁰

उस युवती के बातों से यह भी साफ होता है कि उसके पति ने उसकी भावनाओं की कभी परवाह नहीं की है। जैसे अपनापन उसे केदीलिनो से मिला। वह कुछ क्षण के ही मुलाकात में दोनों को बहुत करीब ला दिया। और नीनो उस के प्रेम में पड़ गई। जबकि यह सामाजिक रूप से देखा जाए तो पूर्ण रूप से अनैतिक है। परंतु वहाँ जैसी सामाजिक परिवेश में वे थे। यह आम बात हो गई है।

“इस पर वह हल्के से हँस पड़ी थी। कई दिनों से उसने सिर धोया तक नहीं था। बाल उलझे और मैले थे। हवा से उड़कर नाक के पास आते तो उसे खुद ही अच्छा नहीं लगता। इसलिए वह अक्सर जूड़े में बांधे रखती थी अनसंवारे बालों को। बस जिस दिन सिर धोती उस दिन अवश्य ही बालों को खुला रखती। तब उसे खुद अपने बाल अच्छे लगते। मगर एक बार भी तो ऐसा नहीं हुआ कि उसके पति ने उसके बालों की तारीफ की हो। पर जब केदीलिनो जैसे जवान ने जूड़े में बंधे गंदे बालों को देखकर भी कहा कि तुम्हारे बाल बड़े प्यारे हैं तो उसके दिल-दिमाग पर एक नशा-सा छा गया था।

इसके बाद वे दोनों कितनी ही देर तक एक साथ रहे। रास्ता छोड़कर पेड़ों की ओट में चले गए जैसे कोई पूर्व निश्चित कार्यक्रम हो।

फिर कितनी ही देर बाद जब वह अपना शाल संभालती हुई उससे अलग हुई तो घबड़ाहट के साथ बोली, “निउ, अरे तुमने कितनी देर कर दी। अभी तो मुझे जाकर रात का खाना बनाना है। आज मेरे यहाँ कुत्ते का गोشت बन रहा है।”

'निउ' इस संबोधन से केदीलिनो को भी कुछ वैसा ही लगा जैसा कि लड़की को 'निनो' संबोधन से लगा था। उसने प्यार से भरकर उसे बाहों में भर लिया और फिर उसके होंठों को इतनी निर्ममता से चूमा कि उनमें लहू उमड़ आया। फिर भी उसे अच्छी लगी थी यह निर्ममता। उसने अलग होकर पेड़ के सहारे टिकी टोकरी को माथे पर पट्टी साधकर पीठ पर रखते हुए कहा, "कल फिर मिलना सूरज डूबने के बाद । मैं बाल धोकरे आऊँगी ।"⁶¹

नागा समाज में जवान युवक -युवतियाँ मोरंग में सोते हैं। यह एक प्रकार से युवक-युक्तियों को मौका देते थे कि वे आपस में मेल-जोल बढ़ा सकें। ताकि विवाह के लिए लड़के का चयन किया जा सकें। हालांकि इस तरह के मोरंग में कुछ चीजों का ध्यान रखना होता है। जैसे कि विवाह से पहले शारीरिक संबंध स्थापित न करना, दुश्मन गाँव के लड़कों से संबंध न जोड़ना इत्यादि, और इस चीज़ का ध्यान रखने के लिए गाँव के कुछ युवक फेहरादारी भी करते हैं। केदीलिनो के बेटा केलेनु भी उसी मोरंग में सोती थी। क्योंकि वह जवान हो रही थी और विवाह के लायक भी हो रही थी।

"पिछले दो सालों से वह लड़कियों के मोरंग में ही सोती थी जहाँ गाँव की और भी अनेक कंआरी लड़कियाँ सोती थी। लड़कों का मोरंग गाँव के प्रवेश द्वार के पास था जहाँ कुआरे लड़के सोते थे। गाँव की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था। पर लड़कियों का मोरंग प्रवेश द्वार से काफी हट कर था। वे रात में अपने मोरंग में लड़कों का स्वागत कर सकती थी। बस यह ध्यान रखना जरूरी था कि अपने ही कबीले के लड़के से जो विवाह संबंध की दृष्टि से निषिद्ध श्रेणी में आता था इतना मेलजोल नहीं बढ़ाएं जिससे सैक्स संबंधों को मौका मिले। दूसरे लड़कों से अंतरंग होने में भी उन्हें यह सावधानी बरतनी पड़ती थी कि शादी पहले ही कुछ ऊँच-नीच न हो जाए। इस बारे में गाँव का अनुशासन इतना कठोर था कि सहसा कोई लड़की उच्छृंखल नहीं हो पाती थी।"⁶²

नागा समाज में लड़कियों का विवाह जल्दी हो जाना अच्छा समझा जाता है। थोड़ी जवान होते ही माता-पिता की चिंता बढ़ जाती है। यह उस समय की बात है, जब अंग्रेज नहीं आये थे और शिक्षा का अक्षर ज्ञान के बारे में उन्हें कोई खबर तक नहीं थी। केलेनु की विवाह की चिंता भी केदीलिनो को होने लगी थी। जैसे बेटी थोड़ी सी बड़ी होती ही पराया घर भेज दिया जाए। असल में उन्हें जन्म से ही दूसरे घर भेजने का बात सोच ली जाती थी। शायद यही कारण है कि केदीलिनों ने अपनी बेटी का केलेनु नाम रखा ताकि वह जल्दी लड़का चुनकर चली जाए। बेटी कोई नहीं जिसे भेजने की तैयारी में नाम तक उसी हिसाब से रखा जाए।

"केलेनु ने मुस्कराकर पिता से विदा ली। उसके जाने पर पिता के साथ के लोगों से कहा, "अब मुझे केलेनु के व्याह की फिक्र होने लगी हैं। मगर इसने आज तक यह बताया ही नहीं कि यह किसे पसंद करती हैं।"

यह कहकर वह सचमुच ही चिंतित हो उठा था। फिर क्षणिक विराम के बाद गहरी सांस लेकर कुछ ऐसे बोला जैसे दूसरों को सुनाने के बजाए खुद को याद दिला रहा हो— केलेनु नाम रखा था यह सोचकर कि यह जल्दी ही अपना प्रेमी चुनकर शादी कर लेगी। नाम पक्का करने से पहले मैंने सपना देखकर सगुन भी विचारा था। तब मैंने सपने में न तो टूटा हुआ भाला देखा था, न फटा कपड़ा और न किसी जानवर का मारा जाना। बस मैंने मान लिया था कि देवता को केलेनु नाम मंजूर हैं। यही नाम मैंने उसके जनमते ही सोचा था।"⁶³

नागा समाज में पुरुषों की तब आकर्षक माना जाता है। जब वह पशुओं को मारे, अच्छा योद्धा हो, शारीरिक रूप से बलवान हो। फिर चाहे वह पच्चासों स्त्रियों के साथ प्रेम संबंध या शारीरिक संबंध भी क्यों न रखें। लड़कियाँ उसके लिए पागल रहती हैं। ऐसा ही केलेनु का भी था। वह जिस लड़के से प्रेम करती थी उसमें यह सारी खूबियाँ थी। जिसके कारण केलेनु को इस बात पर भी आपत्ति नहीं रही कि उसका संबंध किसी लड़की से भी है। जबकि पड़ोसी गाँव का

लड़का था। एक प्रकार से दुश्मनी थी उनके बीच। फिर भी वह उसके प्रेम में फँस गई । दरअसल समाज की भी गलती है। वह लड़कियों की शादी जल्दी करवाना चाहते हैं, साथ ही लड़के चयन की जिम्मेदारी भी दे दी जाती है। ऐसे में कम उम्र और नासमझी में गलत लड़के चयन कर लेती है। जो नागा समाज की स्त्रियों के प्रति बहुत बड़ी कमज़ोरी के रूप में देखा जा सकता है। केलेनु पड़ोसी गाँव के विसाले से प्यार करती थी। केदीलिनो को इस बात की गंध तक भी नहीं लग पाई थी। असल में केलेनु के भाई निकेतुजो की विसाले से अनबन थी। अनबन का कारण विसाले के गाँव की ही एक लड़की थी जिसे वे दोनों ही पसंद करते थे। यह जानकर भी कि विसाले एक और लड़की के भी चक्कर में है, केलेनु के अनुराग में कोई कमी नहीं आई थी। विसाले ने अकेले एक चीता मारा था। वह भारी से भारी पत्थर उठा सकता था। जितनी दूर तक वह निशाने पर अपना भाला मार सकता था इने-गिने लोग ही वैसा कर सकते थे । वजनी पत्थर फेंकने के खेल में भी आसपास के गाँवों में उसका कोई सानी न था । मांसपेशियों से भरा उसका बदन अपने आप में एक आकर्षण था। इतने आकर्षणों को एक जवान लड़के में पाकर कौन नागा लड़की मोहित न होती।"⁶⁴

नागा समाज में लड़का चुनने के छूट के कारण बहुत सी लड़कियाँ एक से अधिक पुरुषों से प्रेम संबंध कर लेती है। इसका कारण यह नहीं है कि लड़कियों को इसमें मज़ा आता है। इसकी पीछे की वजह है खुद उनका समाज जब स्वयं इन सभी रिश्तों में जुड़ती है तो शारीरिक संबंध होना स्वाभाविक सा होता है। प्रेमी जोड़े एक -दूसरे से संयम खो बैठते हैं। ऐसे में बहुत सी लड़कियाँ गर्भवती भी हो जाती है। लड़का अगर अच्छा निकला तो लड़की की लाज बचाने के लिए विवाह कर लेता है। किंतु सभी लड़के ऐसे नहीं होते हैं। कुछ तो लड़की का जी भर कर इस्तेमाल करते हैं, और जब कोई गर्भवती हो जाए तो विवाह करने से इंकार कर देता है। लड़की उसका कुछ कर भी नहीं सकती है। सारा दोष लड़की के ऊपर आ जाती है। क्योंकि विवाह से पहले शारीरिक संबंध गलत माना जाता है। परंतु जब इतनी छूट दी जाती है, तो

जवान युवक- युवतियों का ऐसा कदम उठाना साधारण घटना बन जाती है। लड़कियों को इसकी भरपाई करनी पड़ती है। बच्चा जन्मे तक वह गाँव नहीं आ सकती है और जब आ भी जाए तो बच्चा साथ लाने की अनुमति नहीं रहती है। "यह कहने वाली लड़की एक लड़के के झूठे प्यार के चक्कर में धोखा खा चुकी थी। उस लड़के की वजह से शादी से पहले ही उसे हमल रह गया था। जब उसने लड़के से शादी के लिए कहा तो उसने फौरन ना कर दिया। इस पर वह ऐसी घबड़ाई कि कुछ दिनों के लिए गाँव से गायब हो गई थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह कैसे घर-गाँव वालों को अपनी सफाई देगी। उसकी किस्मत अच्छी थी कि जब वह जंगल में भटक रही थी तो दीखू पार की एक आओ बुढ़िया से मुलाकात हो गई थी। बुढ़िया हमल गिराना जानती थी। उसने उसकी विपदा सुन कर कहा था कि धबड़ाने की कोई बात नहीं। उसके गाँव में आसानी से हमल गिरा दिया जाता है। वह भी जानती है। यह कहकर उसने अपनी टोकरी से एक पत्थर निकाला जिसका एक सिरा पतला पर गोल और चिकना था। उसने उस लड़की को पेड़ के सहारे खड़ा किया और दोनों हाथों से उसका पेट टटोला। इसके बाद उसने एक खास जगह अपने अंगूठे से दबाकर कुछ महसूस किया और फिर इससे पहले कि लड़की समझे कि वह क्या करने जा रही है उसने पेट में अंगूठे वाली जगह पर पत्थर का पतला वाला हिस्सा पूरी ताकत से मारा लड़की, दर्द से चीख उठी और साथ ही उसकी टांगों के बीच से खून बहने लगा। बुढ़िया एक हाथ से लड़की को पेड़ के सहारे रोके रही और दूसरे हाथ से उसका पेट कसकर सूतती गई। उसने फिर लड़की को जमीन पर लिटाकर आराम करने को कहा।

अंगामी नागा इस प्रक्रिया को जानते नहीं थे। वह आओ औरत नहीं मिली होती तो लड़की बच्चा जनने के बाद ही गाँव में घुस पाती। पर तब भी वह बच्चे को साथ नहीं ला सकती थी। उसे या तो किसी को दे देना होता या मार डालना पड़ता।"⁶⁵

यह स्त्री के मन पर लगे बहुत बड़ा घाव है। जिसे चाहकर भी वह मिटा नहीं सकती है। जब गलती दोनों ने की है तो सजा दोनों को मिलना चाहिए। परंतु ऐसा होता नहीं है। दोनों के लिए हमेशा अलग नियम रहते हैं। जिसमें स्त्रियाँ उत्पीड़न का शिकार होती रहती हैं।

“नागा पारंपरिक संस्कृति महिलाओं को उस संस्था का सदस्य बनने की अनुमति नहीं देती है, जो समुदाय के सामाजिक, राजनीतिक और न्यायिक मामलों के लिए जिम्मेदार है।”⁶⁶

Naga traditional culture does not permit women to be a member of the institutions which are responsible for social, political and judicial matters of the community.

देखा जाए तो महिलाओं को नागा समाज में बहुत से कामों में रोकती है। हॉलाकी नागा समाज स्वतंत्रा दिखाता है महिलाओं के लिए परंतु जमीनी हकीकत कुछ और ही बयान करती है।

(ड) असमिया उपन्यास और स्त्री:

किसी भी समाज की सामाजिक समयकाल और वहाँ की परिवेश मानव संस्कृति को दर्शाती है। समय-समय पर सामाजिक परिवर्तन आता रहता है। और यही रूप समाज अपनी पहचान बनाती है असम पूर्वोत्तर का एक ऐसा क्षेत्र है। जहाँ की अनेक रूपता ही उसकी पहचान है।

"यह मानने का हर कारण है कि भारत में शुरुआत विकास कमोबेश उसी तरह हुआ जैसा कि समकालीन असम में हुआ था। दक्षिणी भारत के कुछ पहाड़ों में स्थित गुफाएँ प्रागैतिहासिक पुरापाषाण मानव द्वारा बसाई गई थी।"⁷⁰

असम का अमूमन इतिहास या सामाजिक संरचना अन्य प्रांतों से मेल खाती है। यहाँ की सभ्यता बहुत कुछ पौराणिक कथाओं से संबंध रखती नजर आती है।

There is every reason to believe that the early developments in India took more or less the same course as in contemporary Assam. The caves located in some mountains of southern India were inhabited by prehistoric paleolithic man.

" इस तरह के विकास इस बात को पुख्ता करते हैं कि मेघालय के चेरापूंजी में स्थित गुफाओं की दीवारों और छतों में गुफा कला के डिजाइन इन गुफाओं में पैलियोलिथिक पुरुषों के संभोग के संकेत हैं।"⁶⁸

Each development convinces that the designs of cave arts noticed in the walls and roofs of the caves located in Cherrapunji of Meghalaya are indicative of intercourse of paleolithic men in these caves".

ऐसे बहुत से सबूत मिल जाते हैं कि असम में एक समय ज्यादातर लोगों की जीवन यापन का जरिया पशुओं का शिकार किया करते थे। और गुफाओं में रहा करते थे।

"इन जनजातियों के पास कोई सामाजिक गतिविधि नहीं थी और जंगली जानवरों के साथ कोई भेद नहीं था। वे केवल बर्बर शिकारी थे। गोवालपारा जिले, असम के अंध महापहाड़ में

हाल ही में खोजी गई पत्थर की गुफा को आर्कियोलॉजिस्ट द्वारा प्रागैतिहासिक घुमंतू जनजातियों की शरणस्थली के रूप में पहचाना गया है।"⁶⁹

These tribes did not have any social activity and had no distinction with wild animals. They Were merely savage hunters. The Stone - Cave recently discovered in Aadha Mahapahar of Goalpara district Assam has been identified by the Arcreologists to be a of refuge of prehistoric nomadic tribes.

किन्तु ऐसी जीवन शैली अधिक समय के लिए नहीं चल सकती है। एक अच्छी सामाजिक व्यवस्था करने के लिए जंगलीपन से बाहर निकलना भी अत्यंत आवश्यक है। और वही परिवर्तन एंव विचारधारा असमीया समाज में भी बदलते देखने को मिलाती हैं।

"एक उचित समाज का गठन करने के लिए मानव का एक सेट कुछ उत्पादक संबंधों में होना चाहिए, जिसमें शामिल है-अधिशेष की रचना और हस्तांतरण।"⁷⁰

To Constitute a proper Society, a set of human beings must be in some productive relationship which involves the creation and transfer of surplus.

"The savage hunters gradually passed on to the Neolithic culture which was the earliest prehistoric culture in Ancient Assam as it is evident from the widely distributed Neolithic cells all over Assam. The Neolithic men comprised the Austroloids who introduced the shouldered Neolithic hoe,terraced rice cultivation, rearing of animals, joint family system,

ophiolatory and matiarchy, megalithic burials and divisions of people into different segments on occupational grounds. Besides, they acquired the knowledge of iron melting, rearing of mooga and eri, manufacturer of garments from grasses thanever, at a latter stage, these people were displaced and sub-merged in most places for the fresh of Mongoloid peoples."

"बर्बर शिकारी धीरे-धीरे नवपाषाण संस्कृति पर चले गए जो प्राचीन असम में सबसे प्रारंभिक प्रागैतिहासिक संस्कृति थी जैसा कि पूरे असम में व्यापक रूप से विपरित नवपाषाण काल से स्पष्ट है। नवपाषाण पुरुषों में ऑस्ट्रोलॉइड्स शामिल थे, जिन्होंने कंधों वाले नियोलिथिक हो, सीढ़ीदार चावल के खेती, जानवरों की परवरिश, संयुक्त परिवार प्रणाली, नेत्रयोग और मातृसत्तात्मकता, महापाषाण दफ़न और पेशी के विभाजन को अलग-अलग क्षेत्रों में पेश किया। इसके अलावा उन्होंने लोहे को पिघलने का ज्ञान हासिल किया। मोगा और एरी का पालन, घास से कपड़ों का निर्माण। हालांकि बाद के चरण में इन लोगों को विस्थापित और मंगोलियाई लोगों की ताजा लहर के लिए ज्यादातर जगहों पर उप-विलय कर दिया गया था।"⁷¹

समय के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी धीरे-धीरे कर आने शुरू हो गए। शिकार का कार्य छोड़ खेती- बारी के काम धंधा देखने लगे, कपड़े बुनना इत्यादि। असमिया सामाज के ही विकासशील काल के दौरान, एक समय ऐसा भी आया जब आर्यों की सशक्ता देखने को मिलता

है इसका परिणाम जातिवाद का जहरीले कांटे का रूपण आरंभ हो गया। समाज चार हिस्सों में बट गया ।

" जैसा कि समाज में नियोलिथिक युग से धातु तक पार कर लिया है। आर्य, गैर-आर्यों और पूर्व आर्यों के साथ आर्य संपर्क नैन केवल उत्तरार्द्ध के सामाजिक आर्थिक विकास में योगदान दिया, बल्कि एक धार्मिक सुपर- स्ट्रक्चर बनाने में भी मदद की। आधुनिक हिन्दू जीवन शैली इसलिए आर्यन और अतिरिक्त का एक आत्मसात है ।आर्य तत्व । आर्यों ने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार पहले के सामाजिक विभाजों को सुव्यवस्थित किया और समाज को पेशेवर आधार पर चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया, जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। समय के साथ, यह सामाजिक विभाजन जाति का पर्याय बन गया था।"⁷²

और यह विभाजन के तहत लोगों ने अपनी-अपनी समूह बना ली, और उसी के हिसाब से व्यवसाय होनी लगी।

"इसके बाद, बड़ी संख्या में नई जातियाँ, उप-जातियाँ, सामाजिक समूह और उप-समूह जातीय धक्कामुक्की, आर्थिक गतिविधियाँ धार्मिक और परिस्थितिक प्रभावों, नए व्यवसायों को अपनाने और इसी तरह के परिणाम के रूप में उभरे।"⁷³

Subsequently, a large number of new castes. Social groups and sub - groups had emerged as a result of ethnic fusions, economic pursuits, religious and ecological impact, adoption of new professions and similar other factors.

असमिया समाज को देखा जाये तो प्राचीन काल से यहाँ हिन्दुत्व का राज रहा है। हिन्दू धर्म असमिया समाज की जड़ों तक समाई हुई है।

"यह प्रारंभिक साहित्य के स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म प्राचीन असम में आज भी प्रमुख धर्म था। हालांकि शैव शाक्त वैष्णव और कुछ अन्य छोटे-छोटे पंथों ने हिंदू धर्म को समेकित किया है, किंवदंती और इतिहास दोनों इस तथ्य की ओर इशारा करते हैं कि शैव धर्म गैर-आर्य मान्यताओं और प्रथाओं के स्वाद के साथ काली असम में हिन्दू धर्म का सबको लोकप्रिय रूप था।"⁷⁴

It is ancient from the early literature that Hinduism was the dominant Religion in Ancient Assam as today. Although shaivism, sakhtism, väishnavism and some other minor cults consolidated Hinduism, both legend and history point to the fact that shaivism was the most popular form of Hindu religion in early Assam with flavour of Non -Aryan beliefs and practices.

असम में भगवान विष्णु को अवतारी मानते हैं और उनकी पूजा अर्चना का स्वरूप कुछ ही दिखाई पड़ते हैं। आदि शक्ति या स्त्री के देवी रूपों का भी धार्मिक मान्यताएँ हैं इसी के साथ ही तंत्र मंत्र और जादू-टोना का भी प्रचलन रूप देखने को मिलती हैं। यह असमिया समाज की धार्मिक आस्था जो अंधविश्वास का रूप धारण कर चुकी थीं।

"तांत्रिकता के तत्व जैसे जादुई प्रथाओं का उपयोग, संस्कारों का विद्रोह, शराब का उपयोग, मंत्रों की प्रभावकारिता में विश्वास, लिंग पूजा आदि। गैर आर्यों संपन्नताएँ हैं।"⁷⁵

The elements of Tantrikism such as use of magical practices, revolting rites, use of wine, belief in efficiency of mantras, sex worship etc. have non-Arya affinities.

यह सामाजिक भटकाव और असंगति का प्रभाव था। जहाँ अनिष्ट कार्य ज्यादा होते थे। यह समय असमिया समाज के लिए उतना सही नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि धर्म के आड़ पर गलत चीजें किए जा रही थी।

असमिया समाज में 'सूर्य' और विष्णु के मूर्तियाँ अधिक मात्र में देखने को मिलती हैं। जिससे यह तो साफ हो जाता है कि असम में वैष्णव धर्म का बोल-बाला था।

"असम में 'सूर्य' या 'विष्णु' की प्रतिमाओं के 'विष्णु' मंदिरों और पुरातात्विक अवशेषों के व्यापक अवशेष पिछले युगों में कुछ समय में असम में 'वैष्णववाद' की पूजा और व्यापकता के सूचक हैं। 'कलिकापुराण' में विभिन्न अवतारों का वर्णन है।"⁷⁶

The extensive remains of 'vishnu' temples and archaeological finds of 'surya' or 'vishnu' images in Assam are indicative of 'vishnu' worship and prevalence of 'vaishnavism' in Assam sometime in the past ages. 'Kalikapurna' describes different incarnation of 'vishnu'.

"वैष्णववाद का रूप 'असम में प्रचलित होने से पहले नव-वैष्णववाद का आगमन 'वासुदेववाद था।"77

" हालांकि हिंदू धर्म असम के दूरस्थ धर्म का प्रमुख धर्म था। अतीत बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म था। अतीत, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म और ईसाई भी मध्ययुगीन और असम में छोटे पैमाने पर प्रचलित थे। हालांकि प्राचीन और मध्यकालीन असम के धार्मिक इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता था मैदानी इलाके के विभिन्न गैर-आर्य जनजातियों के रूपांतरण की प्रक्रिया थी।"78 असम समाज की अगर हम जाँच पड़ताल करें तो हिंदुत्व की धारा कुछ ज्यादा दिखाई देती है। जिसमें सबसे अधिक है 'वैष्णव' धर्म।

असम में विदेशियों के आने से अशांति किसी-न-किसी रूप में देखने को मिलती ही रहती है। जो असम प्रांत को अलगाववाद की ओर ले जा रही थी। जब अपनी ही जमीन में मूल निवासी दर-दर भटकता रहे और बाहरी लोग आकर उनकी ज़मीन, नौकरी, अधिकार छीनने लगे तो अशांति बढ़ना स्वाभाविक ही है। इसी धरातल पर असम में राजनीतिक गतिविधियों की हलचल पूरी तरह से होने लगी।' जय आई असम'के लेखक नवारुण वर्मा जी जो असमिया समाज के तो नहीं हैं। परंतु इस मतभेद को बहुत करीब से समझा है।

"उपन्यास में ऐसे भी पात्र हैं जो एक भी विदेशी अवैध रूप से जब तक असम की धरती पर रहेगा तब तक हम शांत नहीं होंगे का गगन-भेदी शपथ-वाक्य बुलंद करते हैं। दूसरी और ऐसे भी पात्र हैं जिनका विश्वास है कि:

"उग्र जातीयतावादी भावना को भड़का कर असम के अस्तित्व की रक्षा का सपना देखने वाले गलत रास्ते पर हैं।' वे कहते हैं कि 'जन-जातीय, गैर जनजातीय, चाय-मजदूर, हिन्दू,

मुसलमान, ईसाई बंगाली, हिन्दुस्तानी, सिख जो भी असम में हैं असमिया हैं, उन्हें असमिया संस्कृति का अंग मानकर उन्हें इस संस्कृति को अपनाने की ओर प्रेरित करना होगा।”⁷⁹

लेखक ने इस तरह हो रहे विद्रोह से असम प्रांत की भयावह तस्वीर सामने लाए हैं। जिसे पढ़ स्वयं पाठक भी सोचने पर महसूस हो जाते हैं कि यह सब चीजें अब बंद हो जानी चाहिए। खैर यह तो पुरानी बातें हैं। आज के समय में भी असमिया समाज में अपनी ही ज़मीन में अजनबी बने हुए हैं। असम के अधिकतर क्षेत्रों में गैर असमिया समाज के लोगों ने ही अपना अधिपत्य स्थापित किया हुआ है।

“लेखक ने असम के तीन शरणार्थी शिविरों के भी यथा-तथ्य रूप चित्रित किये हैं। एक ऐसा भी शरणार्थी शिविर है जहाँ स्वयं असमवासी शरणार्थी बन गये हैं और लोग भूख, ठंडे और भयंकर पीड़ा से बिलबिला रहे हैं। दूसरा चित्र है ऐसे शरणार्थी शिविर का जहाँ विदेशी कहलाने वाले बंगला देशियों की पीड़ा देखने को मिलती है। बंगलादेशी मास्टर अपनी पीड़ा कहता है—‘तीस साल से इसी गाँव में मास्टरी की और आज हम बंगला देशी हैं, विदेशी हैं।...कुछ लोग बीस साल पहले आये, जंगलों में, दल-दलों में, कछारों में बसने की फिराक में कितने ही लोग दम तोड़कर मर खप गये। अब हम कहाँ जायें ? हमें गोली मार दो...’। और एक शिविर है विदेशी कहे जाने वाले मुसलमानों का, जहाँ ‘कुछ के शरीर पर चोटों की निशानियाँ थीं, कुछ के शरीर आग से झुलस गये थे।”⁸⁰

‘जय आइ असम’ के माध्यम से लेखक ने स्त्रियों को स्वतंत्र और सशक्त रूप प्रस्तुत किया है समाज की यह मान्यता है कि लड़कियाँ घर के भीतर काम काज करती ही अच्छी लगती है। इस विचार को पूरी तरह से बदलती नज़र आती है। यही स्त्रियों के क्रांतिकारी रूप हमारे

सामने प्रस्तुत करती है, जो अपने देश के हित के लिए हर परेशानियों का खुलकर सामना एवं लड़ती है।

“जन-समूह के उस विशाल सागर में, पुरुषों से अधिक महिलाएँ, युवतियाँ और बच्चे थे। ऊपर आकाश में सूरज अंगारे बरसा रहा था, नीचे धरती तप रही थी। दूसरे साल तो ऐसे समय में यहाँ बादलों की चहल-पहल शुरू हो जाती थी, मगर इस बार वे भी शायद सत्याग्रही बनकर कहीं अपनी गिरफ्तारी के लिए निकल गये हैं। भीड़ और तपन के मारे सबके चेहरे सुर्ख हो उठे थे, पसीने की धारा बह रही थी, महिलाओं और युवतियों के भीगे कपड़े अंगों पर चिपक गये थे, पर इन सब पर नजर डालने का अवकाश भला किसे था। किसी को थकावट कहाँ थी। हजारों कठों से निकले वज्र-घोष से नारे पूरे वातावरण को झकझोर रहे थे।”⁸¹

इस उपन्यास की नायिका नमिता सत्याग्रही और ओजस्वी महिला के रूप में हमारे सामने आती है। जो लोगों का नेतृत्व करने की तो क्षमता रखती ही है। साथ ही आगे खड़े रहकर गोली खाने से भी नहीं डरती है। लेखक लिखते हैं-

“और नमिता? नमिता के चित्त में तो अपूर्व स्फूर्ति हिलोरें ले रही थी। सूरज उगने के पहले ही, मुँह में दो दाने झटपट डालकर वह घर से निकल पड़ी थी, अपने साथ लड़कियों और महिलाओं को जल्दी-जल्दी इकट्ठा कर जब वह सड़क पर निकली तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। उसने सोचा था, सत्याग्रही-जत्थों में उसका ही जत्था सबसे आगे रहेगा, मगर सड़क पर तो जत्थे के जत्थे उमड़ पड़े थे। सिर्फ डेढ़ मील की दूरी। मगर इस डेढ़ मील को पार करने में पूरा दिन निकल गया था; उपायुक्त कार्यालय अभी और आधा मील रह गया था। पसीने-पसीने हुई नमिता का हृदय-आशंकित था, इसलिए नहीं, कि पास ही गश्त लगाते बन्दूक-लाठी धारी

सिपाही कब टूट पड़ें, कब उस पर भी गोली-लाठी चल जाये, बल्कि इस कारण आशंकित थी कि शायद चार बजे तक भी वह मंजिल न पा सकेगी। और अगर यही रफ्तार रही तो आज के सामूहिक सत्याग्रह में अपने को गिरफ्तार करवाने की उसकी कामना ही अधूरी रह जायेगी। मगर वह कहे तो किससे ? आगे बढ़ जाये तो कैसे ? यहाँ तो आज सबके मन में उसके अन्तर की कामना ही हिलोरे ले रही है। उसके दिमाग में लगातार यही भावना जग रही थी- स्वतंत्रता के बाद असम की अस्तित्व रक्षा की यह दूसरी लड़ाई है।"⁸²

यह असम की अस्तित्व को बचाने की लड़ाई थी। अंग्रेजों से मुक्ति के बाद, देश-विभाजन में प्रांतों में मची खलबली का यह परिणाम था। जहाँ स्थानीय लोग अपने भीतर के देश की रक्षा, बाहरी घुसपैठियों से करना चाहते थे। सामाजिक क्रांति का यह ज्वालंत रूप था। लेखक लिखते हैं-

" परतंत्रता के उस बंधन से मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिए लाखों लोगों ने अपना बलिदान किया था। असम का चिर-विद्रोही मानस शुरू से ही बन्धन मुक्ति का दीवाना रहा।"⁸³

असम की स्त्री वीरांगना है। वह सिर्फ पति को लड़ाई करने जाते देख आँसू बहाना नहीं जानती है। बल्कि उस आँसू को आग बनाकर समाज में हो रहे बुराईयों का नाश करना भी जानती है। वे कमज़ोर महिला बनकर पति को रोकती नहीं बल्कि उसी पथ पर चलकर देश के लिए शहीद होना पसंद करती है। लेखक मूला गाभरू का जिक्र करते हैं। जो इतिहास में अपने देश की रक्षा के लिए अपनी कुर्बानी दी थी लेखक लिखते हैं-

"और वह मूला ? वह बेचैन थी, पति युद्ध में जा रहा है इस कारण नहीं, उसके सुखों का आधार छिना जा रहा है, इस कारण भी नहीं, वह बेचैन थी इस कारण कि युद्ध-यात्रा करने वाले आहोम-वीर की चिरन्तन अभिलाषा की पूर्ति में अपने को असमर्थ पा रही थी। वह अपने

को कोस रही थी, क्या इसी दारुण क्षण में उसे ऋतुमती होना चाहिये था। आज से तीन दिन उसे अशौच में रहना पड़ेगा वह किसी पवित्र वस्तु को स्पर्श नहीं कर सकेगी।"84

वे आगे लिखते हैं-

"उन दिनों युद्ध-यात्रा करने वाले आहोम-वीर की एकान्त अभिलाषा होती थी, पत्नी या माँ या बहन एक ही रात में रूई से सूत कात कर अपने हाथ एक अंगौछा बुनकर उसे बाँध दे, वह अंगौछा विजय-प्रतीक 'कवच' है, कवच से मंडित आहोम-वीर मृत्यु से नहीं डरता, मृत्यु उससे दूर रहती है।....लेकिन मूला को वाम-विधाता ने सौभाग्य से-वंचित कर दिया, पति तो आश्वासन देकर चला गया, मूला की छाती धड़कती रही, आँसुओं की लड़ी झाड़ती रही"85

मूला गाभरू पति की मृत्यु पर हाथ-पे-हाथ दरें रोने वाली औरत नहीं है। बल्कि हाथों में तलवार लिये दुश्मनों का खात्मा करने की जज़्बा रखती है। लेखन लिखते हैं- "नमिता सोच रही थी, वह मूला केवल आँसू ही बहाती नहीं रही, आँसू बहाने भर से देश का उद्धार नहीं होता। उसे जिस अमंगल की आशंका थी, वही हुआ, पति तो लौट नहीं आये, उसे निरंतर लगने लगा, रणक्षेत्र से पति की आत्मा उसे पुकार रही है, हाँ, वही उसे हाथ पकड़कर उबार सकती है, सारे देश को उबार सकती है। उसका दृढ़ संकल्प जाग उठा, कोमल हाथों में उसने 'हेंदां' उठा लिया, नारी सेना बनाकर-रण- चंडी सी संग्राम में कूद पड़ी। आत्मदान देकर उसने अपने पति की भटकती आत्मा को उबारा, जाति को भी महान संकट से उबार लिया। अन्ततः तुर्बक को भी इसी लोहित के तट पर मिट्टी में मिल जाना पड़ा।"86

ऐसी ही औरतें इतिहास बनाती भी है और बदलती भी है। 'देश भीतर देश' के आमुख में लेखक जी ने इस उपन्यास की पृष्ठभूमि बांधी है। असमिया समाज के लोगों की राष्ट्रीयता की भावना साथ ही अपनी ही भूमि में रहकर हाशिये का जीवन जीना। लोग के मन में हिंसा और नाराजगी साफ़ तौर पर देखने को मिलती है। नवयुवक शिक्षा की राह छोड़ आतंक की राह पकड़नी शुरू कर दी है। समाज में विद्रोह और सरकार की ओर से दबाव ने समाज के चारों ओर अशांति फैला दी है।

" देशों के भीतर धीरे-धीरे उग आने वाले देशों की स्थानीयतावादी अस्मिताएँ जब देश के राष्ट्रवादी व्यवहार से प्रतिसंवाद करती है तो पैदा होने वाले तनावों, दबावों के बीच मानवानुभव बेहद चिड़चिड़े, कटखने, तिरछे और अनेक बार कंट्रोल से बाहर हो जाते हैं। देश भीतर देश की कथा ऐसे ही असमिया समाज के बीच उगती है। और अपनी उत्कट तीव्रता में हर प्रसंग में बताती चलती है कि भारत के केन्द्र और उसके हाशियों के बीच, हाशियों में जीवित समाजों के बीच कितना टेढ़ा और नाराज, हिंसक अन्तःसंवाद चलता रहता है। जहाँ दिल मुश्किल से मिलते हों वहाँ मानवीय संवाद नहीं होता। बन्दूक, सन्देह और कानून से जो संवाद होते हैं उनसे दिल नहीं जुड़ते। स्थानीय अकेलापन बढ़ता है।"⁸⁷

असमिया समाज के लड़के हाथों में बंदूक पकड़े अपनी भूमि में जंगल-जंगल छुपने लगे। सरकार और सामान्य जनता में ऐसे मतभेद के कारण बहुत सी पत्नियाँ विधवा हो गई थी। कई में मेधावी लड़के पढ़ाई छोड़ अपनी हक की ज़मीन के लिए लड़ रहे थे। मिलकी उपन्यास की नायिका असमिया समाज की लड़की है। जिसका प्रेम संबंध विनय जो उसके ऑफिस में काम करता है। और उसे कंपनी के काम में असम भेजा गया था। बुलबुल मिलकी का चचेरा भाई जो कि उल्फा का मेंबर था। विनय के साथ बातचीत में असमिया समाज की समस्या के बारे में

उजागर किया है। असम के लोग अपनी भूमि को शिकंजे में फंसता हुआ मानते हैं। बुलबुल बताता है कि-

"मन बहुत उदास है। मेरे बचपन के दोस्त को सीआरपी के जवानों ने ऊपरी असम में लखीमपुर के जंगलों में मार गिराया है। वह उल्फा की बटालियन 28 का मेम्बर था। उसने असम को इंडिया के कब्जे से छुड़ाने के लिए बन्दूक उठा ली थी।"⁸⁸

बुलबुल की बातों से यह बात साफ़ होती है कि केंद्र की ओर से उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे। लेखक आगे लिखते हैं-

"ये तो बहुत बुरा हुआ।"- विनय ने बुलबुल के दुख में अपने को शामिल करते हुए सवाल किया- 'दिल्ली के साथ बातचीत से समस्या नहीं सुलट सकती है क्या?' 'बातचीत?' -बुलबुल भड़कते हुए बोला-'यदि ऐसा होता तो कब का सब ठीक हो जाता। इंडिया के पास तो असम के लोगों के लिए सिर्फ गोली है। बातचीत कर के ही तो इंडिया ने असम के सारे संसाधनों को लूट लिया है। हमें न तो नौकरी मिलती है और न ही हमारी चीज का हमें वाजिब दाम ही मिलता है...."⁸⁹

असमिया समाज के लोग अपनी जमीन में अधिकार को खोते हुए पाते हैं। और इस चीज़ की चिंगारी अभी तक समाप्त नहीं हो पा रही है। यह अंतहीन पीड़ा है। जिसके लिए भूमिपुत्र ने बहुत सी कुर्बानियाँ दी है। असम में बाहर के लोग आते हैं और उनकी हक का रोटी छीन ले जाते हैं-

"इंडिया से आने वाले खाली हाथ आते हैं और देखते-ही-देखते वो हमारी जमीन पर अपनी हवेलियाँ बना लेते हैं। यही नहीं यहाँ की लूट का माल अपने यहाँ हर साल भेज देते हैं। वे

असम से बाहर अपनी जन्मभूमि को देश बोलते हैं। इस धरती को वह लूटने की जगह मानते हैं बस।"90

घर के बेटे जंगल का रास्ता पकड़ रहे थे किंतु उसके साथ जुड़े कई जिंदगिया भी वनवास का जीवन जीते हैं। बुलबुल उस युवक के बारे में बताते हुए कहता है-

"अजय चेतिया।" -बुलबुल ने उसका नाम बताने के साथ ही बताया- 'वह बहुत होनहार था। पढ़ने में भी एक नम्बर का था। उसकी शादी होने वाली थी। अब उसकी प्रेमिका का क्या होगा? ऐसी ही तमाम लड़कियाँ हैं जो शादी के बिना विधवा हो गयी हैं असम में। उनके प्रेमी मुठभेड़ों में मार गिराए गये हैं। उनमें से बहुत सारी लड़कियों ने बन्दूक उठा ली है। ऐसी ही गति से मुठभेड़ों में असम के नौजवान मारे जाते रहे तो असम में युवाओं का अकाल पड़ जाएगा....91

यह बहुत दुखद स्थिति थी। एक के जाने से परिवार के लोगों के साथ भी आतंकवादी सा व्यवहार किया जाता है। उम्मेदराज और महिलाएँ होने की भी बातों को ध्यान नहीं देते हैं लेखक लिखते हैं-

"पंजाब कमांडो का असम के उग्रवाद प्रभावित इलाकों में बड़ा नाम था। उनकी ख्याति यह थी कि जब वह प्रभावित इलाकों में जाते हैं तो गाँव के गाँव खाली हो जाते हैं। घरों में बूढ़ी औरतों के अलावा कोई नहीं बचता है। और ये बूढ़ी औरतों से भी बदसलूकी करने से बाज नहीं आते हैं। उनके खिलाफ पूरे असम में गुस्सा है, लेकिन वे अपना आचरण बदलने के लिए राजी नहीं हैं। उनकी शिकायत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से भी की जा चुकी है। पंजाब कमांडो तलाशी में जुटे थे। औरतों बुजुर्गों से वे बदतमीजी भी कर रहे थे। बीच-बीच में पंजाबी में गालियाँ भी बक रहे थे।"92

ऐसी हालातों में स्त्रियों की अस्मिता भी खतरे में पड़ जाते हैं। उनके साथ बदतमीजी, छेड़-छाड़ की घटना सुरक्षाकर्मियों द्वारा आम बात हो गई थी। लेखक लिखते हैं-

"मिल्की के बूढ़े पिता और चाचा दरवाजा खोल कर बाहर आ गये। 'और कौन है अन्दर?' - दरवाजे पर लात मारने वाले कमांडो ने पूछा। 'मेरी बेटी है अन्दर।' -मिल्की के पिता ने डरते हुए जवाब दिया। 'बाहर निकलने के लिए वह अन्दर सज-सँवर रही है क्या?' यह कहते हुए एक कमांडो घर के अन्दर घुस गया। विनय ने यह दृश्य देखा तो वह घबरा गया। विनय को थोड़ी देर बाद वह कमांडो मिल्की को खींचता हुआ बाहर लाता दिखा। उसने घर के अन्दर मिल्की के स्तनों को दबाने की कोशिश भी की थी।"⁹³

भारत आजाद के बाद असम प्रांत में मची अशांति में सभी जले। खास तौर पर स्त्रियों की दर्द की सीमा ही नहीं थी। शरणार्थी हर प्रांत के लोग जो असम राज्य से किसी भी कारण जुड़े हो। असहनीय पीड़ा का अनुभव करना पड़ा। बच्चे अनाथ हो जाते हैं रहने का कोई ठिकाना नहीं रहता। दर-दर भटकते फिरते हैं। 'मुक्ति' डॉ महेंद्र नाथ दुबे द्वारा लिखी उपन्यास में इस तरह की घटना का साक्षात प्रमाण देखने को मिलती है।

"नहीं, यह मेरी बच्ची नहीं है, परंतु मैं इसे अपना दूध पिलाकर पाल ज़रूर रही हूँ। वैसे मैं एक नीची समझी जानेवाली जाति कहार की स्त्री हूँ। मुझे ऐसा करना नहीं चाहिए था, पर जन्मते ही यह बेचारी जिस महाविपत्ति में पड़ गई थी, उस स्थिति में इसे अपना स्तन पिलाकर जिलाने के अलावे मेरे पास दूसरा कोई चारा भी नहीं था।" - साँवरी ने कहा।"⁹⁴

मुक्ति की राह में स्त्रियों की तेजस्वी रूप को दर्शाया है। कियांमाइशी जैसी एक स्त्री 10-10 मर्दों से अकेले लड़ती है। यह महिलाओं की विद्रोह और आत्मनिर्भर को प्रदर्शित करती है। जिसका संबोधन स्वामी जी ने रोशनी कहकर दिया। लेखक लिखते हैं-

"अरे इस शेरनी को कौन नहीं जानता? और आप इसे मछगंधा कि क्या कह रहे थे। कियांमाइची कहते तो कभी का पहचान गया होता। कितने की ढोंगी बदमाश पुरुषों को मार-मारकर इसने उनकी अक्ल दुरुस्त कर दी है। कितनी ही स्त्रियों के जीवन को नई रोशनी दी है। यह तो देवी है, देवी, साक्षात् देवी दुर्गा। अगर इस स्त्री की कोई परेशानी थी तो आप इसी से कहते, यह तो पलक झपकते सारी समस्या दूर कर देती।"-पंडित जी ने कहा। "समस्या न इस स्त्री की है और न कियांमाइशी के ढंग से दूर करने लायक ही है। जैसा कि इस स्त्री साँवरी ने बतलाया है अगर स्थिति वैसी ही है तो समस्या स्वयं आपकी है और इसे आप ही दूर कर सकते हैं।"⁹⁵

अगर समस्या आपकी है तो उसको दूर करने की क्षमता भी आप में होनी चाहिए। दूसरों के आगे हाथ फैलाना कमज़ोरी की निशानी है और स्त्री शक्ति की निशानी है। और उस अस्तित्व को बचाने की जिम्मेदारी भी आपकी अपनी होनी चाहिए। लुटेरों से ही मदद की गुहार करना बेकार। स्वयं अपने पेरों पर खड़े रहना सीखें।

देवेंद्र सत्यार्थी जी ने अपने उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' में असम की सामाजिक परिस्थितियों के बारे में उजागर किया है। जहाँ विवाह के बारे में सीमित और स्कीर्ण मानसिकता के कारण लड़कियों के लिए उचित वर नहीं मिल पाता है। असम में समाज जाति के हिसाब से बाँटा हुआ है। लेखक लिखते हैं-

" दिसांगमुख में आधे तो मीरी रहते हैं, जो अपने मीरी लोगों में ही विवाह करते हैं। एक चौथाई हैं हम नेपाली लोग और शेष रह गए एक चौथाई अन्य असमिया लोग, जिनमें किसानों के अतिरिक्त चावरिया और मछुए भी हैं। अब यह तो पुरानी रीति ठहरी- नेपाली का विवाह नेपाली लड़की से ही होगा, असमिया का असमिया से; यहाँ तक कि मछुए और नावरिया भी हमेशा अपनी-अपनी जाति में ही विवाह करते हैं। आप लोग चाय पीने आ जाते हैं, किस प्रकार धन्यवाद दूँ? धनवान की नाव तो रेत पर भी चल जाती है, पर निर्धन को नाव ब्रह्मपुत्र में भी नहीं चलती !"⁹⁶

निर्धनता तो चारों तरफ फैली हुई है। परंतु उस निर्धनता में भी भेद-भाव करना पता नहीं यह समाज की कैसी विडंबना है। खुद के खाने के लाले पड़े हुए हैं। फिर भी बेटियों के साथ हीन भाव रखने की बात कही गई है। धर्मानंदी जैसे गरीब मछुवारा भी अपनी पत्नी से इस बात का गुस्सा करते हैं कि उसने लड़की क्यों पैदा की थी। लड़का-लड़की पैदा होना औरतों पर अकेले निर्भर नहीं होता है। साथ ही स्त्रियों को बोझ समझना भी समाज के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है। धर्मानंदी की पत्नी ने आत्महत्या की थी। और वह भी बड़े दर्दनाक तरीके से मगरमच्छ का चारा स्वयं को बनाकर इस संसार से विदाई ली थी। किसी से अगर पूछा जाए कि उसकी जिंदगी की सबसे बुरा डर क्या है। तो वह कहेगा मौत। मौत की गोद में इंसान कभी नहीं जाना चाहता है। वह मरने की कल्पना तभी कर पाता है। जब जीवन उसे मौत से अधिक दर्दनाक और तकलीफ दायक लगती।

"दिसांगमुख की भलाई तो इसमें है कि हमारे लड़कों को सुंदर दुलहनें मिलें और हमारी लड़कियों को योग्य वर धर्मानंदी का दामाद देखें कौन बनता है। बेचारे की घरवाली तो मगरमच्छ के मुँह में चली गई थी। कोई-कोई यह भी कहता है कि धर्मानंदी की घर वाली घर से निकली ही इस विचार से थी कि इस जीवन से छुटकारा पा ले।"⁹⁷

असमिया समाज के कई सारी समस्या हमारे सामने प्रस्तुत होती है और यह सिर्फ बात असमिया समाज की नहीं है। पूर्वोत्तर के आदिवासी जनजातियों में भी कई तरह के मतभेद, समस्या अशांति देखने को मिलती है।

पूर्वोत्तर में जितनी समस्याएं हैं उतनी समस्या शायद ही ओर किसी प्रांत में हो। क्योंकि जाती, स्त्री, राजनीतिक, भूमिगत, अस्मिता की सुरक्षा हर तरह की समस्या इन्हें घिरे हुए हैं।

(च) गालो समाज और स्त्री

अरुणाचल के गालो समाज जो अरुणाचल प्रदेश के ईस्ट और वेस्ट सियांग जिलों में और सुबनसिरी जिले के ऊपरी हिस्सों में रहता है। ये लोग अबोतानी के वंशज हैं।

जुमसी सिराम ने 'मेरी आवाज सुनो' में गालो समाज के दर्शन प्रस्तुत किए हैं। विशेषकर समाज में बसे एक कुरीति के बारे में, जिसमें विवाह के लिए बचपन में ही तय किया जाता है। बच्चों के गर्भ में रहते हुए इस पुराने नियम के निर्वाह किया जाता है। यह समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है। और यहाँ के विशेष फैसले पुरुषों द्वारा ही किया जाता है। किसी भी समाज को बुरा और अच्छा कह पाना मुश्किल है। जब तक वहाँ के उच्चे स्थान पर विराजमान लोग उसके बारे में स्वयं न कहे। हालांकि आधुनिकता के साथ-साथ समाज का ढाँचा भी बदलता जा रहा है। पर जो व्यवस्था आरंभिक समय में रही है। उसी के मापदंड उसकी स्थितियों के बारे में कहा समझा जा सकता है। भारत के ज्यादातर समाजों की तरह अरुणाचल के तानी ग्रुप के समुदायों में भी स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं है। तानी समुदायों में भी विवाह में वधू मूल्य (कन्या मूल्य) लेन-देन की प्रथा के कारण स्त्रियों के खराब दुर्दशा होती रही है। कई बार तो

छोटे-छोटे बच्चों के माता पिता भी वधू मूल्य का आदान-प्रदान करके बच्चों का विवाह तय कर देते हैं।

इसी की झलक जुमसी सिराम ने 'मेरी आवाज सुनों' के माध्यम से गालो समाज की कुछ बुरी व्यवस्थाओं को उजागर किया हैं।

जुमसी जी गालो समाज की मार्मिक दस्तावेज प्रस्तुत की है जिसमें यह बताया गया है कि नारी बिकाऊ वस्तु अर्थात् ले-दे कर उसकी जीवन का फैसला किया जाता है। चाहे वह माने या न माने उस पर दबाव डाला जाता है कि वह उस नियम की पालन करे। जुमसी जी के शब्दों में, वे यायि की वेदना को व्यक्त करते हैं “ तुम्हें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि नारी बिखाऊ वस्तु के समान ही है दरअसल नारी, मनुष्य नहीं है। यह केवल मेरे द्वारा कही गई बात नहीं है बल्कि पूरा समाज मानता है कि नारी केवल मांस का एक लोथड़ा-भर है जिसको लेकर पुरुष मनचाहे ढंग से खेलता हैं। नारी ते असल में पुरुषों की भोग्य सामग्री हैं।”⁹⁸

नारी भोग्य की वस्तु कहना किसी महापाप से कम नहीं है। और किसी चीज को उस पर जोर जबरदस्ती तोपना बहुत बड़ा अपराध है जिसकी गन्ना बातों से नहीं की जा सकती हैं।

प्रेम करने के लिए भी पुरुषों के सहमति (घर पुरुषों की) जिसके मर्जी के बिना आप किसी का चयन स्वयं की इच्छा से नहीं कर सकते । चाहे वह लड़का कितना ही ने दिल क्यों न हो । इस बात को भी लेखक ने बड़ी अच्छे तरह से समझाया है, यायि के माध्यम से गालो समाज के बारे में - “अगर मेरी बहन यायि उस लम्पट के प्रेम जाल में फँसकर मेरी इज्जत डुबाना चाहती है तो मैं उसका सीर काटकर अलग कर दूँगा ।⁹⁹”

प्रकृति के प्रति हो पाता है। जब मनुष्य अंदर से दर्द में हो। उसे अकेलेपन का एहसास लगातार जकड़ता जाता हैं। यही बात हमें 'मेरी आवाज़ सुनों' के नायिका के माध्यम से देखने को मिलती

है। क्योंकि यह पहाड़ी आंचल है यहाँ प्राकृतिक सौंदर्य चारों ओर झकड़ा रहता है- “छूट जाने की उसे बहुत तकलीफ हो रही थी। ऐसे वक्त में सीपू नदी की लहरें ही उसकी सहेली बन गई थीं। सीपू को वह अपनी बहन या सहेली की भावना से देखती।”¹⁰⁰

अन्य अबोटानी समाज की तरह ही गालो समाज में मनुष्य अपना जीवन यापन सारा कुछ प्रकृति पर ही निर्भर किया करते हैं। और इन हालातों में प्रकृति ही स्त्रियों की साथी बन जाती है।

इस उपन्यास के माध्यम से गालो समाज की एक और बड़ी समस्या देखने को मिलती है। जहाँ लड़कियों को सामान की तरह मोल भाव का सामान समझा जाता है। लड़की अगर विवाह से माना कर दे तो लड़की वालों को भारी कीमत चुकाना पड़ता है वह कीमत दो-तीन या फिर सौ गुनी ज्यादा भी ली जा सकती है। यह लड़के वाले की मर्जी होती है। और पंचायत भी इस बात पर कुछ नहीं कर सकती है। और वधू-मूल्य लेने के स्थान पर वे वधू को भी चुनने का हक रखते हैं। चाहे लड़की माने या नहीं-

“चाहे कन्या मूल्य का दो गुणा, तीन गुणा दे फिर भी हमें इसे स्वीकार नहीं करना है। “क्रोध और अहंकार में चूर ताकार के आदमियों ने सलाह- समझोता नहीं करने की कसम खाई। उन्हें वधू ही चाहिए वधू मूल्य नहीं।”¹⁰¹

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य-साधना की परख, सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ.73
2. वहीं, पृ.76
3. वहीं, पृ.75-76
4. वहीं, पृ.78
5. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.5
6. अनील यादव, वह भी कोई देस है महाराज, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2012, पृ.47
7. वहीं, पृ.47
8. यशवंत कोठारी, आदिवासी असंतोष: कारण और निवारण, रचनाक्रम, मई 2010
9. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.11-12
10. वहीं, पृ.70
11. वहीं, पृ.70
12. वहीं, पृ.71
13. वहीं, पृ.71
14. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.79
15. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.79
16. वहीं, पृ.79

17.वहीं, पृ.79

18.Naeem Ahmed, भारत के पर्यटन स्थल मेघालय का इतिहास खाना, पदनावा,त्यौहार, संस्कृति और 10 प्रमुख डिश, February 19, 2018

19. Arnold P.Kaminsky and Roger D.Long(2011), India Today: An Encyclopedia of life in the Republic, Page 455-459

20. Philip Richard Thornhagh Gurdon 1914 the Khasis, Memillan and co.2nd Edition, page 85- 87

21.श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2006,पृ.10

22.वहीं, पृ.51

23.वहीं, पृ.52

24.वहीं, पृ.52

25.श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2006,पृ.85

26.वहीं, पृ.85

27..वहीं, पृ.86

28.Women in Meghalaya, Soumen Sen (Ed.),पृ.28-29, women.....
protected

29.श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2006,पृ.147

30.वहीं, पृ.147

31.वहीं, पृ.147

32.The unquiet valley: society, economy and politics of Manipur (1891-1950) N. Lokendra, P.2, Mittal publication, 1998

33.Hasting Encyclopedia of Religion and Ethics, Volume 11

34. One thousand languages: Living Endangered, and Lost, University of California press, 2008, PP.134

35.Lapolla, Randg J. Thurgood, Graham (17may, 2006). The Sino-Tibetan Language. Routledge ISBN 978-1-135-79717-1

36.Oinam, Bhagat (2005). Murayama, Mayumi (Ed.) "Manipur" Sub Regional Relations in the Eastern South Asia: with Special Focus on India's Northeastern Region. 133

37.द वायर, मार्च 04, 2019

38.मधुचंद्र, न्यूज़क्लिक, दिसम्बर, 2018

39.श्रीधर पाण्डेय आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.10-11

40.वहीं, पृ.11

41.वहीं, पृ.12

- 42.वहीं, पृ.12
- 43.वहीं, पृ.12
- 44.वहीं, पृ.13-14
- 45.वहीं, पृ.14
- 46.वहीं, पृ.15
- 47.श्रीधर पाण्डेय आहुति, जानकी प्रकाशन,पटना,2008,आमुख
- 48.वहीं, पृ.137-138
49. लाल बहादुर वर्मा,उत्तर पूर्व,इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद,2002,पृ.10
- 50.Alvitrips, भारत के पर्यटन स्थल,Naeem Ahmad,19october,2017
- 51.वहीं
- 52.J.P. Mills The Ao Nagas (1926) Kohima Directorate of Art and Culture
2003(Reprint),Page-226
- 53.वहीं, पृ.227
- 54.Purtongzuk Longchar, Historical Development of the Ao Nagas in
Nagaland, Dimapur: print House,2002,पृ.271
- 55.The Lotha Nagas (1922),Kohima Directorate of Art and Culture
2017(Reprint,पृ.119)
- 56.कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षू, रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली,1978, भूमिका

57.वहीं, पृ.3

58.वहीं, पृ.3-4

59.वहीं, पृ.4

60.वहीं, पृ.4-5

61.वहीं, पृ.5

62.वहीं, पृ.13

63.वहीं, पृ.13-14

64.वहीं, पृ.14

65.वहीं, पृ.17-18

66.Sindhu Phadke, Women's Status in North Eastern India, New Delhi, Descent book,2008,page-395

67.B.Foote, India Prehistoric and protohistoric Antiquities,P-11

68.K.L.Barua, 'A Samar Pragaitihasic Samsukriti',pbd.in Asamiya Sanskriti,Ed.H.P Neog and Lila Gogoi p.p18-31

69.Report of Amar Asam,18th March 2002.Issue Ed. Borgohain, P.1

70.D.D Kosambi,The culture and civilization of Ancient India in Historical outline,page-34

71.K.L.Barua "prehistoric in Assam". J.A.R.S, vol VII, no.2, 1939,PA 3-6

72.B.K.Barua op-cit, page-115

73.S.N. Sarma, A Socio-Economic and cultural History of Mediaeval
medieval Assam,page-51

74.B.Kakati, The Mother Goddess Kamakhya,Page-10

75.S.N.Sarma,op-cit,page190,196

76.kalikapurana, P-81-82

77.M.Neog.ed Prachya.Sasana Vali, Appendix-'A'

78.P.C Choudhary, op-cit, PP-406,430

79.नवारुण वर्मा,, जय आई असम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद,1983,

80.वहीं, पृ.9

81.वहीं, पृ.9

82.वहीं, पृ.10-11

83.वहीं, पृ.11

84.वहीं, पृ.13

85.वहीं, पृ.13

86.वहीं, पृ.13-14

87.प्रदीप सौरभ, देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2012, आमुख

88.वहीं, पृ.77

- 89.वहीं, पृ.77
- 90.वहीं, पृ.77
- 91.वहीं, पृ.77
- 92.वहीं, पृ.80
- 93.वहीं, पृ.81
- 94.डॉ. महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण:1999, पृ.194
- 95.वहीं, पृ.193
- 96.देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992,पृ.32
- 97.वहीं, पृ.32
- 98.जुमसी सिराम, मेरी आवाज़ सुनो,अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2001, पृ.31
- 99.वहीं, पृ.12
- 100.वहीं, पृ. 15
- 101.वहीं, पृ.85

चतुर्थ अध्याय

पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्री की
स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय

पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्री की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

स्त्रियों की तुलना की जब बात आती है, विषयों और स्वभावों की लहर सी मच जाती है। स्त्रियाँ कभी एक तरह की हो ही नहीं सकती हैं। उनकी अभिव्यक्ति एवं विचार अलग-अलग उड़ान भरती है। किन्तु जब इन सभी का मूल्यांकन किया जाता है- तो समानता के रूप में उनके जीवन के संघर्ष उतार-चढ़ाव देखने को मिलती है। स्त्रियों को घर की मान-मर्यादा की चौकीदारी की रक्षा की जिम्मेदारी की ढांचा संभाले रखने की भार दिया जाता है। मार-पीट, मानसिक त्रासदी हर तरह के तकलीफों के बावजूद भी उनसे यह उम्मीद रखी जाती है कि इस बारे में वह किसी से बोले नहीं। सूख-सुविधा एशों-आराम की कहानी बाहरी दुनिया के लिए होती है। परंतु मन के भीतर का तनाव वहीं जान पाता है। जिस पर यह सब गुजर रही है। घर की महिलाएँ इस तरह के शोषण को बढ़ावा देती हैं। इसके पीछे के कारण हैं, अपने अहं को संतोष कराना, जालिम किस्म की महिलाएँ होती हैं। वे अपने कमीयों की भरपाई दूसरों की बुराई खोजने में पाती हैं। यह उनकी आंतरिक सुख का साधन होती है।

'मुक्ति' उपन्यास में हिंदू लड़कियों की बुरी स्थिति का ऐसा ब्यौरा दिया गया है। जिसकी कहानी सुनकर रूह कांप जाती है। भारत-पाकिस्तान का विभाजन और दुश्मनी निकालने का सबसे आसान तरीका स्त्रियों की अस्मत् लूट कर उन्हें छल्ली-छल्ली कर देना' लेखक लिखते हैं-"

“ऐसी कमजोर दीवार में जान और आवरू भला कैसे बच सकती है ? निगोड़े आखिर मालकिन के कमरे में घुस ही गए। रसोईघर की खिड़की से चाहूँ तो मैं भाग सकती हूँ। पर मालकिन को इस हालत में छोड़कर कैसे जा सकती हूँ और जो उनके कमरे में जाती हूँ तो ये भेड़िए मुझे ही फाड़ खाएँगे।”¹

कैसी घिनौनी चाले चली जाती है। यहाँ बात अगर सही मायनों में देखी जायें तो धर्म की भी नहीं है। बल्कि खत्म हो चुकी इंसानियत और बदलते मानव मूल्यों की संस्कारों की थी-

“साला डरपोक कहीं का। पुलिस क्या इन हिंदुओं के लिए हमें परेशान करेगी ? चल झटपट घुस पड़ बाड़ी (घर) के अंदर। वह साली ब्याने ब्याने को है तो क्या हुआ, वह छोकरी सी कहारिन तो तरोताज़ा है ना।”

“ओस्ताद दरवाजा तो बंद है।”

“अबे वह खिड़की के नीचे जो बाँस की खपच्चियों की दीवार बनाई है, वह सड़-गल गई है। मैं दिन में ही देख गया हूँ। दे एक लात, चरचराकर टूट जाएगी। आ चल हट। इधर से आ।”

और सच फिर एक ही लात में वह बाँस की खपच्चियों की दीवार भरभरा गई।”²

एक नवजात बच्चे को जन्मे वाली औरत जो अभी भी लथपथ है उस पर भी दया की दृष्टि न रखने वाले कैसे वहशी-दरिंदे है। उनकी सोच को देखकर ही घिन आने लगती है।

“अरे वाह रे जन्नत की हूर ! बच्चा जनकर लथपथ पड़ी है तो भी क्या ऐंठी जवानी है। देख रे साले देख ऐसी गँठी हुई, खड़ी खड़ी चूचियाँ कभी देखी हैं तुमने ? इन साली बंगाली छोकरियों की तो बिन व्याहे ही सत्रह-अठारह तक जाते-जाते उनकी छातियाँ लुज-लुज पपीते-सी लटक जाती हैं।”³

ऐसी बेबस औरत जिसने अपनी आबरू बचाने तक की ताकत नहीं है। ऐसे हालातों में भी उन राक्षसों को उन पर जरा भी तरस नहीं आई। औरत किसी योद्धा की तरह खड़ी होकर कहती है-

“हाय राम! ओ माँ मेरा बच्चा ! और आप लोग ?-ओ साँवरी।”

“अरे ठहर साँवरी की बच्ची। नीचे खून से लथपथ होने से किसी की काम की नहीं सही, तो भी जरा अपना जोबना तो मसलने दे।”

हिरामजादा हाथ भी लगाया तो...”⁴

औरतों के इस तरह जवाब देना या ललकारना पितृसत्ता के हृदय को नागवार गुजरती है-

“दे दाव रे ! साली को अपने जोबना का बड़ा गुमान है, दे दाव बताता हूँ।” इतना कहकर ही दाव ले याकूब ने बड़े जोर से छाती पर वार किया और एक ही वार में एक स्तन कटकर गिर गया। उसके कटते ही पुजारिन बेहोश हो गई। फिर भी उसने उसी तरह दूसरे झटके में उसका दूसरा स्तन भी काट लिया और बड़बड़ाया- “साली आई थी हरामी जनने दूध पिलाएगी साली हरामी के पिल्लों को।”⁵

कैसी निरंकुशता है जिससे बाहर निकलने का रास्ता भी कहीं नज़र नहीं आती है। फिर भी एक महिला को यूँ जान गवाते देखकर भी साँवरी जैसी महिला अपनी स्वार्थ को खत्म कर अपने साथ-साथ अपने मालकिन के नवजात शिशु की रक्षा हेतु वहाँ से चतुरतापूर्वक भाग खड़ी होती है।

“मालकिन की एक आखिरी चीख सुनाई पड़ी ही थी कि बच्ची को गोद में चिपकाए साँवरी खिड़की से बाहर कूद गई और फिर उस धुप्प अंधेरे में बेतहाशा भागने लगी। न जाने किस ओर? न जाने कहाँ ?”⁶

भागना हमेशा कायरता की निशानी नहीं होती है। कभी-कभी यह बुद्धिमत्ता को भी सूचित करती हैं। जब किसी ओर की रक्षा भाव और अपनी लाचारी से भागती है। तो वह व्यक्ति डरपोक नहीं कहलाता हैं। असम प्रांत की यह कहानी वहाँ की जनजीवन और औरतों की दयनीय दशा का सही दस्तावेज प्रस्तुत की हैं ।

औरतों की सामाजिक और मानसिक संघर्ष का धरातल बहुत लंबी और फैली हुई है । संघर्ष का यह रूप जहाँ औरतों को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ती हैं। क्योंकि उन्हें कमज़ोर और बेबस करने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। स्त्रियों को सामाजिक क्रांति का रूप धारण करना ही पड़ता है । क्योंकि अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया तो उन्हें ज़मीन के भीतर दफनाने वालों की आबादी नकारात्मक रूप से बढ़ती ही जा रही है । 'जय आइ असम' के माध्यम से लेखक ने असम प्रांत की ऐसी संघर्षशील और विरंगाना महिला नमिता का ओजस्वी रूप को प्रस्तुत किया हैं ।

उस विशाल जनसमूह के सामने मंच पर खड़ी नमिता के हृदय में प्रचंड तूफान उमड़ रही थी, वह धुंआधार भाषण दिये जा रही थी ।

.. हालांकि इस देश में यह कोई नयी घटना नहीं हैं । पुलिस- मिलिट्री वाले मौका मिलते ही निरीह महिलाओं पर टूट न पड़ते हों, बलात्कार न करते हों, ऐसा भी नहीं है । आप लोगों ने तो अखबारों में पढ़ा ही हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में भी तो यही हो रहा है, नारायणपुर, बागपत, जैसी हजारों जगहें ऐसी वारदातें होती रही हैं। असम में उन्हें मौका मिला है, वे वही सारा दुष्कृत्य तो कर रहे हैं । यहाँ की सड़कों पर महि लाओं का चलना इज्जत का सवाल हो गया हैं। उस दिन हम कुछ महिलाओं के साथ जा रह थे, एक मुच्छड़ पुलिसवाले ने व्यंग से

कहा था—अरे, औरत बनी है किसलिए ? साले, हम बाल-ब्रह्मचारी थोड़े हैं । हमने शर्म से सिर झुका लिया था । क्या इससे यही नहीं लगता कि औरत पर बलात्कार करना यहाँ की पुलिस मिलिट्री का जन्मसिद्ध अधिकार है ?....”⁷

शोषण का शिकार होते हो तो उस चीज़ को छुपाओ मत। बल्कि उनका जिक्र खुलकर करना चाहिए । जैसा कि नमिता ने किया, हर समाज की औरतों को ऐसे ही बुलंदपूर्वक सामना करना चाहिए । उन्हें ललकारना चाहिए । पूर्वोत्तर कि हर महिलाओं में साहस की कोई कमी नहीं है ।

“नमिता दहाड़ती हुई बोले जा रही थी- पुलिस के रूप में गुंडे पाल रखे हैं, हम औरतों पर बलात्कार करने के लिए, मासूम निरीह लोगों पर जुल्म ढाने के लिये समाजद्रोही तत्व, चोर-डाकू आदि तो इनके दोस्त होते हैं। ऐसे गणतंत्र को धिक्कार है, जहाँ नारी की मर्यादा रक्षा नहीं होती। फिर कोई शासक महिलाओं पर इस तरह जुल्म को शह देता रहे तो ऐसे शासक को और भी ज्यादा धिक्कार है । उत्तर कामरूप की घटना हमारे देश के इतिहास का अमिट कलंक है

और उपस्थित जनसमूह ने तालियों की गड़गड़ाहट से उसका समर्थन किया था। महिलाओं पर अत्याचार के दर्दनाक बयान से जनता में तीव्र विक्षोभ और घृणा की लहरें फैल गयी थी । उपस्थित महिलाओं ने अपने आँसू पोछे थे ।”⁸

मन के कोने में दबे दर्द को जब निकाला जाता है। सामने वाले के मन में ज्वलंत भाव जाग जाती है।

महिलाएँ साहस और वीरता के क्षेत्र में किसी भी तरह से पीछे नहीं हैं। ब्रह्मपुत्र जहाँ लेखक ने असम कि इतिहास, उसकी आज़ादी और संघर्ष के गाथा को मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास को पढ़कर असम के लोगों की पीड़ा का तो अनुभव तो होता ही है, साथ ही उनके धैर्यता को भी भली-भांति देख सकते हैं। महिलाएँ वैसे तो किसी-न-किसी सहारा की मोहताज हैं लोगों और समाज के ठेकेदारों का विचार है। पर वैसे विचारों को ब्रह्मपुत्र की महिला पात्र आरती द्वारा अपने पैरों तले रोंदते दिखाई पड़ते हैं। लेखक लिखते हैं-

"स्वयं उसे भी उलटा लटकाया गया था। यदि वह देवकांत के संबंध में झूठ-मूठ भी कुछ बताना स्वीकार कर लेती, तो कदाचित् उसे उलटा न लटकाया जाता। उसका बापू भी तो देवकांत के संबंध में कुछ बताने से अंत तक इनकार करता रहा था, इसीलिए तो उसकी पिटाई हुई थी। पिटाई तो स्वयं उसकी भी हुई थी। वह थाना ही क्या हुआ, जहाँ पिटाई न की जाती हो। नारायण के हथ्थे चढ़ने का मतलब है मृत्यु की राह देखना।"⁹

मृत्यु का भय सभी को होता है। और अपने को सुरक्षित रखने की कोशिश भी सभी करते हैं। पर औरतों के बारे में यह कहा जाता है कि वे कमज़ोर होती हैं। दूसरों पर आश्रित रहती हैं। इसलिए स्वयं तो वे स्वार्थी होती ही हैं, साथ अपने प्रियजनों को स्वार्थी बनने की सीख देती हैं। परंतु वह सामाजिक सोच है आरती जैसी पात्र इस बात को किसी भी तरह सही नहीं ठहराती हैं। वह स्वयं तो जाल में मार-पीट का शिकार होती हैं। साथ-ही-साथ अपने पिता को भी बचाने के लिए देवकांत के बारे में नहीं बताती हैं। यह एक हिम्मतवर महिला का प्रतीक है, जिसे शोषण और अत्याचार तोड़ नहीं सकती हैं।

देवकांत की माँ भी एक साहसी महिला थी उसे अपने पुत्र से अधिक धरती माँ से प्रेम थी। अपने बेटे को यूँ धरती माँ के लिए अपना भविष्य बर्बाद करते हुए देखकर भी ज़रा भी अफ़सोस नहीं करती हैं।

“माँ को इस बात का तो तनिक भी दुख नहीं कि बेटा इस पथ पर क्यों चल रहा है, पर उसे इस बात का बहुत दुख है कि कलकत्ता से लौटकर उसका बेटा एक बार भी उससे मिलने नहीं आया।¹⁰

“देवकांत की माँ स्वयं पर गर्व करती है कि वे ऐसे बेटे की माँ हैं। जो अपने धरती माँ के लिए संघर्षशील है एवं अपने जीवन को भी होम करने को तैयार हैं। माँ कहती है-

“देवकांत जैसे बेटे की मां होने का तो भला किसे गर्व न होगा ? करघे पर अंडी या मूंगे का थान बुनते हुए माँ सदा यही सोचती है कि देवकांत जैसा बेटा तो प्रत्येक स्त्री को मिले। माँ का यह विचार तो बिल्कुल नहीं कि देवकांत का कार्य शीघ्र समाप्त हो जाएगा और फिर वह दिसांगमुख में जमकर रहेगा। मैं सोचती हूँ कि अपने कार्य से छुट्टी पाकर देवकांत के लिए यह बिल्कुल कठिन नहीं रह जाएगा कि वह दिसांगमुख में जमकर रहे।”¹¹

देवकांत की माँ कि विचार बहुत ही उच्च कोटि कि है। वे सामाजिक रूढ़ि को तो कभी नहीं मानती है। साथ ही किसी भी तरह के अन्याय का साथ देना भी उन्हें नहीं आता है-

“देवकांत ब्राह्मण हैं। मछुआ की कन्या तो क्या खाकर बनेगी ब्राह्मण की बहू ? ब्राह्मण का लड़का तो मछुआ बन सकता है।”¹²

आरती जैसी महिला जिसने जाने कितनी ही मुश्किलों का सामना किया पर कभी टूटी नहीं।

‘जय आइ असम’ में नारी पात्रों की भूमिका किसी भी तौर पर कमज़ोर नज़र नहीं आती हैं। अपने देश और असम की जितनी सेनानी करते हैं। वैसी ही चिंता उनके भीतर भी देखने को मिलती हैं। वे इतनी सशक्त है कि उन्हें रोक पाना लगभग नामुमकिन सा लगने लगता है। इसके पीछे का एक कारण यह भी है कि उन्हें सही और गलत की पूरी जानकारी प्राप्त है। जब किसी को जानकारी की कमी नहीं होती है तो वह अपने आप ही बहुत अधिक बलशाली

बनकर उभरती है। जैसा कि नमिता 'जय आइ असम' की नारी पात्र के रूप में देखने को मिलती हैं। जहाँ वे अपने पिता के रोकने के बाद भी अपनी लड़ाई और देश के प्रति क्रांतिकारी रूप छोड़ने को तैयार नहीं हुई। लेखक ने नमिता के चरित्र का बड़ा ही सही रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है।

“अस्पताल से छुट्टी पा, तीन दिन आराम करने के बाद नमिता बाहर निकल रही थी। फुकन ने पूछा-कहाँ जा रही है बेटी ? –

आज संस्था की जरूरी बैठक हैं। उसमें हमें उपस्थित रहना है।

-मगर तेरी तबीयत तो अभी काफी नहीं सुधरी है। और दो-चार दिन आराम कर इन सबमें जाती तो नहीं चलता ?

नमिता ने पिता के चेहरे की ओर देखा। उदासी की छाया उसके गोरे रंग को मटमैला बना रही थी। उद्विग्नता को स्पष्ट-रेखाएँ उभर आयीं थीं, बोली-अगर हमारा अस्तित्व ही रह नहीं जाये तो फिर हमें रहकर ही क्या होगा ? समय बीत जाने पर कुछ करें भी तो उससे क्या होगा ? तीस साल देर हो गयी क्या यही कम है ? अगर इतनी देर न होती तो यह समस्या ही नहीं पनपती। हमारे अपने लोगों की करतूत की सजा तो इमें भुगतनी ही है।”¹³

समाज में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं है, जो स्त्रियों को किसी भी तरह के आज़ादी देना पसंद नहीं करते हैं। कुछ लोगों की यह मान्यता भी रहती है कि लड़कियाँ चार दीवारों के भीतर ही अच्छी लगती हैं। उनके यूँ सड़क पर निकल आना समाज के मर्यादा का उल्लंघन करना है। तो इस तरह के कार्य स्त्रियों के लिए अनिवार्य रूप से लागू करनी चाहिए। किंतु नमिता जैसी खुले विचारों वाली लड़की इस तरह के पथ पर कभी नहीं चलना चाहेगी, क्योंकि उन्हें पता है देश और समाज का हित किस में छिपा है। उसे यह भली-भाँति मालूम है कि असम के समाज के

लोग इसी तरह के विचारों में फँसे रहे कई वर्षों तक। उनका क्षेत्र उनके हाथों से धीरे-धीरे कर फिसलता ही जा रहा था। जो आगामी और असम के मूल निवासी थे उनके हक की ज़मीन प्रवासी लोग उनसे छिन्न रहे थे। इसी गलत हो रहे कांडों को रोकने के लिए असम के नौजवान और युवतियाँ लड़ने को मजबूर हो गए थे। ऐसे में भी लोगों की दकियानूसी सोच बदलने का नाम ही नहीं ले रही थी उसी सोच को नमिता जैसी नारी पात्र अपनी पैरों तले रोंधती हैं।

“वह चली जाने लगी। फुकन उसे रोक न सके !

कहा-सुन, जा रही है तो जा, मगर ज्यादा देर न करना। जल्द लौट आना।

पिता के लहजे में जो संकोच और निषेध का भाव था नमिता को उसे समझने में देर न लगी। दो दिन पहले अखबार में आन्दोलन करने वाली युवतियों के बारे में कुछ भद्दी-सी टिप्पणी की गयी थी, जिस कारण कुछ अभिभावकों ने अपनी युवा लड़कियों को रात या शाम के समय धरना आदि देने में रोक लगा दी थी। गुवाहाटी में ही युवती को अपमानित करने की घटना को लेकर पुलिस और जनता में झड़पें हो चुकी थी। एक आतंक का परिवेश चारों ओर फैल गया था।”¹⁴

जहाँ एक ओर नमिता जैसी महिला देश के लिए सड़क पर उतर आई हैं। तो दूसरी ओर मालती जैसी बुद्धिमानी नारी पात्र को भी लेखक ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जो जानती है चीजों को कैसे रोकना चाहिए। और गलत चीजें कहाँ से शुरू हुई है। ऐसी नारी पात्र भी हमारे समाज में बहुत अल्प किरदार निभाती है। बिना सूझ-बूझ के जंग के मैदान में कूदने वाली पात्रों में से वह नहीं थी। वह यह भली-भाँति जानती है, जिन नेताओं के पीछे हम अपनी जान देते हैं। वही हमारे जान को दो कोड़ी का साबित कर देते हैं।

“देश नहीं रहेगा ? क्यों ? जिन लोगों को देश का शासन चलाने के लिए आग्रह स चुना था, क्या वे सारे मर गये जो आज हमारे नन्हें बच्चों को इस तरह से आन्दोलन करना पड़ रहा है ? क्या वे सब असमीया नहीं हैं ?

अमृत फुकन ने जवाब नहीं दिया। विधायकों या संसदों पर देश का, जाति का दायित्व सौंप कर सभी लोग निश्चित हो जाते हैं। पिछले तीस सालों में अवैध रूप से घुसनेवाले विदेशी नागरिकों पर कड़ाई बरती जाती, वे विधायक या संसद नजर रखते तो आज क्या यह समस्या इतनी जटिल होती ? विधायकों की बात अलग है, खुद अमृत फुकन यह राजेन बरुवा जैसे लोगों ने भी तो उन्हें आने और बसने में मदद पहुँचायी हैं । उन्हें काम करने का मौका दिया है, परती जमीन पर बस जाने को प्रोत्साहन दिया हैं। अमृत फुकन तो स्वयं अपराधी भावना से दबे से थे ।” 15

मालती जैसी महिला पात्र सौ मर्दों के सामने खड़ी होकर उन सबको पारस्त कर सकती हैं । अपनी बेबाक और दो टूक जवाब के कारण जहाँ किसी भी रूप से किसी भी तरह की छल-कपट नहीं होती है । वे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए खड़ी नहीं होती है । बल्कि जनता और आम नागरिकों के हित की लड़ाई लड़ती है । वह किसी के पीछे चलने वाली महिला नहीं है। बल्कि अपने न्याय की राह स्वयं तलाशती है-

“मालती बोली-बड़ी अजीब बात है हमारी शासन पद्धति का शासन करने वाले मौका परस्तों ने किस तरह अपने स्वार्थ का साधन बना लिया है इसका उदाहरण असम की विधान-सभा और विधायकों की स्थिति से ही मिल जाता है । दूसरे राज्यों की विधान सभाओं को इस बहाने बरखास्त कर दिया जाता रहा है कि उन पर जनता की आस्था नहीं है, लेकिन असम में जहाँ

जनता सचमुच विधायकों से असन्तुष्ट है, संसद के चुनाव को भी रोक दिया है, जिन दो क्षेत्रों में चुनाव हुए वहाँ भी उसी दल को बहुमत मिला जो केन्द्रीय सरकार में है, तो भी यहाँ कई महीनों से विधान-सभा भैर को निलम्बित किया गया, बरखास्त नहीं किया गया। यह गणतन्त्र का मखौल नहीं तो क्या है ? ये विधायक आज जनता में आकर साहसपूर्वक अपनी बात क्यों नहीं कहते ? अगर यह आन्दोलन ही जन-विरोधी है, तो क्यों जनता को नहीं समझाते ?”¹⁶

अंधों की तरह चलने वाली स्त्री नहीं है मालती, वे हिम्मत वाली स्त्री हैं । न्याय के जगह में अन्याय करने वाले अक्ल के दुश्मन को रोकना भी उसे पता है । लेखक कहते हैं-

“तभी बाहर शोर गुल सुन वे उठकर निकलना ही चाहते थे कि भोला दौड़ता हुआ दरवाजे को धकेल कर अंदर आया । उसके सिर खून बह रहा था । वह चिल्ला पड़ा-मालिक, बचाइये ! मुझे ये लो मार डाल रहे हैं ।

मालती तुरन्त बाहर सबसे आगे आ गयी। देखा, कुछ लड़के हाथों में पत्थर लिए चीख-पुकार मचा रहे हैं, 'बोंगाल' को बाहर निकालो हम उसे चाहते हैं। मालती बाहर आकर ऊँची आवाज में बोली क्यों, क्या है ? तुम लोग यहाँ क्या चाहते हो ?

अचानक शोर थम गया। आगे बढ़ते हुए लड़के पीछे हट गये। दो लड़के आगे बढ़ आये। बोले- अभी एक बंगाली यहाँ घुसा है। वह आपके यहाँ रहता है ? उसे निकाल दीजिये ! हम उसकी मरम्मत करेंगे ।”¹⁷

मालती बिना कारण के आक्रोश को थामने की अटूक वानी रखती है। लेखक आगे बताते हैं-

“क्यों ? कुछ उग्रता से मालती बोली- वह तो विदेशी नहीं है । वह हमारा नौकर है । आपने बंगाली नौकर क्यों रखा है ? आप इन्हें जगह देती हैं, हम नहीं चाहते। आप उसे निकाल दीजिये। दूसरा लड़का बोला, हमने सुना है वह विदेशी है ।

-तुम्हारे पास है कोई प्रमाण कि वह विदेशी है। सुनो, आन्दोलन तुम्हीं नहीं कर रहे हो, हम भी कर रहे हैं, इसका मतलब यह नहीं कि किसी बेवश-निरपराध को बिना कारण सताया जाये। तुम लोग अपनी हरकत से आन्दोलन को नुकसान तो पहुँचा ही रहे हो, बदनामी भी फैला रहे हो । एक बेकसूर को क्या इसी कारण तुम मारोगे कि वह बंगाली है। मैं कभी ऐसा करने नहीं दूँगी ।” 18

मणिपुर राज्य केन्द्रित उपन्यास 'उत्तर पूर्व' में महिलाओं के आजादपूर्ण रूप से जीने के प्रक्रिया को दर्शाया है । हालांकि उस समाज में स्त्रियों के प्रति कई तरह की सख्ती है । फिर भी वहाँ की महिलाओं की स्थिति बहुत बेहतर है । जहाँ भारत के अन्य राज्यों में स्त्रियों की दूसरे विवाह को लेकर बहुत कुछ बुरा विचार रखते हैं। ऐसे में मणिपुर राज्य में दूसरा विवाह भी विधवा महिलाओं का उसके लिए भी रोक-टोक नहीं है । विधवा महिलाएँ भी दूसरा विवाह रचा सकती है। हालांकि कुछ पाबंदियाँ भी हैं, जैसे उनका अधिक चहकना और चंचलता को बुरा समझा जाता है। लेकिन स्त्रियों के खुशी के लिए यह नियम भी कठोरता से पालन नहीं किया जाता है ।

“ पिता और बूढ़ी बुआ भी देख रहे थे कि राधा आजकल फिर पहले की तरह चहकने ।' लगी है कभी-कभी। दोनों के मन में एकाध बार शंका पैदा होती क्योंकि विधवा के चहकने का चलन नहीं था और राधा भी सालों ढोती रही थी वैधव्य पर उसकी उम्र देख कर, उसकी प्रकृति की

याद करके आश्वस्त रहते, बल्कि थोड़ा अच्छा ही लगाता, कि चलो थोड़ा खुश तो रहने लगी है। उन्हें इराबो में भी स्वस्थ परिवर्तन दिख रहा था।”¹⁹

महिलाओं को पुरुषसत्ता के आगे और उनके कारण बहुत कुछ संभल कर चलना पड़ता है। इसका मुख्य कारण है उनके चालबाजी और धोखेबाज। विवाह होने के पश्चात भी गैर औरतों से संबंध स्थापित करने से ज़रा भी संकोच नहीं करते हैं। इनके लिए महिला कोई खेल है जिन पर विजय पाने के लिए वह हर मुमकिन कोशिश करते हैं। ऐसी ही चालबाजी मनोज के रूप में देखने को मिलती है। जो जूही नामक महिला को अपनी जाल में फंसाने के लिए हर तरह के षड्यंत्र करते हैं। यहाँ तक भी अपने पत्नी और बच्चे तक की भी बात को छिपाते हैं। ऐसे व्यक्ति जो किसी अन्य स्त्री के लिए आपने जीवनसंगिनी और बच्चे तक को भी भूल जाए उसे किस श्रेणी में रखा जाए इसका फैसला कर पाना भी मुश्किल है। पशु कहे तो यह पशुओं का अपमान होगा। क्योंकि वे प्राकृतिक रूप से थोड़े अलग होते हैं। किंतु मनुष्य को तो बुद्धि और विवेक के साथ जन्म दिया जाता है। यह बहुत ही दुख की बात है, किसी भी मनुष्य का अपने परिवार के प्रति ऐसी बेईमानी।

“जूही से पहली मुलाकात के बाद चार हफ्ते गुजर गए थे—न चिट्ठी लिखी न फोन किया था। कल टलता ही जा रहा था। पिछले चौबीस घंटों के दौरान तो एक बार भी कुछ और आया ही नहीं था दिमाग में, बस इन्तजार और तैयारी चाय के अलावा कुछ खास बनाना तो आता नहीं था। बाजार से जो भी समझ में आया ले आया था। कोने वाली मेज पर उसने चार-पाँच प्लेटों में मिठाई बिस्कुट-नमकीन वगैरह सजा कर रख दिया था। 'गुणी' पत्नी ने उसके सामान में क्रोशिया से बुना एक नफीस मेजपोश रखा दिया था। मनोज ने उसी से नाश्ते का सामान ढक दिया था। वैसे तो चाय रेडीमेड ही बनती थी। पर आज टी-पॉट में ग्रीन लेबल चाय डालकर

टी-कोजी से ढकने का इन्तजाम था। टी कोजी भी पत्नी ने ही पालिका बाजार से खरीद कर दी थी जब वह दिल्ली तक पति को छोड़ने आई थी।

जूही जब कमरे में घुसी तो ड्राइंगरूम बेदह करीने से सजा देखकर बोली : 'आप तो अन्य सिंगल्स की तरह नहीं रहते। मनोज को अच्छा लगा कि शायद उसे बैचलर ही समझा जा रहा है।' ²⁰

गैर औरत से अपना मतलब निकालने के लिए मनोज ने अपनी पत्नी की हर बात छुपाई थी। यहाँ तक कि जूही द्वारा पूछे जाने पर मेजपोश को भी माँ ने बनाया कहा। ताकि जूही समझे ये अविवाहित है। ऐसे गलत मंशा वाले व्यक्तियों से स्त्रियाँ कभी सुरक्षित नहीं रह पायेंगे। लेखक लिखते हैं- "उसने एक नजर कमरे पर डाली। उसे सुन्दर व्यक्ति ही नहीं चीजें भी आकर्षित करती थी।

'यह मेजपोश तो बेहद नफीस है। पुराने जमाने की याद दिलाती है। बाजार की तो लगती नहीं, किसने बनाई है ?' प्यार से स्पर्श करते हुए जूही ने कहा। मनोज के गले में कुछ अटकने लगा पर स्मार्ट होने का सबूत देते हुए उसने कहा : 'माँ ने।' स्मार्ट होने की शायद यह भी पूर्व शर्त है कि आदमी वक्त के मुताबिक कितनी आसानी से कितना रचनात्मक झूठ बोल सकता है। उसने यही तो कहा 'माँ ने' जिसका यह अर्थ हो सकता है मेरी बेटी की माँ ने। युधिष्ठिर का ही तो देश है।' ²¹

जूही मनोज जैसे लड़कों को अच्छी तरह से जानती है। और उन्हें कैसे संभालना है या सबक सिखाना है, यह भी भली-भाँति पता है। लेखक लिखते हैं-

"हाँ ! शिव को तो ढूँढती रहती हूँ।' यह बात समझना मनोज के बूते के बाहर था क्योंकि शिव पर जिस तरह जोर दिया गया था वह मनोज जैसों के पल्ले नहीं पड़ सकता।

‘आपको पाकर तो कोई शिव भी धन्य हो जाएगा।’ अपने विचार से उसने ब्रह्मास्त्र चला दिया था।

‘आप में भी तो शिव हैं।’ जूही के हाथ में मनोज की डोर आ चुकी थी। वह उसे जैसे चाहे नचा सकती थी। मनोज तो कठपुतली बनने को तैयार लग रहा था। आब्दादित था।”²²

जूही एक चतुर महिला थी उसे कोई भी आसानी से नहीं फँसा सकता हैं-

“मैं ऑलराउन्डर रहा हूँ।’ वास्तव में अपनी जमीन पर दौड़ने के लिए तैयार था मनोज, पर जूही ने फिर तराशा !

‘जैक ऑफ ऑल ? ज्यादातर ऑलराउन्डरों की तरह ?

‘जैक ऑफ ऑल एंड मास्टर ऑफ’-

‘सेरेमनीज।’ जूही ने मनोज से फिर मौका छीन लिया। अब पैर उखड़ने लगे मनोज के।

‘जूही, आप तो ओवर स्मार्ट हैं।’

‘ओवर क्यों? स्मार्टनेस की कोई हद होती है क्या जिसके बाद ओवर कहे बिना पूरा अर्थ सम्प्रेषित न होता हो ?’

‘नहीं, मैं यह कहना चाहता था कि सामान्यतया लोग इतने स्मार्ट नहीं होते।

‘सामान्य किसे कहेंगे आप ?’

अब वास्तव में मुश्किल होने लगी मनोज के लिए वह तो जय-पराजय की भाषा ही समझता, ज्यादातर मध्यवर्गीय लोगों की तरह। ऐसे लोग अच्छा मजाक कर लेने को भी एक जीत की तरह लेते हैं और मजाक में पिट जाने को भी हार की तरह।

आहत मनोज कोई ऐसी बात कहने या करने को तड़पने लगा जिससे वह अपने पराजय बोध से मुक्त हो जाए या कम-से-कम बराबरी पर छूटने का अहसास जगा सके।”²³

ऐसे लोगों को ऐसे ही उनकी औकात दिखानी चाहिए। यह पालतू कुत्ते की तरह होते हैं। हर किसी के आगे-पीछे दुम हिलाते रहते हैं। उनके अह्म को चोट पहुँचाकर उन्हें ज़मीन तक गिराने अति आवश्यक है। औरत केवल साहसी ही होती है। लड़कर ही सब मैदान फतेह नहीं की जा सकती हैं। कुछ लोगों को बुद्धि के बल पराजय कराना महत्वपूर्ण कार्य हैं।

नागा समाज की महिलाओं का जीवन काफ़ी दुखदायक होती हैं। ‘रक्तयात्रा’ उपन्यास में हमें देखने को मिलती हैं। ऐसे अनेकों महिलाएँ जो पुरुषों के बिना भी अपने परिवार की ज़िम्मेदारी बखूबी निभाती हैं। बल्कि देखा जाए तो उनसे कई अधिक भी। क्योंकि वे घर और खेती दोनों ही संभालती हैं। पुरुष जहाँ अपने प्रांत की आज़ादी की लड़ाईयां लड़ते हुए सालों-साल जंगलों में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन हालातों में भी नागा समाज की साहसी महिलाएँ हार नहीं मानती हैं। इन परिस्थितियों को लेखक ने विजेलू और उनकी पत्नी के माध्यम से बड़े ही भावुक शब्दों में व्यक्त की हैं-

“विजेलू कोई सोलह बरस बाद घर लौटा था। उसे घर में गांव में सभी कुछ। तो बदला-बदला नजर आया। अपने जिन बच्चों को वह गोद में खेलता या लड़खड़ाते कदमों से चलने की कोशिश करता छोड़ गया था वे ही अब बड़े होकर अजनबी से हो उठे थे। उन्होंने उसे कुछ ऐसे देखा जैसे कोई बाहरी आदमी आ गया हो। विजेलू के मन में टीस सी उठी। उसे लगा जैसे उसने एक असंभव लक्ष्य की बेटे-बेटी तक का प्यार खो दिया हैं। और पत्नी तो जैसे असमय बूढ़ी हो गई थी। वह उसे देखते ही पथरा सी गई थी। विजेलू ने पास आकर उसके हाथों को अपने हाथों में लिया तो दंशित चेतना निर्जीव सी आँखों में आँसू बनकर उमड़ पड़ी थी। उसे आश्वस्त करने के लिए उसने कुछ कहना चाहा पर भावनाओं की भीड़ में शब्द ही खो गए। पत्नी के कड़े और खुरदरे हाथ उसे यह एहसास दिलाते रहे कि उसने खेतों में कैसी कड़ी मेहनत

करके अपने बच्चों को पाला हैं। इस एहसास के साथ ही वह अनकहे अपराधों की ग्लानि से भर उठा था।”²⁴

नागा समाज की महिलाएँ काफी मजबूत इरादों वाली होती हैं। वे एकनिष्ठ रहती हैं। साथ-ही-साथ अपनी तथा अपने परिवार की ज़िम्मेदारी भी भली-भाँती समझती हैं। और निभाती भी हैं।

विजेलू जब कई सालों बाद घर लौटा तो उसकी पत्नी कुछ कमज़ोर पड़ गई। यह शारीरिक और मानसिक मनोबल की बात नहीं की जा रही हैं। यह प्रेम की कमजोरी, जो हमारे मन में अपने दिल के अजीज सदस्यों को होती हैं। विजेलू की पत्नी बिना किसी शिकायत के सालों-साल सारा दर्द सहती रही। वह न झुकी और न टूटी। परिस्थितियों से हारकर उसने किसी परपुरुष का हाथ भी नहीं थामा। ऐसी महिलाएँ होती हैं, जो मानव जाति और साथ स्त्रियों को मान सम्मान की एक नयी प्रतिमा हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

“विजेलू ने दीर्घ मौन और उत्पीड़न के बाद सायास कहा, 'मैं तुम्हें एक दिन के लिए भी नहीं भूला इस बीच।'”

पत्नी ने चीखकर आरोपों की वर्षा-सी करते हुए कहना चाहा, तभी तो इतने बरस बाद सुध ली।’

पर मन के किसी गह्वर से बंगले सी उठी चीख गले की फाँस बनकर रह गई। बरौनियों पर भूलते आँसू टपककर शिकायत करने लगे। बच्चों ने दूर से ही उनका यह अजीब मिलन देखा। माँ के आँसू देखकर उनके मन में उस अजनबी के प्रति रोष भर उठा था। पत्नी ने शिकायतों से भरे मन को किसी तरह सम्हाल कर कहा, “टू टू, सोबो, इस तरह क्या खड़े हो आओ अपने

अपो से बात करो ये तुम्हें नन्हा सा ही छोड़कर चले गए थे। देखो, आखिर तुम्हारी याद आ ही गई इन्हें।”

बच्चों के बहाने ही उसने अपनी शिकायत कर दी थी जैसे।”²⁵

ऐसी महिलाओं के पति अपनी पारिवारिक स्वार्थ से आगे का भी सोच पाते हैं। क्योंकि उन्हें पता है, उनके पीछे भी परिवार सुचारू रूप से चलेंगी। विजेलू घर आकर भी दूसरों के परिवार के बारे में सोचने लगा। क्योंकि विजेलू की पत्नी ने ही सिर्फ यह जीवन नहीं जीया था। बल्कि ऐसे अनगिनत नागा महिलाएँ उर्मिला सा वनवास का जीवन गुजार रही थी। लेखक लिखते हैं-

“विजेलू कहता जा रहा था, “जंगलों की खाक छानते हुए मैं सोचता था कि हम अपने बच्चों को एक आजाद देश देने के लिए अपने सुख कुर्बान कर रहे हैं। पर सच तो यह है कि हमने अपने बच्चों से माँ-बाप का प्यार तक छीन लिया। मुझे माफ करना मेरे बच्चो।” यह कहते कहते उसकी आवाज रुंध गई थी और आँसू फिर जो उमड़े तो बरसते ही रहे. अथक बरसते रहे।”²⁶

रूपतिल्ली की कथा 'श्रीप्रकाश मिश्र' द्वारा लिखी गई उपन्यास हैं। जिसमें मेघालय की जानकारी दी गई है। यह कोई भौगोलिक जानकारी देना मात्र नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, अनैतिकता हर तरह की ओर की तस्वीर हमारे सामने बनाती हैं। बहुत चिंतन-मनन और बारीकी से जाँच ने के बाद ही वे यह उपन्यास लिख पाये हैं। फिर भी कुछ-न-कुछ तो अधूरा रह जाना स्वाभाविक ही है।

मेघालय समाज में पुराने जमाने में कुछ ऐसे अंधविश्वास बसते थे कि लोगों की बलि देने के पश्चात ही समाज का कल्याण हो पायेंगे। किंतु यह अंधविश्वास इतना प्रबल हो चुका था कि इसके नाम पर लोग कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। ऐसी ही घटना है खरलुक्की कि जो

कोपिली नदी में अपने बलि चढ़ाने को अग्रसर हो उठता है। जिससे उसके परिवार को अच्छा जीवन ताउम्र मिल पायें। लोग अंधविश्वास के चलते खरलुक्की की पूजा-अर्चना करना शुरू कर देते हैं। इन सबसे अलग खरलुक्की की बूढ़ी माँ जिन्हें यह कहीं-न-कहीं यह आवास भी था कि यह मात्र एक अंधविश्वास है। और इसे रोकना चाहिए, किंतु वह कमज़ोर थी पूरी समाज के आगे। फिर भी कोशिश करना शुरू कर देती हैं।

“खरलुक्की के बयान से पूरा गाँव प्रसन्न और आश्चर्यचकित हो गया। उसे जो आदर मिलना था, उससे अधिक मिला-राजा और कोपिली की अमानत मान कर फिर उसकी बात मानकर पूरा गाँव दूने जोश से चौगुना श्रम करने निकल पड़ा अपने नये झूम में और उस साल फसल अठगुना होकर झूमी लिङ्दोह को तब लगता कि यह ड'खारों का झूमना शब्द किसी ऐसे ही झूम को देखकर बना होगा।

“लेकिन खरलुक्की को माँ पागल होकर जिस-तिस के पास जाती और रो रोकर गुहार करती कि कोई तो उसके पूत को मनाये। लेकिन किसमें इतनी हिम्मत थी कि कोई उसके पूत को मनाये। कोपिली माई क्या कहेंगी ! राजा जाने क्या कर बैठे ! खावरा बनने की भविष्यवाणी तो उसके पूत ने किया है और तब किया है जब उस पर देवी का आसन था। देवी ने जब उसे चाहा है और उसने स्वीकार कर लिया है तो कोई क्या कर सकता है। वह न भी स्वीकार करता और देवी चाहती तो कोई क्या कर लेता ? राजा अपने चाकर भेज कर उठवा लेता तो भी कोई क्या कर लेता? अरे शुक्र मानों कि देवी ने स्वयं चुन लिया है। राजा तुम्हारे खानदान को मालामाल कर देगा।

कई गरीब-गुरबा परिवार खरलुक्की के परिवार से छिपे तौर पर इर्ष्या करते कि न हुआ कोई पूत उसके जैसा उनके परिवार में भाग्य बदल जाता। यह और बात है कि उस परिवार में दरअसल कोई ऐसा पूत होता, तब क्या गुजरती! इसे कौन सोचे !

अपने पूत को बचाने के लिए बूढ़ी खरलुकी कहती: उस पर देवी का आसन है। उसे बचा लो । जब-तब देवी का आसन उस पर बुलाओ। गाँव का वर्तमान - भविष्य जानो। अपना आगा-पीछा देखो आदर दो, वह जीवित देव की तरह कल्याण करेगा। लेकिन उसकी बात सुनने की फुरसत किसी को नहीं थी । उसके रुदन पर पहले जिनके दिल भर आते थे, वे भी रोज-रोज के इस प्रलाप से ऊबने लगे थे । शुरू होते ही तमाम गैर-जरूरी कामों में व्यस्त होकर उसे अनसुनी कर देते ।” 27

अंधविश्वास इतना प्रबल शक्ति होती है कि उसे एक बार में खत्म करना नामुमकिन है। जब एक अकेली महिला को इसके विरोध पूरे समाज के आगे भिड़ना पड़े तो और भी अधिक मुश्किल हो जाता है। किंतु खरलुक्की की माँ एक सहारानिय महिला हैं। जिसने इस बलि प्रथा को रोकने की मुहिम अकेले ने ही चलाई। बलि की स्थान पर उस देवी रूपी व्यक्ति की पूजा-अर्चना को देने को कहा। ऐसे व्यक्ति की बहुत अधिक महत्व और जरूरत है हमारे समाज में जहाँ अंधविश्वास सांसो में बसती हैं। और खरलुक्की की माँ मेघालय समाज के स्वच्छन्द वचारों वाली महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. मुक्ति, डॉ. महैन्द्रनाथ दुबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1999, पृ. 25
2. वहीं, पृ.25
3. वहीं, पृ.26
4. वहीं, पृ.26
5. वहीं, पृ.26
6. वहीं, पृ.26
7. जय आइ असम, नवारुण वर्मा, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983, पृ.124
8. वहीं, पृ.124-125
9. ब्रह्मपुत्र, देवेन्द्र सत्यार्थी, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1992, पृ. 116
10. वहीं, पृ.117
11. वहीं, पृ.117
12. वहीं, पृ.117
13. जय आइ असम, नवारुण वर्मा, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983, पृ.51
14. वहीं, पृ.51
15. वहीं, पृ.52
16. वहीं, पृ.52-53

17.वहीं, पृ.53-54

18.वहीं, पृ.54

19.उत्तर पर्व, लाल बहादुर वर्मा, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002,पृ.223

20.वहीं, पृ.241

21.वहीं, पृ.241

22.वहीं, पृ.242

23.वहीं, पृ.243

24.रक्तयात्रा, कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु' ,नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नयी दिल्ली,
इलाहाबाद,जयपुर प्रथम संस्करण:1978,पृ.263-264

25.वहीं, पृ.264

26.वहीं, पृ.265

27.रूपतिल्ली की कथा, श्रीप्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ.52

पंचम अध्याय

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न

- (क) पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ
- (ख) मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति
- (ग) मुक्ति की राहें

पंचम अध्याय

पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न

(क) पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ

पितृसत्तात्मक समाज पुरुषों की बनाई गई दुनियाँ है। जहाँ स्त्रियों को हर तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पुरुषों की इस संसार में स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई लड़ने पड़ती है। निरंतर संघर्ष और आपदाओं का सामना करते हुए वे जिस मुकाम पर पहुँच पाई हैं। उसकी समझ केवल वे ही जान पाएंगे जो इस संघर्ष में भाग ले पाई। कई तो बिना लड़े ही हथियार डाल देते हैं। पूर्वोत्तर के क्षेत्रों में स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक देखने को मिलती है। बहुतों को तो यह भी लगता है कि स्त्रियाँ सशक्त हैं। उन्हें किसी भी प्रकार के तकलीफों का सामना नहीं करना पड़ता है, पर संघर्ष में स्त्री यहाँ भी कुछ कम नहीं है। हाँ, इनके संघर्षों का रूप भारत के अन्य प्रांतों से भिन्न है। यहाँ चार दीवारों में रहना नहीं पड़ता है और न ही पर्दे के पीछे रहना पड़ता है। किंतु बाजार में हर औरतों का दिखाई देना भी उनके उत्पीड़न का एक कारण है। जब मर्द घर में कमा कर न लाए दिन-रात नशे में डूबा रहे, ऐसे में औरतों को घर की चार दीवारी लांघनी ही पड़ती है। लेकिन इसका मतलब यह कतई भी नहीं है कि वे सशक्त हैं। इन हालातों में उन्हें दोहरा अभिशाप का शिकार होना पड़ता है। एक तो उन्हें कमा के भी लाना पड़ता है। साथ ही घर भी संभालना पड़ता है और इतना कुछ करने के बावजूद भी उन्हें वह सम्मान नहीं मिल पाता है। जिसकी वे हकदार हैं।

पहले समाज मातृसत्तात्मक थी माताओं के हाथों में परिवार का भार था और सम्मान भी। किंतु यही चीज धीरे-धीरे पितृसत्तात्मक में परिवर्तन होने लगी और सामाजिक स्थिति उलट-पुलट कर रह गई। इस संदर्भ में एंगेल्स ने कहा है –“मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक का

अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी हार थी। सत्य तो यह है कि स्त्री के लिए ऐसा स्वर्ण युग वास्तव में एक मिथक के अलावा और कुछ नहीं। यह कहना कि औरत अन्य है, इस बात को सिद्ध करता है, स्त्री और पुरुष में कोई पारस्परिक संबंध नहीं था। वह चाहे धरती थी, चाहे माता, चाहे देवी, किंतु पुरुष की संगी-मित्र कभी नहीं थी। उनमें पारस्परिक साझेदारी का भाव नहीं था।”¹

पुरुषों ने बड़ी चालाकी से स्त्रियों का दर्जा दे दिया और स्वयं राज करने लगे। वास्तविकता तो यह है कि उन्हें केवल मूर्ख बनाया गया है।

स्त्रियों को तोड़ने और उनके साहस को समाप्त करने के लिए महिलाओं द्वारा चलाएं गए किसी भी कार्य का मज़ाक उड़ाया जाता है, हर तरह की स्थितियों और तकलीफों का मुख्य कारण उन्हें ही ठहराया जाता है, ताकि उनका मनोबल तोड़ा जा सके। स्त्रियों का विरुद्ध करना, उनका अपने हक के लिए लड़ाई लड़ना पुरुषों के नज़र में गलत और ऐसी में स्त्रियों को उसका स्त्रीत्व त्याग, प्रेम, सहन की मूर्ति बनाने की चेष्टा की जाती है। अगर वे इसमें सफल न हो पायें तो उनके चरित्र पर उंगली उठाना आरंभ कर देते हैं। आवाज़ उठेगी तभी तो शुरुआत होगी, लोगों को समझ आने की संभावना बढ़ेगी। किंतु यह सब हो और स्त्रियाँ सशक्त हो यह पितृसत्ता नहीं चाहते है। इसी कारण तमाम तरह के प्रलोभन देकर उनकी आवाज़ दबाने की चेष्टा की जाती है। किंतु गलत वाले कुछ समय बलवान हो सकते हैं परंतु जीत कभी नहीं पायेंगे। पुरुषवादी समाज में जहाँ स्त्रियों को कठपुतली की नाच नचाया जाता है। वहाँ कामी ' जहाँ बाँस फूलते हैं' कि नारी पात्र भी जो अपना इतना इरादा इतना मजबूत रखती है कि पुरुष पात्र ही उसके विचारों के आगे कमज़ोर लगने लगते हैं। वह मनुष्य जाति को किसी सीमा में बांधकर रखना नहीं चाहती है। जिस तरह पंछी हर सीमा में प्रवेश कर सकती

है। वे सीमाहीन है, कामी भी वैसे सीमाहीन रहना पसंद करती है। तमाम तरह के चुनौतियों के बीच भी वह कमज़ोर और बेड़ियों में रहने वाली स्त्रि नहीं थी। “माइकल हाथ जोड़कर आगे चलने को मुड़ा तो दौड़कर उसके पास आ गई। बोली, “ मैं थोड़ी दूर तक और चलूंगी।” “किंतु सीमा तो नदी का यह किनारा ही होता है।” “लेकिन नदी किसी की सीमा नहीं होती। वह सबकी होती है।”²

पुरुष पात्र माइकल जब स्वार्थी व्यक्ति नज़र आता है और कामी के प्रेम में डूबा हुआ प्रतीत होता है। ऐसे में भी कामी अपने मिज़ो समाज के कल्याण पर विचार कर रही होती है। पितृसत्तात्मक समाज में रहते हुए भी वह पुरुषों के विचारों और नेतृत्व का पालन नहीं करती है। बल्कि सही सूझ-बूझ के साथ कार्य को संपूर्ण करती है। लेखक उस परिवेश को बयान करते हुए लिखते हैं;

“नदी के उस पार के वृक्ष बड़े ऊँचे और छायादार थे। उपस्थिति से जलविहीन नदी भी ठंडी थी। उसके बीचोबीच पहुँचकर माइकल ने कामी का हाथ पकड़ लिया, “ मेरे साथ चली चलो।”

कामी ने बड़े दृढ़ स्वर में कहा, “ नहीं।”

“ क्यों ?”

“ तुमने बहुत देर से कहा।”

“ तो भी कुछ नहीं बिगड़ा है।”

कामी चुप रही। वह फिर बोला, “ चलो न !”

“ नहीं।”

“ क्यों ? ”

“ इस गाँव को और इस जंगल को मेरी जरूरत है। मिजोरम को हमेशा ऐसी ही नहीं रहने देना है, माइकल !”

दोनों की आँखें मिलीं तो दोनों ने तुरंत ही अपनी - अपनी आँखें फेर लीं। कोई नहीं चाहता था कि उसकी आँखों की आर्द्रता दूसरा देख ले।”³

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों का यह विचार ज्यादातर देखने को मिलता है कि अगर औरतों पर जोर अजमाया जायें तो उनसे बात निकलवाना बड़ा ही आसान होता है। और यही रूप ब्रह्मपुत्र उपन्यास में नज़र आता है। पुरुषों और स्वतंत्रता के हक की लड़ाई लड़ रहे, पुरुषों का पता पाने के लिए उनकी घर की स्त्रियों पर जोर आजमाया जाता है। उनका शारीरिक-शोषण किया जाता है। आरती उपन्यास की नारी पात्र के माध्यम से इस घटना को हम देख और समझ पाते हैं। पितृसत्तात्मक समाज में नारियों को एक कमज़ोर कड़ी समझी जाती है। पर किसी के सोच से इतिहास नहीं बनाई जाती है। लेखक लिखते हैं-

“आरती की कल्पना में जयमती के बलिदान का दृश्य फिर से घूम गया। फिर कैसे जयमती ने आरती का रूप धारण कर लिया। चूलिक फा के स्थान पर नारायण दारोगा आकर खड़ा हो गया। छत से एक लड़की उलटी लटकाई गई है; नीचे से उसके हंटर लगाए जा रहे हैं। नई जयमती से नए गदाधर सिंह का पता पूछा जा रहा है। हरामजादी ! सूअर की बच्ची ! बता वह तेरा देवकांत कहाँ है ?”⁴

आरती का भी जयमती जैसे ज्वालंत रूप देखने को मिलता है। जिसके आगे तमाम सत्ता और उनकी ताकत कमज़ोर नज़र आती हैं। लेखक आगे बताते हैं-

“वह अपनी ओर आती नौकाओं को गिनने लगी - एक, दो, तीन । फिर वह जैसे अपने बापू को सुनाकर कहने लगी, " ब्रह्मपुत्र बाबा पर तो हमेशा नौकाएँ चलती रहेंगी ।”

...सावधान, मछलियो ! हमारे जाल में आराम से चली आओ । ब्रह्मपुत्र पर मछली की छाप है और असम के इतिहास पर जयमती की । बड़ी जयमती , छोटी जयमती । नौकाएँ आ रही हैं - एक, दो, तीन। जाल में मछलियाँ फंस रही हैं- एक, दो, तीन । देवकांत जहाँ भी है , सुखी रहे - एक, दो, तीन। कलकत्ता में रहती है भारत माता - एक, दो, तीन । भारत माता बहुत दुबली हो गई है - एक, दो, तीन । मैं शायद दिसांगमुख के थाने में छत से उलटी लटकते - लटकते मर गई थी- एक, दो, तीन । मैं फिर से जीवित हो गई थी - एक, दो, तीन !...”⁵

अपने देशवासियों के लिए उसे जयमती बनना भी स्वीकार था, पर गलत और अत्याचारियों के आगे झुकना स्वीकार नहीं था। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को अपना पक्ष रखना हो तो विचारों की गंभीरता रहना जरूरी है। निखोनो अपने बेटे को समझाती है कि जिस अंग्रेज की जी हजूरी करके वह प्रसन्न हो रहा है। उसी अंग्रेज सरकार ने उसे बिन बाप का बनाया है। यह एक तरह का व्यंग्य कसा है निखोनो ने अपने बेटे पर जो स्वार्थ में अंधा होकर भटकाव की राह पकड़ ली है। निखोनो कहती है- “निखोनो के वृद्ध शरीर में उत्तेजना की लहर सी उठी । उसने तन कर बैठते हुए कहा, " सच कहूँगी तो तुझे बुरा लगेगा बेटे। पर जब तू सच बात जानना ही चाहता है तो सुन। जिस अंग्रेज सरकार से लाल चादर पाकर तू इतना खुश है उसी अंग्रेज सरकार ने तेरे बाप की हत्या की हैं। मैं यह कभी नहीं भूल सकती । भूल ही नहीं पाती ।”⁶

जब उसका बेटा इसे आम बात समझने लगता हैं। और अंग्रेजों के पक्ष में बातें करता हैं। तो यह बात उसे नागवार गुजरती हैं। और उसके नसों में आग दौड़ने लगती हैं। वे गुस्से में अपने बेटे से कहती हैं-

निखोनो सुलगती हुई आग सी दहक उठी। उसने वियाले पर घृणा बरसाते हुए कहा, " यह तू कह रहा है। सनीयू अंगामी का बेटा होकर ? हाँ , हमारे लोग: आपस में लड़ते रहे हैं। एक - दूसरे का सिर काटते रहे हैं। पर थे तो हम इन पहाड़ियों में पैदा हुए एक ही लोग। लड़ने को तो भाई - भाई भी लड़ते हैं। एक दूसरे के दुश्मन हो जाते हैं , पर वह लड़ाई भाइयों की होती है। उनका आपसी मामला होता है। मगर ये अंग्रेज , इन्हें क्या लेना था हमसे ? ये न तो हमारे अड़ोसी न पड़ोसी । इनके हमारे बीच में जाने कितनी पहाड़ियों का फासला था। हम तो कभी इनके देश में लूटपाट करने भी नहीं गए। फिर वे काले कोसों दूर से हमारे गाँवों में क्यों घुस आए ? हमारी पहाड़ियों के राजा क्यों बन बैठे ? बता क्यों?"⁷

निखोनो के मन में जो आक्रोश था वह साफ़ तौर पर विस्फोटिक होती है। ऐसी महिलाएँ पुरुषसत्ता से बहुत अधिक सशक्त प्रतीत होती है। क्योंकि ये शक्तियों के आगे सिर नहीं झुकाती है। बल्कि न्याय के लिए सर काँटने की हिम्मत रखती है। "वियाले, मुझे वे दिन याद है जब हम खुद अपने राजा थे। जब पादरो इस गाँव से आकर यह कहने की हिम्मत नहीं रखता था कि हमारे पुरखों का धरम , उनके रीति - रिवाज गलत हैं। कोई हमारे गाँव के पवित्र पत्थर के बारे में बुरा , सोच तक नहीं सकता था। अब हमारे ही अंगामी उन पत्थरों पर हँसते हैं। उन पर थूकते हैं , उनके पास पेशाब तक कर डालते हैं। वे ईसाई क्या हुए उन्हें गोश्त तक नहीं चढ़ाते । हमारा हर रिवाज बुरा हो गया । हम अपने पुरखों पर हँसते है। वियाले, तू क्या जाने

कि कैसे थे वो लोग । तुझे तो अपने दादा की याद तक नहीं होगी । मुझसे पूछ कैसी धाक थी तेरे दादा की । कितने सिर काटे थे उन्होंने । कैसे बहादुर थे वे। वे जीते होते तो अंग्रेजों की क्या मजाल थी जो हमारे गाँव की तरफ नज़र भी उठा पाते । तब हमारे डर से मैदानों के लोग थरथर काँपते थे। मनीपुर वालों की हिम्मत नहीं होती थी कि इधर झाँके भी । पर अंग्रेजों के बुते पर वे भी अंगामियों के गाँवों पर हमला करने लगे । जाने हमारे कितने लोग मारे उन्होंने । जाने हमारे कितने गाँव जलाए उन्होंने । मैं यह सब कैसे भूल सकती हूँ भला । मैंने यह सब कुछ अपनी आँखों से देखा है। तेरा बाप भी कभी अंग्रेजों के आगे झुका नहीं । वह भी अपने बाप की तरह ही था। निडर गौर बहादुर । वह अपने गाँव में राजा था। हर कोई उसकी बात मानता था। हर कोई उसका कहा सुनता था। हर कोई उसके इशारे पर जान देने को तैयार रहता था। वह खुद गाँव के हर आदमी के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता था। वह आज के अंगामियों जैसा नहीं था। उसे अपने गाँव से प्यार था। अपने पुरखों पर गर्व था। उनके बनाए रीति - रिवाजों पर मान था। वह सच्चा अंगामी था। नहीं रे वियाले, तू यह सब नहीं समझेगा। तू दूसरे जमाने का है। तूने अंग्रेजी पढ़ ली है। तू ईसाई हो गया है। तू अंगामी होने का मतलब नहीं जानता।”⁸

स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि निखोनो एक महिला होने के कारण बहुत सी चुनौतियों का सामना करती हैं। पर अपनी समाज और धर्म को छोड़ना नहीं चाहती है। जिसके लिए उनके समाज के लोगों ने इतनी कुर्बानियाँ दी थी । रक्तयात्रा में नारी पात्र बहुत अधिक सशक्त नज़र आई है। जो पुरुषों को सदैव दिशा निर्देश देती हुई भी नज़र आती हैं।

मातृसत्तात्मक समाज में भी पितृसत्ता की चाले साफ तौर पर देखी जा सकती है। गोली चलाने वाला पुरुष होता है परंतु महिलाओं के कंधों पर रखकर। ताकि अगर कुछ भी गलत हो उसकी पूरी जिम्मेदारी स्त्रियों पर दे दिया जाये, और स्वयं सुरक्षित रह पाएं । 'रूपतिल्ली की

कथा' जो कि मेघालय की उपन्यास है। वहाँ के समाज पर केंद्रित करके यह उपन्यास लिखा गया है। मेघालय एक मातृवंशीय क्षेत्र है पर वहाँ भी उन्हें मिले हक एक दिखावा से अधिक और कुछ नहीं लगता है। जयंती और राली के संवाद से लेखक ने इस बात को बताने की चेष्टा की है। वे लिखते हैं-

“जयंती स्त्री थी। शिकार खेलने नहीं जा सकती थी। तो क्या, शिकार देखने तो जा सकती थी। यह भी खासी स्त्री के लिए एक नयी बात होती। वे शिकार देखने भी नहीं जाती। तब राली ने कहा, " यह शिकार अन्य शिकारों से भिन्न है। खासिया लोग शिकार करने जाते हैं , भोजन के लिए। हम शिकार करते हैं खेल के लिए। हमारे यहाँ शिकार को ' स्पोर्ट' भी कहा जाता है। और हर खासिया स्त्री का हक होता है खेल देखना। तो तुम खेल देखने क्यों नहीं जा सकती ? ”

जयंती ने कहा, “ ऐसी मनमानी व्याख्या नहीं की जा सकती और ऐसी व्याख्या करने वाली में कौन होती हूँ ? ”

राली ने कहा, “ तब व्याख्या कौन करेगा ? वास्तविक राजा तुम हो। सियेम तुम्हारी जगह काम करता है। राजा का एक काम कानून बनाना होता है। उसकी बात बीच ही में काटकर जयंती ने कहा, " नहीं , राजा का काम आइन चलाना होता है, बनाना नहीं। आइन हमें परम्परा से मिलता है।”

“ आइन चलाने के लिए उसकी व्याख्या की जरूरत होती है , और वह काम राजा करता हैं।

“ नहीं, व्याख्या नहीं, विशिष्ट परिस्थिति में उसे लागू करना होता है। यह लागू करना' एप्लिकेशन' कानून बनाना नहीं होता।”

“ एक ही बात है। एप्लिकेशन भी कानून के दायरे में होता है और व्याख्या भी ।”

“ तो भी मैं उसे नहीं कर सकती ।”⁹

स्त्रियों को राजा का दर्जा एक और अवश्य दिया, परंतु राजा की तरह कार्य करने और निर्णय का अधिकार उन्हें नहीं था। उन्हें पुरुषों के लिए फैसलों पर अमल करना था। राजसिंहासन स्त्रियों के नाम है, पर शक्तियाँ पुरुषों के अधीन यह नई तरह की चाले थी स्त्रियों को मूर्ख बनाए रखने के लिए ।

युवतियाँ या फिर स्त्री जाति उनके देह के कारण ही उत्पीड़न का शिकार हो जाती है। ईश्वरीय द्वारा रचा गया यह देह संसारिक पुरुषसत्ता के कारण अभिशाप बनने में देर नहीं लगती है। खासियों की कथा 'रूपतिल्ली की कथा' में खासी लड़कियों को अंग्रेजों के दुष्कर्मों का शिकार होना पड़ता है। कई जन मिलकर कई दिनों तक युवतियों के साथ बलात्कार करते हैं। जहाँ यह जंग चल रही थी खासियों और अंग्रेजों के बीच। परंतु यह स्त्रियों के लिए मानसिक, देहिक उत्पीड़न के साथ-साथ उनके अस्मिता को भी कुचलने की कथा था। लेखक लिखते हैं-

"गाँवों में जो युवा मिलते उनकी पिटाई करता , जिनके घरों में हथियार मिलते उन्हें नष्ट कर देता । बूढ़ियों और बूढ़ों को जानवरों की तरह हांक युवतियों को पकड़ लेता । जहाँ रुकता दो - चार दिन तक उन्हें साथ रखता।वे जवानों का मनोरंजन करतीं , फिर छोड़ देता ।”¹⁰

परिवार को तोड़ने और उनकी शक्तियों को छिन्न-भिन्न करने की सोच रखते हैं। ताकि इस डर के आगे वे कभी भी साहस न जुटा पायें। इन सबके बीच स्त्रियाँ पीसती रहती है। अपना मनोरंजन कर लेते हैं, साथ ही अपने को शक्तिशाली और बुद्धिमान समझते हैं। यह मानवता को शर्मसार करने वाली घटना हैं। औरतों को जिंदा लाश बनाकर रख देते हैं। औरतों का शोषण भी होता है। साथ ही परिवार में अब वह सम्मान नहीं रह जाती है। क्योंकि वह दूसरे का खाया खाना बन जाती है – “लेकिन औरतों पर अत्याचार ?” “ जरूरी है। यह कौम का

मान मर्दन करना है। इसके भय से वे आगे कभी सिर नहीं उठायेंगे। यह मर्दन ऐसा किया जाना चाहिए कि उसका ख्याल आते ही वे ही नहीं, देश के तमाम दूसरे लोग जीभ काट कर तय कर लें कि अपनी हरकतों से कभी भी फौज को कार्यवाही करने का मौका नहीं देना चाहिए।' 'पनिशमेंट' से बढ़कर 'डेटेरेंस' का असर अधिक होता है, एक विजित प्रदेश में।"¹¹

यह महिलाओं को कुचलने का कैसा तरीका है। कभी विरोध की शक्ति उत्पन्न न हो इसलिए अत्याधिक तौर पर रौंदा जाता है।

पितृसत्तात्मक समाज में लड़कियों पर निरंकुश लगाने के कई तरीके होते हैं। 'आहुति' मणिपुरी पर लिखी गई इस उपन्यास में बताया गया है कि मणिपुरी लड़कियों पर रोक लगाई जाती है, बाहरी लड़के से प्रेम संबंध जोड़ने से। अपने समाज में ही उनका विवाह हो ऐसी उनके विचार है। समाज के लड़के में जितनी भी बुराइयाँ क्यों न हो। उसके पहले से भी पत्नी बच्चे हो तो भी इससे आपत्ति नहीं जताई जाती है। किंतु बाहरी लड़के से नज़दीकियाँ बर्दाश्त नहीं की जाती हैं। फिर चाहे वह लड़का कितना ही गुणी क्यों न हो। लेखक पात्रों के माध्यम से इसे स्पष्टीकरण देते हैं। "शर्मा ने कहा, " यहाँ के नवयुवकों को यह पसंद नहीं कि मणिपुर की लड़कियाँ बाहर वालों के साथ दोस्ती कर, हिले - मिले या मिले-जुले। इसके प्रति तीव्र प्रतिक्रिया होती है।"

मनोज को चानु से अपनी अन्तरंगता याद आ रही थी। चानु का उससे मिलने में बरती सतर्कता भी उसे स्मरण हो आया। वह प्रायः मिलने - जुलने से बचना चाहती है। शर्मा से इस पर उसकी विस्तार से बातचीत हुई। अनेक उदाहरण हैं, जब किसी लड़की ने बाहर के किसी

लड़के के साथ अधिक घनिष्टता बनाई , पूरे समाज में विशेषकर नवयुवकों में इसका विरोध होता है।”¹²

वे आगे बताते हैं कि,

“ पर यहाँ तो दूसरी बात है , इस समाज में पर्दा प्रथा नहीं है , लड़के - लड़कियों का आपस में मिलना वर्जित नहीं है। लड़के-लड़की साथ में नाचते - गाते हैं ।

लड़के और लड़की अपनी पसंद से अपना जीवन साथी चुन सकते हैं। फिर इस तरह का विरोध , वह भी लड़की का अपना भाई भतीजा या रिश्तेदार होना कोई जरूरी नहीं । जिसका लड़की से कोई जान - पहचान नहीं , कोई रिश्ता नहीं, परिवार से कोई संबंध नहीं, वह भी किसी स्थानीय लड़की को किसी बाहर के लड़के के साथ देखकर उत्तेजित ही नहीं होता, सक्रिय रूप से इसके विरोध में खड़ा होकर दंगा-फंसाद, मार - पीट करता है। जरूरी नहीं कि लड़की उसके मोहल्ले की हो, उसके गाँव या कस्बे की हो, कहीं की स्थानीय लड़की का बाहर के लड़के के साथ मिलना - जुलन, घनिष्ट होना, मित्रता करना स्थानीय युवकों में रोष उत्पन्न करता है। वे ऐसे व्यक्ति को दंडित करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं ।”¹³

अपने समाज के स्त्रियों को उनके हिसाब से चलाएं रखने के लिए वे भयानक- से-भयानक रूप धारण करने से भी नहीं कतराते हैं। परंतु स्त्रियों को बाहरी लोग (समाज) में शामिल होने की इजाजत उन्हें नहीं है।

पूर्वोत्तर की अन्य प्रांतों की तरह मणिपुर समाज में भी औरतें पर्दे में नहीं रहती है। खेत-खलियान, बाज़ार हर जगह महिलाएँ ही काम करती नज़र आती है। पर इतनी भागीदारी के बावजूद भी महिलाएँ पुरुषों के अधीन ही रहती है। चाहे वे शिक्षित हो या अशिक्षित। यह

उनकी विडंबना है। भागीदारी तो है परंतु सशक्त नहीं है। स्त्री ऐसा ही जीवन जीने को मजबूर है। हर तरह की मेहनत करती है। कभी-कभी उनके लिए यह बोझ भी बन जाती है। रहस्यों की दुनिया में कैद नज़र आती है, “एक विडम्बना यह थी कि मणिपुर में-करीब - करीब सारे पूर्वोत्तर भारत की तरह, घर से खेत - बाज़ार तक हर कहीं महिलाओं की उपस्थिति दृष्टि को बांधती थी। सब कुछ उन्हीं के कंधों पर टिका दिखता है। पर्दा तो खैर वहां अज्ञात - सा था। मुस्लिम औरतें सिर ढांकती हैं पर बुर्का वह भी नहीं पहनतीं। मणिपुरी औरतों के संघर्ष नूपी लान का लम्बा सिलसिला है पर दूसरी ओर हर कहीं वे हैं मातहत ही। फिर शिक्षित हो या अशिक्षित, राय का सवाल ही कहाँ उठता था, पिता या पति के सामने।”¹⁴

लड़कियाँ अपने देश और समाज से बहुत प्रेम करती हैं। और यह भाव 'देश भीतर देश' में देखने को मिलती हैं। जहाँ वे असम को आज़ाद करने के लिए लड़ रहे थे। असम में यह संगठन 'अल्फा' के नाम से जानी जाती है और लड़कियाँ ऐसे लड़को पर ही मर मिटती हैं। लड़कियाँ असल में भटकाव की स्थिति में रहती है। लड़कों को जहाँ यह चाल रहती है कि 'अल्फा' में घुसकर किसी लड़की को फँसा ले, और लड़कियाँ ऐसे लड़कों को देश को सच्चे सिपाही समझ कर उनके चालों में फँस कर प्रेम करने लगती है लेखक बताते हैं-

“वापसी में गाँव की युवा और सुन्दर लड़कियाँ तिलक और माला पहना कर अंडरग्राउंड कैडर को विदा करती थीं। उन्हीं में से कोई सुन्दर लड़की उसके साथ शादी का प्रस्ताव कर देती थी। उसके बाद उसकी डेटिंग शुरू हो जाती थी उसके साथ। फिर शादी। शादी के बाद लड़की गाँव में ही रहती या फिर उल्फा की महिला बटालियन का हिस्सा बन जाती। यह सब देख कर गाँव के युवाओं में अलग प्रतिक्रिया होती। वे सोचते कि उल्फा में शामिल लोगों पर ये लड़कियाँ कैसे मर मिटती हैं। हमारी तरफ तो ये नज़रें तक उठा कर नहीं देखती हैं। लड़कियों से दोस्ती और

प्यार पाने के लिए तमाम ऐसे युवा भी उल्फा में शामिल हो गये, जिन्हें यह तक पता नहीं था कि वे किस अन्धी गली में जाने की तैयारी कर रहे हैं। लेकिन उल्फा को ज्यादा-से-ज्यादा युवा कैडर चाहिए थे, तो उसके कमांडर भी ये सोचे बिना कि लड़कियों से दोस्ती के चक्कर में आने वाले युवा संगठन और आजाद असम के लिए कुछ कर पाएँगे कि नहीं, उन्हें शामिल कर लेते थे। कठिन ट्रेनिंग और भूमिगत जीवन से कई युवा डर कर वापस गाँव में भी भाग आते थे। और कितने न चाहते हुए भी वापस नहीं हो पाते थे।”¹⁵

मिल्की 'देश भीतर देश' की स्त्री पात्र विनय के प्रेम में पड़ जाती है। विनय असम का नहीं था। वह काम के सिलसिले में गुवाहाटी आया था और उसके पश्चात वापस चला गया। वह तो वापस चला गया था। किंतु अपने साथ मिल्की की आत्मा भी ले गया था। स्त्रियों के लिए अपने प्रेमिका को भूल पाना आसान नहीं होता है। मिल्की अंतर्मुखी हो गई थी, और क्षणिक जीवन जी रही थी। जिसमें जिंदा रहने जैसा कुछ नहीं बचा था।

“मिल्की अन्तर्मुखी होती जा रही थी। वह अपने मौन से बतियाती थी। मिल्की का दृढ़ विश्वास था कि विनय एक दिन जरूर लौटेगा। लेकिन विनय की कुंडली में गुवाहाटी में शायद बसना लिखा नहीं था। बाहर से बेशक उसकी विनय के प्रति बेरुखी दिखाई देती हो, लेकिन उसके भीतर का हरापन उसके लिए आज भी तरसता था। विनय से पिछली चार मुलाकातों में वह भले ही उसके सामने उससे कोई बात नहीं करती, पर दिल्ली को परदेश मानने वाली मिल्की ने अपने विनय को देसी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। हर बार विनय के जाने के बाद वह छिप - छिप कर घंटों रोती थी। विनय को उसने बेइन्तहा प्यार किया था। उसकी आत्मा का पोर - पोर विनय के साथ गुजारे पलों के अहसास से भरा था।”¹⁶

“लेखक मिल्ली कि दुर्दशा का बयान करते हुए लिखते हैं-

“मिल्ली अब भी ऑफिस से छुट्टी लेती कई बार। वह हर उस जगह जाती , जहाँ विनय के साथ उसका जाना होता था। कामाख्या के जंगल उसकी प्रिय जगह थे और उसके अकेलेपन के सबसे बड़े साथी । वह घंटों उस जगह बैठी रहती , जहाँ विनय ने उसके साथ समय गुजारा था। पेड़ और पहाड़ के हर हिस्से से वह बतियाती । मिल्ली का विश्वास बार - बार यथार्थ से टकराता और हर बार उसके विश्वास की हार होती और यथार्थ जीतता। विनय के वापस न आने का यथार्थ ।”¹⁷

स्त्रियों का जीवन चुनौतियों से परिपूर्ण है। एक बार किसी के साथ नाम जुड़ जाए तो सामाजिक और मानसिक रूप से सदैव वह उसी में फँसी रहती है। क्योंकि लोग उसे कभी भूलने नहीं देते हैं। और वह कभी भूला भी नहीं पाती है। जब देश की आज़ादी के लिए प्रेमी लड़ते हैं। तो वह जंग एक प्रकार से उसकी प्रेमिका की भी होती है। वह भीतरी तौर पर परिस्थितियों से जूझती है। विनय और बुलबुल के आपसी संवाद से यह स्पष्ट होती है-

“उसकी प्रेमिका पर क्या गुजर रही होगी ? ”-विनय ने सवाल किया । 'बन्दूक उठा लेगी या फिर सिर पटक - पटक कर मर जाएगी।”¹⁸

स्त्रियों को बहला-फुसलाकर वेश्यावृत्ति के धंधे में झोंक दिया जाता है। समाज के ठेकेदार बड़े ही बेरहम है। बिना कारण किसी की मदद नहीं करते हैं। उनका अपना कोई-न- कोई स्वार्थ अवश्य रहता है। पितृसत्तात्मक समाज में अकेली असहाय स्त्रियों को कोई अगर बिना किसी कारण मदद करने की कोशिश करें । तो एक बार करना बहुत जरूरी है। आपकी मासूमियत को कब बाज़ार में बेच दे यह पता तक नहीं चलेगा । 'मुक्ति' उपन्यास में सिलचर की एक घटना बताई गई है। जहाँ कुछ मुसलमान लड़के मुसीबत में फँसे कुछ लड़कियों को मदद के नाम पर

उन्हें देह व्यापार में झोंकने की तैयारी की जा रही थी। पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की ऐसे षड्यंत्र से सदैव बचना चाहिए। लेखक बताते हैं-

“ हिंदू - मुस्लिम दंगे में घर - बार छोड़कर, भागने में हम अपने पारिवारिक सदस्यों से बिछड़ गई थीं, परंतु जैसे - तैसे भाग कर करीमगंज पहुँची थीं। वहाँ सिलहट का ही एक हिंदू होटल व्यापारी मिल गया, जिसका पहले से ही एक होटल करीमगंज में भी था। उसका सिलहट वाला होटल हमारे स्कूल के पास ही था, अतः आते - जाते उसने हमें पहले भी देखा था और हम सब भी उसे पहचानते थे। हमें रेलवे प्लेटफार्म पर ऐसी अनाथ दशा में देखकर उसने हमें अपने होटल में शरण दी और बतलाया कि वह हमारे परिवार के लोगों को जानता है। वे लोग सिलचर में शरण लिये हुए हैं, अतः वह दूसरे ही दिन हमें वहाँ पहुँचवा देगा। उसने हमें खिलाया- पिलाया और हर एक के सोने के लिए अलग - अलग कमरे भी दे दिए। हारी थकी होने से हम झटपट सो भी गई। मगर वह जो उधर बैठी है न चारुलता। इसका जितना ही सुंदर नाम है, उतना ही दुष्ट स्वभाव है। इसे नींद ही नहीं आ रही थी। सो कमरे का दरवाजा लुढ़काकर चूल्हे की आग तापने के लिए रसोईघर में चली गई। अब देखने में छुई - मुई सी ऐसी गुड़िया तो है ही कि देखते ही किसी को भी दया आ जाए। सो होटल का भोजपुरी रसोइया बता बैठा- “ बहन जी ! आप लोग इस नरक में खुद ही चलकर क्यों आ गई ? अरे यह होटल का मालिक ससुरा आपके परिवारवालों का पता लगाने नहीं गया है, बल्कि सौदा पटाने गया है।” इसने पूछा- “सौदा पटाने- क्या मतलब। हम क्या बिकाऊ माल हैं ? और इतनी रात गए भी क्या कोई सौदा पटाया जाता है ? ”¹⁹

उन लड़कियों की ऐसी दशा देखकर होटल का रसोइया दुखी हो जाता है। और उन्हें सच्चाई बता देता है। उन्हें उनका भ्रम से बाहर निकालता है। लेखक आगे लिखते हैं-

“बच्ची हो बेटी” - रसोइया बोला- “ यह सब सौदा रात को ही पटता है। यहाँ की लड़कियों को पाकिस्तान चालान करने वालों का दल आता ही होगा। सौदा पटाने के पहले ... राम - राम क्या बतलाऊँ। जैसे कि मैं खाना पकाता हूँ ना। तो मांस - मछली-चावल - दाल यहाँ तक कि चाय भी चीख - चीख कर उसकी अच्छाई - बुराई बताने वाले यहाँ दूसरे-दूसरे बड़े ऐक्सपर्ट कर्मचारी हैं। उसी तरह आज रात ... यानी कि आप लोगों को जो एक - एक कोठरियाँ अलग - अलग दी गई हैं उनमें ... सबके हाथ में चाकू होगा फिर आप लोग करेंगी क्या ? फिर कल सबेरे सबका अलग- अलग दाम तय होगा। हे भगवान् ! तूने मुझे काहे इतना गरीब बनाया कि इस होटल में नौकरी करनी पड़ी। "कहकर वह स्वयं सिसकने लगा।”²⁰

ऐसे षड्यंत्र से स्त्रियों को अपनी रक्षा करनी चाहिए। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की अस्मत् लूटने के कई तरीके हैं।

स्त्रियों को गाय बकरियों की तरह समझना आम सी बात हो गई है। लेखक बताते हैं-

“देखो बहन। मैंने तुम्हें तभी बताया था कि हम किसी भी हिंदू परिवार द्वारा छोड़े गए किसी घर में रहने, उनके द्वारा छोड़े गए खेतों को जोतने, उनके बागीचों के फल खाने या उनको किसी भी प्रकार की संपत्ति पर दखल नहीं करना चाहते। इसी से उतना पढ़ा - लिखा होकर भी हम कई वर्षों तक निहायत गरीबी में जीते रहे। जबकि आवारा गुंडे हिंदुओं द्वारा छोड़ी गई संपत्तियों पर कब्जा कर अत्यंत संपन्न हो गए। कितनों ने तो हिंदुओं की कमसिन उम्र की लड़कियों को जबरदस्ती पकड़ - पकड़ कर निकाह कर लिया और अपनी अधिक उम्र की मुस्लिम औरतों को, जिन्होंने दो - दो, चार - चार बच्चे जने थे, उन तक को घर से बाहर

खदेड़ दिया , जिनमें से कितनी तो नदी, रद (तालाब में डूब मरी , कितनी भिखमंगिनें बन गई और कितनी तो वेश्याएँ भी बन गई हैं और कुछ नर-पिशाच ऐसे भी हैं कि ऐसी वेश्या बनी अपनी उन पुरानी औरतों के पास अब भी जाते हैं और मुफ्त में मस्ती लूट आते हैं। इस विभाजन ने हिंदुस्तान में क्या किया? मुझे तो नहीं मालूम । मगर हमारे इस पूर्वी पाकिस्तान की बहू बेटियों को जितना अधिक कष्ट इसने दिया कि मैं तो , कभी - कभी सोचता हूँ कि इससे तो अच्छा होता कि हम कभी स्वतंत्र नहीं हुए होते।”²¹

स्वतंत्रता का मूल्य जब खत्म हो जाती है। जब आज़ादी के बाद भी औरतों को वेश्या और गुलामों की तरह जीना पड़े। यह पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की चुनौतियाँ कभी समाप्त नहीं होती है। क्योंकि यह पुरुषसत्ता इनका शोषण करने में मज़ा लेते हैं ।

यायि 18 वर्षीय लड़की जिसकी पढ़ाई बस इसी कारण छुड़वा दी थी क्योंकि उनके भाई को यह अंध विश्वास था कि पढ़ाई करने से लड़कियाँ बिगड़ जाती है। दरअसल यहाँ बात बिगड़ने की या सुधरने की नहीं है बल्कि पढ़ाई लड़कियों के स्वतंत्रता का मात्र है। वे अपनी इच्छा अनुसार अपने जीवन के दिशा या काम चुन पाती है। उनके जीवन में मुक्ति पाने का एक माध्यम हैं।

"आपकी आपत्ति का कारण यही है तो मैं वचन देता हूँ। अब तो यायि काफी सयानी हो चुकी है। आपकी सलाह के मुताबिक मैंने उसकी पढ़ाई छुड़वा दी है।”²²

(ख) मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति:

पितृसत्तात्मक समाज की तरह ही मातृवंशीय समाज में भी पुरुषों ने अपने को किसी न किसी में शक्तिशाली और औरतों को दबाये रखने की कोशिश की गई है। श्रीप्रकाश मिश्र जी

की उपन्यास 'रूपतिल्ली की कथा' के माध्यम से खासी समाज की ऐसी बात भी उजागर की है। जहाँ स्त्रियों को दबाये रखने के लिए नए-नए प्रथाओं और मान्यताओं को पनाह देना। क्योंकि नियम बनाने का अधिकार पुरुषों ने ले रखा है। लेखक एक प्रसंग के बारे में बताते हैं जहाँ राजा की बेटी की मांग एक मामूली से कैदी द्वारा किया जाता है। और उसके बाद की विचार सामने आती है।

“राजा की बेटी के साथ इस तरह के व्यवहार की माँग कभी किसी ने नहीं किया था। यहाँ तक कि श्रीहट्ट के जालिम राजा ने चूने और लोहे की खानों को माँगा था , उसके लिए लड़ा था, पर बेटी कभी नहीं माँगी। लोग सोचते थे कि कारण शायद यह रहा होगा कि बेटी जाने पर उसका राजघराना मातृसत्तात्मक हो जायेगा - उसके खसिया होने के कारण यह हस्त्र स्वाभाविक था और कोई ड ' खार यह कत्तई बरदाश्त न करता कि संपत्ति स्त्रियों के हाथ में जाय। जिमूतवाहन ने मिताक्षरा की जगह जो दायभाग की परंपरा चलायी थी, जिसके कारण स्त्रियों को अपने पति के धन से कुछ भाग पाने की आशा बनती थी, तो सती प्रथा चला दी गयी थी , न केवल उच्च धार्मिक मान्यता और प्रशंसा - उपलब्धि के रूप में, एक सामाजिक प्रथा के रूप में जिसमें चीखती स्त्री को जबरजस्ती मृत पति की चिता पर चढ़ाकर उसके शव के साथ बाँध दिया जाता था तथा उसकी आर्तनाद को ढोल - मजीरे घंटी - घड़ियाल एवम् वैदिक मंत्रों के स्वर में दबा दिया जाता था।”²³

पूर्वोत्तर में कई ऐसी बातें हमें मालूम है कि ऐसी भी प्रथा यहाँ चलती है। उनमें से एक है सती प्रथा। मातृवंशीय समाज में स्त्रियां पूरे शासन की मालकिन न हो जायें। इसके लिए यह चाल चलाई गई की औरतों को उनके पति के मृत्यु के पश्चात उन्हें भी उनके साथ जला दिया जाये।

भारत के अन्य प्रदेशों की तरह ही पूर्वोत्तर भारत भी औरतों के साथ बदसलूकी करने से पीछे नहीं है।

भोग खावरा यानी की काली के लिए बलि-जीव कोपिली के लिए बलि जीव मुगा खावरा से भिन्न अर्थ देने के लिए यह शब्द प्रचलन में आया। भोग खावरा की इच्छा पूरी करना एक प्रकार से शुभ समझा जाता है। और लड़की की इच्छा का तो कोई महत्व होता ही नहीं। वह तो पैदा ही हुई पुरुषों द्वारा मूर्ख बनाये जाने के लिए। समाज में अगर ऐसे पुरुष भी है जो इन बुराईयों को विरोध करते हैं, तो ऐसे विरोधों का एक ही बार में धर्म को आड़े रखकर समाप्त करनी की क्षमता रखने वालों की भी कोई कमी नहीं है ले देकर बात जहाँ से शुरू हुई थी वहीं पर आकर खत्म भी हो जाती है।

“मिन्त्री गण थोड़ा कसमसा उठे कि राजा को यह पूछने की क्या आवश्यकता थी। यह परंपरा इसीलिए तो जाने कब से बंद कर दी गयी थी। जैसे दूसरे खावरा को रखा गया था, वैसे ही इसे भी रखा जाता। लेकिन तांत्रिक कान्द्रा योगी ने इसे शुभ लक्षण माना। शासन दिया कि खाउरा की इच्छा देवी की बेहतर अनुकंपा के लिए पूरी की जाय।

कोई रास्ता नहीं था। राजा को अपनी बेटी मुहैया करानी ही थी।”²⁴

जहाँ सुंदरता स्त्रियों के लिए सबसे बड़ा वरदान माना जाता है। और स्त्रियाँ अपनी सुंदरता पर गुमान भी बहुत करती है। किंतु कभी-कभी यही सुंदरता उनके लिए बदसूरती और वरदान अभिशाप बनते देर नहीं लगती है। मुरझाये यह कुछ दिन खिल कर बीत चुके फूलों से अधिक खतरा नवजात कलियों को रहता है। हर कोई उससे आकर्षित होने लगता है। और आकर्षण उस कली के लिए शाप बन जाती है। क्योंकि लोग उसे तोड़ लेते हैं। लड़कियों को इसी चीज़ का शिकार होकर गुजरना पड़ता है। अल्खा आवरी जैसी कुमारियों को भी इस चीज़ का सामना करना पड़ा। जो अपनी सुंदरता पर वैसे भी स्वयं ही मोहित है।

भारत के इकलौते मातृसत्तात्मक समाज पर एक रिपोर्ट में उस से जुड़ी बहुत सी बातों के बारे में जानने को मिला है। हालांकि यह मातृवंशीया समाज अवश्य है फिर भी संपत्ति उनके हक में नहीं रहता है। जिसके लिए मातृसत्तात्मक समाज की महिलाएँ अपनी हक की लड़ाई लड़ रही हैं।

“भारत के इकलौते मातृसत्तात्मक समाज में वह ऐसे बदलाव पर काम कर रहे हैं जिसका उद्देश्य वहाँ मौजूद पारिवारिक ढांचे को बदलना है हालांकि वह ढांचा खुद ही आकांक्षाओं के चलते तेज़ी से बदलते समाज में अस्तित्व बचाने का संघर्ष कर रहा है।”²⁵

संपत्ति की समस्याओं को लेकर बहुत सी जानकारी इस रिपोर्ट में साफ हुआ है। माताओं को बस चौकीदार की नौकरी मिली है, बैंक में, परंतु वह रुपया है किसी ओर का। इस तरह के कई राज एवं भेद खुलकर लोगों के सामने आई है। रिपोर्ट बताता है, “ सेयम बताते हैं, ” हम लोगों का समाज मातृसत्तात्मक, मातृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक है 1970-1971 में सीटीमोन सावेन नामक खासी जनजाति की महिला ने गुवाहाटी हाईकोर्ट में एक मुकदमा दर्ज कराया था।”

सावेन अपनी संपत्ति को अपनी इच्छा मुताबिक बेचना चाहती थी और उन्होंने इसके लिए अदालत से अनुमति मांगी थी।

सेयम के मुताबिक, “ उस वक्त से हम लोग अदालत के फैसले को मानते हैं जिसमें कहा गया था कि परिवार की सबसे छोटी बेटी परिवार की उत्तराधिकारी भी है ना कि केवल संरक्षक। इस फैसले के मुताबिक उसे संपत्ति की बिक्री के लिए परम परंपरागत प्रथा के मुताबिक अपने मामा या परिवार के दूसरे सदस्यों से अनुमति की जरूरत भी नहीं रही।” हाईकोर्ट के उस

फैसले को किसी ने चुनौती नहीं दी, लेकिन यह फैसला एक तरह से मातृसत्तात्मक समाज में बदलाव की कोशिश की शुरुआत थी।”²⁶

ऐसा करना बहुत जरूरी था, क्योंकि यह वर्षों से पुरुषसत्ता द्वारा मूर्ख बनाये जा रहे पद्धति के विरुद्ध मुहिम थी। यह कदम बहुत पहले ही उठा लेना चाहिए था। फिर देर आये दुरुस्त आये। कम-से-कम उसे खेल से बाहर करने की कोशिश की गई। जहाँ स्त्रियों को मोहरे की तरह इस्तेमाल किए जा रहा था। पर कोई और है, और सदैव अपने सुरक्षित रखने की चेष्टा में लगा रहता है।

खासी समाज में बलि देने की प्रथा थी, क्योंकि यह मातृवंशीय समाज है। इसलिए समाज में संकट आयेगी उसे दूर करने का कर्तव्य उसी के कंधों में रहती हैं। इसी आधार पर बलि भी स्त्रियों की ही चढ़ाई जाती है। किंतु एक राजा के कारण यह प्रथा बदल गई और स्त्री की जगह पर पुरुषों की बलि प्रथा आरंभ हो गई थी। वह बलि प्रथा कुछ इस प्रकार थी।

“लेकिन एक कथा और है। वह यह कि किसी जमाने में क्वारी कन्या ही चढ़ाई जाती थी कोपिली को। एक बार ऐसे ही किसी मौके पर कोई पुरुषा प्रार राजा आ गया और बलि युवती के सौंदर्य पर मुग्ध होकर बलि रोकने को कहा। कौन मानने वाला था। जमकर लड़ाई हुई। राजा जीत गया। उसने बलि युवती से शादी कर ली। लेकिन बलि तो चढ़नी ही थी। इसलिए विरोध करने वालों के लिङ्गोद्धार नेता को ही चढ़ा दिया गया। इस पूरे कर्मकाण्ड में उसी की प्रतीकात्मक पुनरावृत्ति होती हैं।”²⁷

एक तो यह बलि प्रथा ही गलत है। कुर्बानियाँ हमेशा स्त्रियाँ ही क्यों दें। यह रूढ़िवादी सोच है जिसमें आज-कल बदलाव ने अपनी जगह बना लिया है।

मातृप्रधान खासी समाज में स्त्रियों की दोगुनी स्थिति को श्रीप्रकाश मिश्रा ने बहुत अच्छी तरह से प्रकाशित किया है। वे कहते हैं, “यहाँ मातृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण रियासत की मालकिन भले ही स्त्री हो राजा पुरुष है क्योंकि मर्द लड़ता है। फिर इस लड़ाकू (शूरवीर) पुरुष के लिए स्त्रियों का अपहरण अनुचित कैसा! यह अलग बात है कि बाल्यावस्था से ही तीर चलाने का प्रशिक्षण लड़कों को दिया जाता है, लड़कियों को नहीं। उन्हें तो जन्म के साथ ही 'दाव और अस्तार' (टोकरी ढोने की रस्सी) के साथ बांध दिया जाता है- श्रम और भूमिकाओं के सुनिश्चित निर्धारण के साथ।”²⁸

बिना मौका दिये ही यह तय कर लिया कि लड़कियाँ कमजोर होती हैं, इसलिए उन्हें लड़ाई और शिकार नहीं देना चाहिए। शुरू में उन्हें वंचित रखने के लिए नियम लागू कर दिये गये थे। तब लोग यानी स्त्रियाँ इन बातों को सही से समझ भी नहीं पाई थी। परंतु यह चाल अपने को शक्तिशाली जगह पर आसन ग्रहण की एक योजना थी। जिसमें वे बहुत सही तरीके से सफल भी हो पाए।

औरतों को डाइन कहके गाँव से बाहर कहीं दूर बसा दिया जाता है। सामान्य महिलाओं को अलग-धलग करके रख दिया जाता है।

“डाइन की बातों को गंभीरता से लेने का मन नहीं करता। तो भी लोगों को लेना पड़ता। गाँव के बाहर उसका घर छवा दिया था कभी, अभी तो हमारे सीने पर मूँग दलेगी ही। इसलिए हाँ में हाँ मिलाते। कौन नहीं जानता था कि खिरिम सियेम ने उसे मंत्री बनाने का वादा किया है।”²⁹

औरत जिसे ईष्या करती है। उसे आसानी से भूत पिशाच के श्रेणी में रख देती है। और पुरुष वर्ग तो इसमें भागीदारी देते ही है। उन्हें दमन करने का अवसर चाहिए, अब वह किसी भी रूप में आये क्या फर्क पड़ता है।

खासी समाज मातृवंशीय है, फिर भी पुरुष वर्ग के मन में स्त्रियों के प्रति ईष्या और रंजीश की भावना कम नहीं होती है। बड़- पुजारिन स्त्री ही होती है। लेकिन अगर किसी वर्ग को यह लग जायें की किसी भी तरह का निर्णय उसके पक्ष का नहीं होगा तो वह उसका जान का दुश्मन बन जाता। लेखक लिखते हैं- " मिंत्री तो है हो , आखिर डिङ्दोह का बेटा है। वे खानदानी मिंत्री होते हैं। लेकिन वह अपने को रिंजा ही समझता है। क्या करे सभी अभी तक रिंजा ही कहते हैं। लाख चाहा कि लोग डिङ्दोह कहें , लेकिन कोई कहता ही नहीं । जब उसे गोद से लिया तो उसका पिछले कुल से क्या सम्बन्ध ? लेकिन कोई व्यवहार में स्वीकारता ही नहीं । सब जयंती की चाल है। सोचती है कि बड़ - पुजारिन है, जिसको चाहे मिंत्री बना दे। आत्माओं - प्रेतों के बारे में कुछ जानती नहीं ; चली है, बड़ - पुजारिन बनने । इनके बारे में परम्परा पीटने से नहीं , व्यक्तिगत साधना से ज्ञान होता है। उसके लिए इनके बारे में मैं जानती हूँ। जब अभुआती हूँ तो पूरा गाँव आता है अपना वर्तमान और भविष्य जानने , चाहे खेती के बारे में हो या हारी - बीमारी के बारे में। अरे मैं तो चोरी - चमारी के बारे में भी बता देती हूँ । तो भी कोई पुजारिन मानने को तैयार नहीं । मेरे पास राज नहीं है न! चलो चलता है। रिंजा बनायेगा । लेकिन उसके पहले जयंती को उधेड़ना होगा । यही मौका हैं ।"³⁰

स्त्री चाहे किसी भी समाज में हो जब कोई पराई स्त्री उसके शरण लेने आये। या किसी कारण से उसके परिवार के संपर्क में आ जायें। तो उस घर की महिला की रातों की नींद उड़

जाती हैं। वह अपने पति खोने की भावना से स्त्री की दुश्मन बन जाती हैं। और यही कारण ही उसे क्षति पहुँचाने की चेष्टा करती हैं। चाहे वह किसी भी समाज में हो, रहती तो पति के अधीन ही। कोई और स्त्री उसकी जगह न ले ले। यह भावना खलती रहती है। असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती हैं।

“ का इआउ - इआउ जब डिडोह के घर में शरण ली होगी तब क्या पता था कि वह एक पूरे गोत्र को जन्म देगी। तब तो कोई उसका मोल इक्कीस कौड़ी भी नहीं लगता था। हार कर डिडोह को उसे अपने घर में चेरी की तरह रखना पड़ा। डिडोहनी कितना जलती होगी उससे, इसे इस तथ्य से बखूबी समझा जा सकता है कि उसे किसी भी कीमत पर बेंच कर घर से बाहर निकाल फेंकना चाहती थी। मर्द का मन! जाने कब फिसल जाय। उसका समाज मातृ - प्रधान हुआ तो गया ! दूसरी स्त्री स्त्री स्वभाव से ही बरदास्त नहीं कर सकती अपने मर्द के लिए।”³¹

चाहे मातृसत्तात्मक हो या पितृसत्तात्मक स्त्रियों के प्रति हीन भावना और विषमताएँ अवश्य ही देखने को मिलती हैं। लेखक ने इसे कुछ इस प्रकार व्यक्त किया, “लड़की ने कहा, “ तीर , धनुष बना तो दिया। लेकिन चलाना नहीं सिखाया। ”

उसने कहा, “ आता तब न ! यह मर्दों के लिए है।”³²

मातृसत्तात्मक समाज के नाम पर स्त्रियों को कुछ छोटे-मोटे अधिकार दे दिया जाता है। त्योहारों, पूर्वों में उनका विशेष स्थान दिया जाता है। और वे उतना ही पाकर बहुत खुश हो जाती हैं। चीनी का टुकड़ा देकर उन्हें लड्डू कह दिया जाता है। और वे मान भी लेती हैं। दरअसल उन्हें मूर्ख बनाया जाता है। और अज्ञानता वश अपने को बहुत शक्तिशाली समझने लगती हैं।

"Matrilineal descent and unilineal kinship in the traditional Khasi culture does not mean a negation of the paternal side. In fact, patrilineal kinship (ki kha ki man) is an important part of Khasi life and culture. One aspect of the socio-cultural life of the Khasis is the recognition of the importance of the maternal and paternal sides in the creation and sustenance of life: the maternal side is the actual channel of life, and the paternal side gives life and stature: hence they are known as ki longkha, kl nongai ia ka longrynnieng. Seen within this context, the woman as the paternal grandmother (Mei-kha) commands great respect because she is the mother of the father-progenitor. In many ceremonies, such as the naming-ceremony of a baby, the Mei-kha has certain privileges and important roles to play. Usually it is the Mei-kha or one of the khas (paternal aunts) who name the baby. Some customs and practices like Ka leit nguh Mei-kha (literally, 'to go and bowdown to the Mei-kha') signify great reverence and respect for the departed grandmother by her sons' children (khun kha). Similarly, paternal aunts, ki kha, are also given great respect because they are part of ki longkha."³³

“मातृसत्तात्मक वंशीया परंपरागत खासी समाज होने का यह मतलब नहीं कि पुरुषों का कोई महत्त्व नहीं। बल्कि पितृसत्तात्मक खासी समाज का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। खासी के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का एक पहलू यह है कि मातृ और पितृ पक्ष के महत्त्व को मान्यता दी जाती है। मातृ पक्ष ही जीवन का मूल सूत्र है। और पितृ पक्ष जीवन और कद देता है। इस संदर्भ में देखा गया है, पैतृक दादी (मेई-खा) के रूप में महिला बहुत सम्मान के साथ आदेश देती है क्योंकि वह पिता-पूर्वज की माँ है। कई समारोहों में, जैसे कि एक बच्चे के नामकरण-समारोह में, मेई-का के पास कुछ विशेष विशेषाधिकार और महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं। आमतौर पर यह मेई-खा या खस(पितृ चाची) में से एक है, जो बच्चे का नाम रखता है। कुछ रीति-रिवाज और प्रथाएँ जैसे के लीठ मेघ-का (शाब्दिक अर्थ, 'जाना' और माई का को झुकना) अपने बेटों के बच्चे (खून का) द्वारा दिवंगत दादी के प्रति बहुत श्रद्धा और सम्मान का प्रतीक है। इसी तरह पितृभक्तों की, की, को भी बहुत सम्मान दिया जाता है, क्योंकि वे कीर्ती का हिस्सा हैं।”

स्त्रियों की अपनी ही अलग-तरह का संघर्ष है। जो शायद ही पितृसत्तात्मक समझ पायें। स्त्री की वर्षों की दर्शाती यह कविता बड़ी ही उत्कृष्ट कोटि की लगती है-

“और धीरे - धीरे खुद काढ़कर

खातीं बासी रोटियाँ-

थोड़ा - सा लेकर उधार नमक आँखों का ।

तो, सखियो , ऐसा था कलयुग में जीवन

पतिव्रता का ...

आगे की कथा
सती के ही मुख से
सती की व्यथा-
'नहीं' जानती कि ये क्या हो गया है ,
मन मुलायम रहता है
जैसे कि बरसात के बाद
मिट्टी मुलायम हो जाती है कच्चे - रस्ते की !
काम बहुत रहता है इनको ।
ठीक नहीं रहती तबीयत भी ।
अब छाती में इतना जोर कहाँ-
चिल्लाएँ झिड़के या पीटें ही बेचारे !
धीरे - धीरे मैं भी हो ही गई पालतू ।
बीमार से रगड़ा क्या , झगड़ा क्या ,
मैंने साध ली क्षमा ।
मीठे लगते हैं खरटि भी इनके ।
धीमे - धीमे ही कुछ गाते हैं
अपने खर्राटों में ये ।
कान लगाकर सुनती रहती हूँ-

शायद मुझे दी हो सपनों में आवाज ।

कोई गुपचुप बात मेरे लिए दया रखी हो

इतने बरसों से अपने मन में-

कोई ऐसी बात

जो रोज इतने दिन

ये कान सुनने को तरसे ...

कोई ऐसी बात जिससे बदल जाए

जीवन का नक्शा ,

रेती पर झम - झम - झमक - झम कुछ बरसे!"³⁴

स्त्रियों को अपनी लड़ाई स्वयं ही लड़नी होगी क्योंकि सह वह रही है। फिर चाहे रूढ़िवादी समाज उसका मज़ाक ही क्यों न उड़ाये अपनी हक के लिए कभी पीछे हटना नहीं चाहिए।

(ग) मुक्ति की राहें :

मुक्ति संघर्ष और निरंतर लड़ाई का दूसरा नाम हैं। जिंदगी पूर्ण रूप से चुनौतीपूर्ण है। अपने कमी और सही चीज़ को समझना भी एक प्रकार की मुक्ति है। दूसरे पर निर्भर होकर हमेशा चलते रहना कायरता है। इस सोच को बदलना अतिवश्यक है। स्त्रियाँ जितना सह सकती है। उतना दर्द पुरुष न शायद ही कभी सहा हो फिर भी वे कमज़ोर कहलाती है। इसका एक मात्र कारण है। स्त्रियों को अपने पर विश्वास न होना। विचारों की अभिव्यक्ति सही तरीके से न कर पाना। इसी दुविधा और विचारों की अभिव्यक्ति की कमी 'जहाँ बाँस फूलते हैं' कि नारी पात्र कामी में भी देखने को मिलता है। परंतु उसमें विचारों की गंभीरता भी देखने को भी मिलती है। गलत चीज़ों का साथ न देने की उमंग भी दृष्टिगोचर होते हैं। मुक्ति छोटे-छोटे कदम चलकर

ही पाई जाती हैं। शुरुआत में छोटी अवश्य लग सकती है, किंतु आगे चलकर यह विस्तृत परिवर्तन कर सकती हैं।

“वे कहते हैं कि कली जब फूल बनती है तो वातावरण को गंधिल करती हुई सिर्फ झूम-झूम कर हँसती हैं। किंतु जब लड़की पूरी औरत बनती है तब पृथ्वी की तरह गंभीर हो जाती है , शेरनी की तरह खूँखार हो जाती है तथा हाथी की तरह बलशाली, और इस सारी शक्ति का प्रयोग वह प्रजनन के लिए करती है। जो नहीं कर पाती है वह जिंदगी में एक अजीब क्षोभ अनुभव करती है। वह हर बात में निराशा ही देखती हैं। उसे लगता है कि उसके लिए कहीं आश्रय नहीं हैं। इसी आश्रय की तलाश में वह दत्तचित हो जाती है। यही हाल कामी का भी हुआ । थोड़े ही दिनों के अनुभव के स्पष्ट विश्लेषण से उसने पाया कि इस जंगल की जिंदगी से मिज़ोरम कल्याण हो, न हो, उसकी कल्पना के अनुरूप मिजो- जिंदगी, उसकी अपनी जिंदगी दल नहीं पाएंगी । लिहाजा इससे मुक्त होना चाहिए । यूँ कल्पना तो किसी की भी साकार नहीं होती , किंतु उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न की जो तृप्ति होती है , वह शायद साकार होने पर भी न मिल पाए । फिर यह जंगल मिजो को अतीत में ले जाना चाहता है और अतीत में न तो जाया जा सकता है न ही जिया जा सकता है। सिर्फ किसी समसामयिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे नारे की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। ये सभी नेता यही कर रहे हैं ।”³⁵

मिज़ो समाज में तबकि जो लड़ाई लड़ रहे थे। कामी ने इसके लिए रुआलखूमा से तर्क संगत अपनी विचारों को अभिव्यक्त किया। जंगल की जिंदगी में बटकाव और शारीरिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए कदम उठाया। जंगल की जिंदगी स्त्रियों के लिए आसान नहीं होती है। हर कोई अपनी इच्छा और वासना की आग शांत करने के लिए उस पर गिधों की तरह

मंदराते रहते हैं। जो देखने में और सुनने में भले ही साधारण लगती है। परंतु यह भी एक प्रकार का बलात्कार ही है।

“ कामी ने उठकर चलने के बजाए खूमा को भी बैठने का इशारा किया। कुछ देर तक मौन रहने के बाद बोली, “यह लड़ाई हम अलग-अलग नहीं लड़ सकते क्या ?”

रुआलखूमा निर्विकार उसे कुछ देर तक एकटक देखता रहा। फिर बोला, “कोई भी लड़ाई अलग-अलग नहीं लड़ी जा सकती।”

कामी बोली, “वह तो ठीक है। किंतु इस लड़ाई में बंदूक चलाने के साथ-साथ लोगों को यह निरंतर बताते रहने की भी तो आवश्यकता है कि यह लड़ाई क्यों लड़ी जा रही है।”

रुआलखूमा मुस्कुराया, “कुछ माह पूर्व जब तुम गाँव में थी, तब क्या नहीं जानती थीं की लड़ाई क्यों लड़ी जा रही है? या गांव वाले नहीं जानते थे? या कि इतने दिनों में वे भूल गए हैं?” 36

कामी की बेवाकपन ही है, जो रुआलखूमा को भी सोचने को मजबूर करते हैं। इन सब लड़ाई के विरुद्ध कामी जंगली जिंदगी को छोड़ गाँव के जीवन में लौटना चाहती है। क्योंकि उसे अब यह लगने लगा था कि यह लड़ाई भटकाव की राह पकड़ चुकी है। मूल उद्देश्य क्या है यह भूल लोंग अंधों की तरह एक के पीछे एक चल रहे हैं। और वह गाँव लौट भी आती है। यह उसकी अपनी मुक्ति की सोच थी, हालांकि वह अकेली थी पर वह जो समझती थी, वही किया। जो रुआलखूमा को भी प्रभावित कर गई और उसने कामी को जाने दिया।

“जाहिर है कि यह लड़ाई पीढ़ियों तक चलेगी। इसके लिए नई पीढ़ी में संस्कार भी तो डालना चाहिए।”

खूमा हँसा, “तुम तो पू दोला की तरह बात करने लगी हो। लोग कहते हैं कि वह पू झूचुइया की तरह बात करता है। खैर, साफ कहो तुम अपने लिए क्या कहना चाहती हो ?”

“यही कि मैं गाँव लौट जाऊँ, पू चोडखूमा के प्रयत्न से हमारे सेंटर का स्कूल हाईस्कूल हो जाने वाला है। क्यों न वहीं पढ़ाऊँ ?”

कारण चाहे जो हो खूमा भी चाहता था कि कामी डोपा लौट जाए। यह जंगल की जिंदगी तो उसे वेश्या बना देगी। बस उसे धन न मिलेगा। सो एक दिन कामी डोपा लौट आई।”³⁷

जहरीले शासन काल से मुक्ति पाना अतिवश्यक है। बुराइयों का अंत करने के लिए आपको बुराइयों का सामना करना होगा। उसके मनोबल को कमज़ोर करना होगा। चाहे इसके लिए आपको अपनी प्राणों की आहुति ही क्यों न देनी पड़े। पीछे नहीं मुड़ना है। यही मुक्ति की सही पहचान है। रानी जयमती ने मुक्ति की राह में अपनी प्राणों का न्योछावर कर दिया। परंतु हार नहीं मानी। एक कि कुर्बानी हजारों और लाखों की मुक्ति का कारण बना सकती है तो उस संग्राम में भाग लेना चाहिए। और इसका सबसे बड़ा उदाहरण रानी जयमती है।

“असम का अत्याचारी अहोम राजा चूलिक फा, जिसने बलपूर्वक अहोम सिंहासन पर अधिकार जमा लिया था, रंग-घर की ऊपर की मंजिल में मेहराववाले द्वार से सिर बाहर निकाले खड़ा है। नीचे खुले मैदान में, जहाँ कभी नृत्य हुआ करते थे या नाटक खेले जाते थे, आज लकड़ी की रंगभूमि पर रानी जयमती की लाज उतारी जा रही है। उसके शरीर पर तड़ाक्-तड़ाक् कोड़े लगाए जा रहे हैं। सात दिन से वह भूखी और प्यासी है। वह यह जानती है कि उसका पति गदाधरसिंह कहाँ है, पर वह बताती नहीं। उसे बुरी तरह सताया जा रहा है। सब-के-सब अहोम राजकुमारों को अहोम परंपरा के अनुसार सिंहासन के अयोग्य ठहराने के

लिए चूलिक फा ने अपने सेनापति को आज्ञा दी थी कि वह उषा की प्रथम किरण फूटने से पूर्व ही प्रत्येक अहोम राजकुमार की एक-एक उँगली या एक-एक कान काटकर और सोने के बड़े थाल में सजाकर प्रस्तुत करे सेनापति आज्ञा-पालन के लिए चला। सब राजकुमारों को सिंहासन के अयोग्य बना दिया गया, क्योंकि अहोम परंपरा के अनुसार राजा भगवान् प्रतीक माना जाता था, इसलिए सिंहासन पर वही राजकुमार बैठ सकता था जो शारीरिक दृष्टि से सर्वांग पूर्ण हो। जयमती के पति गदाधर सिंह को किसी प्रकार सूचना मिल गई। वह भाग निकला। तड़ाक्-तड़ाक् जयमती के शरीर पर कोड़ लगाए जा रहे हैं ताकि वह अपने पति का भेद बता दे। जयमती कुछ नहीं बोलती। वही मृत्यु से खेल रही है। हजारों लोग रानी पर किया जा रहा यह अत्याचार देख रहे हैं, सबकी आँखों में आँसु हैं; सब यही चाहते हैं कि गदाधर सिंह नागा वीरों की सेना समेत आ पहुँचे, जयमती को बचा लिया जाए और अत्याचारी चूलिक फा का शासन सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय। देखते-देखते जयमती के प्राण पखेरू उड़ गए। गदाधरसिंह अपने मित्रों की सहायता से चूलिक फा को उसके अत्याचार का दंड देता है और स्वयं सिंहासन पर बैठने में सफल हो जाता है।”³⁸

जयमती ने यह मिसाल कायम की औरतें भी शक्ति का प्रतीक है। किसी भी हाल में वह स्वतंत्रता लड़ाई में पीछे नहीं है। शारीरिक रूप से हो सकता है वह कुछ कमज़ोर हो। परंतु उसका मनोबल कोई नहीं तोड़ सकता है।

“जयमती के नाम पर शिवसागर में जयसागर खुदाया जा रहा है... जयसागर के किनारे जयमती के बलिदान के उपलक्ष्य में जयदोल बनवाया जा रहा है....आरती की कल्पना में जयमती के बलिदान का दृश्य फिर से घूम गया। फिर कैसे जयमती ने आरती का रूप धारण कर लिया। चूलिक फा के स्थान पर नारायण दारोगा आकर खड़ा हो गया। छत से एक लड़की

उलटी लटकाई गई है; नीचे से उसके हंटर लगाए जा रहे हैं। नई जयमती से नए गदाधरसिंह का पता पूछा जा रहा है।”³⁹

नागा समाज की स्त्रियाँ अपने समाज की सुरक्षा के लिए पुरुषों से किसी भी हाल में कम नहीं है। अंग्रेजों के विरुद्ध जब वे अपने समाज के लिए लड़ रहे थे। तब औरतों ने भी अपनी पूरी भागीदारी दिखाई। वे घर में डुपक कर नहीं रही। बल्कि जंग के मैदान में आकर गोली भी खाई। और कईओं ने तो अपने प्राण भी गवाएं। फिर औरतें वहाँ पुरुषों की मदद करने से पीछे नहीं हटी। वे साहसी औरतें हैं, मरना-मारना दोनों ही जानती है। ‘रक्तयात्रा’ जो कि नागा समाज पर केंद्रित उपन्यास हैं। इसमें यह बात साफ तौर पर देखने को मिलती हैं। जब मणिपुर के राजा गंभीरसिंह ने नागा गाँव पर हमला बोल दिया था। निखोनो इस कहानी को कुछ इस तरह बताती है-

“उस लड़ाई में तेरे दादा के दीलिनो मारे गए। तेरा बाप बुरी तरह घायल हुआ। औरतों ने भी मर्दों का साथ दिया लड़ाई में। औरतें पत्थर चिन-चिनकर गाँवों के रास्तों पर मोर्चे बनाती। पर कुछ काम नहीं आया यह सब। तेरी बुआ केलेनु भी मारी गई। जब वह पत्थर ला रही थी तो जाने किधर से एक गोली आई और उसकी छाती से पार हो गई। जिस पत्थर को वह खोरहा (टोकरी) में रख कर ला रही थी उसी के साथ लुढ़कती हुई जाने कहाँ जाकर रुकी।”⁴⁰

निखोनो जैसी महिला अपने लोगों और समाज के लिए अपने बेटे तक की कुर्बानी देने से नहीं घबराती है। वह गंभीरसिंह के दुश्कर्मों को बताते हुए वियाले के मन में भी क्रांति की लौ जगाने की चेष्टा करती है। उसे अपने समाज और अंगामी पर हुए अत्याचारों का खून का बदला चाहती है। लेखक लिखते हैं- “गंभीर सिंह ने हमारा गाँव फूंक डाला। हम अपने घायलों को लेकर जंगलों में जा छिपे। पर... इस पर आकर निखोनो ने गहरी सांस लेकर कुछ याद सा

करते हुए कहा, "पर इसके बाद जो हुआ वह देख-सुनकर हर अंगामी का कलेजा कांप उठा था। गंभीर सिंह ने एक बड़े पत्थर पर अपने पाँवों के निशान खुदवाए। उस पर डरावनी शकलें खुदवाईं। फिर एक गड्ढा खोदा गया। उस गड्ढे में एक अंगामी लड़के को जीते जी डालकर उस पर वह पत्थर खड़ा कर दिया गया। उस लड़के की चीखें सुनकर जंगल के जानवर तक सहम उठे थे। पर मणिपुर वाले हँसते रहे। पत्थर के नीचे लड़के के साथ-साथ उसकी चीखें भी दब गईं।" निखोनो का स्वर धीमा होते-होते शांत हो गया था। फिर भी उसकी बुढ़ी आँखें झरनों सी बहती रहीं। पर वियाले का चेहरा रोष से विकृत हो उठा था। वह कुछ ऐसे चीखा जैसे किसी जंगली जानवर पर भाला फेंकते हुए हिंसक निनाद किया हो।

पर निखोनो ने भर्त्सना सी करते हुए कहा, "बस इतने से बौखला उठा। तू ही तो कहा करता है कि हम नागा पैदा ही हुए हैं मरने के लिए। पर मेरे जैसे अभागे जो मरना ही नहीं जानते उनका दर्द समझने की कोशिश कर। सोच न कि कब से ये सब बातें मुझे खा रही हैं। सोचा करती थी कि मेरा कोई बेटा होगा तो वह दुश्मनों से गिन-गिन कर बदले लेगा। आज भी मैं इसी आस पर जी रही हूँ। पर चार-चार बेटों की माँ होकर भी मुझे लगता है कि मैं निपूती हूँ।"⁴¹

निखोना मानती है कि रक्त का बदला रक्त से ही लिया जाना चाहिए। तभी उनका समाज शांति और अत्याचारों से विहीन हो पायेगा। मुक्ति की राह में हिंसा के बदले अहिंसा नहीं दे सकती है। अंगामियों के रक्त को इतना जलाना चाहती है कि उनके रगों में खून की जगह ज्वालामुखी दौड़ने लगे।

जब अत्याचार का स्तर बहुत अधिक भर जाता है। तो लोग बागी बन जाते हैं। अपने सगे-संबंधों को जब निरंतर उन्हीं के आँखों के सामने कुचला जाता है। तो लोग निजी स्वार्थ को भूल कर कोमी बन जाते हैं। यही रूप 'बसंता' का देखने को मिलता है। वह अंग्रेजों का पक्षधर था।

क्योंकि अंग्रेजी सरकार से उसे ऐसे बहुत से लाभ प्राप्त हो रहे थे। जो अपने समाज के पक्षधर होकर नहीं मिल पाता है। परंतु जब उसी के आँखों के सामने उनके औरतों की अस्मत् लूटी जाती है। जवानों की हत्या कर देते हैं। बूढ़े-बूढ़ों का सरेआम इज्जत निलाम की जाती है। तो ऐसे में उसके मन से स्वार्थ विलुप्त हो जाती है। और यह उसके लिए मौह भंग की स्थिति थी। उसने अपने कोम के लोगों के साथ मिलकर मुक्ति की राह तलाशनी शुरू कर दी। कपटियों के साथ कपट का ही रास्ता चुनना पड़ता है। और ऐसा ही उसने किया बिना अंग्रेज सरकार के जानकारी के उनके विरुद्ध छुपके से षड्यंत्र करना शुरू कर दिया था।

“चलते-चलते बसंता कोपिली के किनारे पहुँचा। वहाँ पता लगा कि मफलाड सिरदार और जोर राय मोर्चा बाँधकर पड़े हैं। उसे अच्छा लगा जानकर कि कहीं कोई इन ललमुहों का मुकाबिला करने के लिए जुटा है। प्रयत्न कर उनसे मुलाकात की उनके आने का रास्ता बताया और उस पर पूरी तैयारी रखने का अनुरोध किया। जोर राय को विश्वास नहीं हुआ। सोचा कि यह छोकरा अंग्रेज़ का आदमी है। मोर्चा लगाने को एक रास्ते पर कहेगा, लायेगा दूसरे से। इसलिए मोर्चा उसने दूसरे रास्ते ही लगाया। लेकिन सिरदार को ऐसा कोई भय नहीं था। इसलिए उसने मोर्चा पहले रास्ते पर ही लगाया। मोर्चा लगाना क्या था, सीधी पहाड़ियों पर कच्चे बाँस पत्तीदार लट्टों का छत बनाना था। छतों पर पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े रखने थे। छत और केन्द्रीय धुरी या बेड़वाने में मजबूत रस्सी बाँधनी थी, जिसे अंग्रेजी फौज के उस छत-नीचे पहुँचते ही खींच देना था, जिससे कि वे दबकर मर जायें।”⁴²

बसंता आगे योजना बनाता है कि, “बसंता ने राय दिया था कि यह ट्रैप कई जगह बनाया जाये। खटका तभी खींचा जाये, जब सबके नीचे फौज हो, अगली टुकड़ी आखिरी खटके के नीचे हो। इशारा करने के लिए कंठ से सीटी बजानी होगी। इसके लिए दूर कहीं ऊँचे पेड़ों पर लोगों को बैठे रहना होगा। योजना के अनुसार निर्धारित दिन को फौज बसंता के बताये रास्ते से चली।

टीलों के नीचे की छतों के नीचे जब वे पहुँचे तो मौका देखकर अपनी हरकत छिपाते हुए उसने सीटी बजायी। उसकी सीटी सुनकर जंगल से बीसों सीटियाँ बज उठीं। उनके शोर से अंग्रेजी पल्टन घबरा उठी कि बात क्या है। अपनी-अपनी जगहों पर ऊँट की तरह गर्दन उठाकर जब वे देखने लगे कि या इलाही यह माजरा क्या है, तब तमाम छतों के खटके खींच दिये गये और दुनिया भर के टुकड़े-पत्थर भरभरा कर गिर पड़े। तमाम सिपाही खेत रहे। इस मौके का फायदा उठाकर खसियों ने उनके हथियार लूट लिये। भगदड़ मची तो वे किसी तरह नदी-नाला पार कर समानान्तर रास्ते पर पहुँचे। वहाँ भी बनावटी छतों के नीचे पहुँचने पर खटका खींच दिया गया। लोगों के चिपुला उड़ गये।”⁴³

यह योजना बहुत हद तक काम कर गई। अंग्रेज सरकार के मन खासियों के प्रति भय का भाव जगा दिया था। यह एक छोटा सा कदम था। परंतु मुक्ति के राह में शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध बहुत बहादुरी का कार्य प्रतीत होता है। उंगली-उंगली जोड़ कर ही मुट्ठी बनती है।

स्त्रियाँ अगर शीतल है तो ज्वाला भी वहीं है। वे अपने को बचाये रखने के लिए अपने प्राणों की आहुति देने से भी पीछे नहीं हटती है। और यही रूप चानु का देखने को मिलती है - आहुति उपन्यास में। जब चानु मणिपुरी युवती मनोज बिहारी के साथ प्रेम संबंध में जुड़ जाती है। और उससे विवाह करने राम अवतार के घर में शरण लेते हैं। यह खबर मिलते ही चानु के रिश्तेदार मनोज को खत्म करने के इरादे से राम अवतार के घर में आते हैं। तब जब चानु अपना दुर्गा का रूप धारण करती है। यह खिलाफत थी सदियों से चली आ रही रूढ़िवादी सोच का। सदियों की गुलामी का। सदियों की सामाजिक जंजीरों से मुक्ति की। लेखक बताते हैं-

“ रात के सन्नाटे में कई मोटरसाइकिल की आवाजें सुनकर सबलोग चौकन्ने हो गए। देखते-देखते कई मोटरसाइकिलों की रोशनी से सुनसान अंधेरी रात में उजाला फैल गया। राम अवतार की छोटी सी झोपड़ी को आठ-दस नौजवान ने घेर लिया। वहाँ उपस्थित लोगों के दिल धड़कनें

लगे। बाहर बरामदे पर सोये दो आदमियों को उन्होंने मार कर भगा दिया। उन लोगों ने दरवाजा पीटना शुरू कर दिया। पूरा दहशत का माहौल बन गया। भीतर के कमरे में चानु और मनोज जगे हुए थे, उनकी आँख में नींद कहाँ से आती । कुछ देर तक उन्होंने दरवाजा खटखटाया उसके बाद उन्होंने दरवाजा तोड़ देने की धमकी दी। मनोज कुछ सोच पाता कि उसने चानु को लपककर बढ़ते देखा। उसने हाथों में कमरे में पड़ा हुआ बड़ा दाव उठा लिया था। आगे बढ़कर उसने दरवाजा खोल दिया। सबसे आगे उसके दोनों चचेरे भाई हाकी स्टिक लिए खड़े थे।”⁴⁴

लेखक आगे चानु के साहस का व्याख्यान करते हुए लिखते हैं- “चानु ने दाव ऊपर उठाकर जोर से चिल्लाकर कहा, 'हरामजादों, क्या चाहते हो । आगे बढ़ो एक-एक को काट कर टुकड़े-टुकड़े न कर दिया तो मैं अपने बाप की बेटी नहीं ।' दरवाजे पर खड़े लड़कों को चानु का रूप देख काठ मार गया। वे चुप मूर्ति की तरह खड़े हो गए थे। चानु ने ललकारते हुए कहा, 'बढ़ो, खड़े क्यों हो, तुम दस जवान हो, मैं अकेली देख लूँगी। यह दाव देखते हो एकबार में सिर धड़ से अलग कर दूँगी ।'

कोई कुछ नहीं बोल पा रहा था। वे सहमे से पीछे लौटने लगे। चानु की दहाड़ जारी थी, 'कायरों, बुजदिलों भाग क्यों रहे हो। आओ, आगे आओ, पैर में जंजीर क्यों पड़ गया। ठहरो मैं ही बढ़कर तुम्हें मजा चखाती हूँ ।' चानु दो कदम आगे बढ़ी, बड़ी तेजी से सब लड़के पलटकर मोटरसाइकिल पर सवार हो भाग खड़े हुए ।”⁴⁵

प्रेम अगर स्त्री को कोमल बनाता है तो वही प्रेम उसे शक्ति भी प्रदान करती है। चानु स्वयं डरी हुई थी । परंतु अपने प्रेम को बचाने के लिए उसने स्वयं की भी प्रवाह नहीं की थी-

“चानु ने दरवाजा जोर से बंद कर दाव को जमीन पर फेंक दिया और मनोज की बगल में बैठ गई। वह हाँफ रही थी, उसके ललाट पर पसीने छलछला आए थे। मनोज क्षण में घट जानेवाली घटना से उभर भी न सका था कि चानु ने उसे अपनी बाहों में जकड़ लिया।”⁴⁶

यह चानु की हृदय पीड़ा थी। साथ ही वह मनोज की कुर्बानी कतई भी देना नहीं देना चाहती थी। यह सूचक है पितृसत्तात्मक चाहे अपने निरंकुशता जितना भी स्त्रियों पर लगाए जब वे इसके विरुद्ध में खड़े हो जायेंगी। तो शक्ति से शक्तिशाली साम्राज्य भी ढूँह जाने में देर न लगेगी।

नौजवान लड़के जिन्हें मुक्ति और आज़ादी का भी मंत्र तक समझ नहीं आता है। वैसे लड़के 'उल्फा' में शामिल हो जाते हैं। जिसका एक मात्र कारण है-उल्फा में मिलने वाली शोहरत है। 'उल्फा' जिन्हें पूर्वोत्तर का आतंकवादी घोषित करा दिया गया था। परंतु युवा लड़के अपने को हीरो दिखाने के लिए शामिल हो जाते हैं। ऐसी अंधी मुक्ति की राह कहीं लेकर नहीं जाती है और अंत में बिखराव का रास्ता पकड़ लेती है लेखक लिखते हैं-

“केंद्र सरकार ने उल्फा पर एक आतंकवादी संगठन के तौर पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। पूर्वोत्तर में सक्रिय आतंकी संगठनों की सूची में एक नाम और बढ़ गया था उल्फा का। उल्फा में शामिल होने के लिए युवा बेचैन हो रहे थे। तमाम अन्य बातों के अलावा उनमें ये बात भी घर कर गयी थी कि बेरोजगार घूमने से अच्छा है कि उल्फा में शामिल हो कर असम की आजादी के साथ मासिक वेतन भी हासिल हो जाएगा। उल्फा अपने कैडरों को परिवार पालने के लिए मासिक वेतन जैसा ही कुछ देता है। युवाओं में उल्फा के प्रति क्रेज की वजह यह भी थी कि लड़कियाँ अंडरग्राउंड उल्फाइयों पर मरती थीं। अंडरग्राउंड कोई युवा जब अपने गाँव में चोरी छिपे अपने परिवार से मिलने आता था, तो चमचमाती हुई मोटरसाइकिल उसके पास होती

थी। उन दिनों असम में मोटरसाइकिल का युवाओं में क्रेज नया-नया पैदा हुआ था। फौजी जंगल सूट और कन्धे में लटकी एके 47। सब कुछ अलग और नया।”⁴⁷

यह भी एक कारण है उल्फा की समाप्ति का। क्योंकि जो युवक इसमें शामिल हो रहे थे, वे अज्ञानतावश हो रहे थे। स्त्रियाँ अगर किसी पितृसत्तात्मक के धोखे और षड्यंत्र के जाल में फँस भी जाएं तो उस स्थिति में अपने को सुरक्षित करना सीखना होगा। जैसे चाल वे चले मुक्ति की राहें में उससे निकलने के लिए वैसी ही चाले चलनी पड़ेगी। 'मुक्ति' में जब रुक्मणी को यह पता चल जाता है कि होटल में जो लोग उन्हें मदद के नाम पर लाये थे। दरअसल वे मदद नहीं उन्हें गुलामों वाला जीवन देने के लिए लाये थे। उनकी बोली लगाकर उन्हें पाकिस्तान बेचा जा सके इसलिए लाए थे। रुक्मणी को बचाने के लिए जिस रसोइया से इसकी जानकारी मिली, उसी से मदद मांगने लगी। लेखक लिखते हैं-

“अब बहन तू ही देखो कि यह चारु कितनी चतुर चुटीली है, इसने रसोइया की कमज़ोरी पकड़ ली-“बोली, बाबा आपने मुझे बेटी कहा है, तो क्या बेटी की लाज बचाना आपका धर्म नहीं है ?”

“है क्यों नहीं ?” रसोइया बोला-“पर मैं मूरख जानता भी तो नहीं कि कैसे क्या करूँ ?”

“यहाँ करीब में कोई थाना है? किसी तरह वहाँ खबर कर देते।”

“अरे बिटिया। थाना का सिपाही तो अपना छह सौ रुपया लेकर पहले ही चला गया। हमरा बुलावे पर आवेगा भला। हमी को पकड़के हवालात में बंद कर देगा और हमार इहाँ की नोकरिया खत्म होई जाई। हाँ, मगर एक उपाय है। अगर हम चौधरी वलूलहक साहब के यहाँ खबर करिआवें त काम बनि सकेला, मगर हियाँ त रात भर क ज्यूटी है। ई आग पर जो बड़ा

भगोना चढ़ावा है ना। एहिमा ओहर टाट के अंदर जो सब बकरो की कटी टाँगें जो रखी हैं, उन्हें इसमें डालकर मसाला देकर रात भर पकावे के बा। इनकी हड्डियों के भीतर से जेवन रस टपक के मसाला में मिल जाई, ओके सबेरे-सबेरे पी-पी के तब जइहें ससुरा सब। अब अगर हम एहिका ना सिंझाई अउर एहकर खुशबू ना महँकी, त इहवें चेक करे चलि आई, ई लाहा बाबू ससुरा।”

“गोड़ी और मसाला तुम चढ़ा दो बाबा। मसाला खूब भरपूर डाल दो। आँच में देती रहूँगी। ज़रा उन सबको सजग कर आऊँ कि वे घबराएँ नहीं और कुछ देर तक उन्हें बहला-फुसला कर उलझाए रहें, मेरे बारे में पूछने पर बतला दें कि टट्टी करने गई हैं। बस अभी आई।”

-“और फिर उस रसोइया चिंतन राम ने जो कमाल किया”-मकबूल बोल पड़े।”⁴⁸

लेखक आगे स्थिति का बयान करते हुए लिखते हैं-

“अरे कमाल किया भाई साहब आपने।” -रजनी बोली, “उस रात में ही इतने आदमियों को ले आ पहुँचना। छुरा-कटारी पिस्तौल, रखे बदमाशों का सामना करने और उन मुसलमान गुंडों को मार-मार कर पुलिस के हवाले कर उन्हें सीमा पार भिजवा देने का जो साहसिक काम आपने किया वह कोई क्या करेगा?”

“नहीं, बिल्कुल नहीं। एक गरीब आदमी अपनी एक मात्र रोजी रोटी देनेवाली नौकरी की परवाह न कर जो इतना बड़ा काम कर सका, उसकी तारीफ न करना, मनुष्यता के विरुद्ध है।”⁴⁹

कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती है। और यह घटना इस कहावत से बिल्कुल सटीक बैठती है। उनके इस प्रयत्न में सफल तो हुए ही, अपने को भी सुरक्षित इस स्थिति से बाहर निकाल पाये। साथ प्रवीणा को अपना बिछड़ा हुआ परिवार भी प्राप्त हो गया। लेखक बताते हैं- “उसने दूसरा बड़ा काम तब किया कि जब उसने प्रवीणा को पहचान लिया कि यह संजीव घोषाल की बेटी है, जिन्हें सिलहट में नौकरी करते समय उसने अक्सर प्रवीणा को साथ-साथ स्कूल ले जाते देखा था, तो तब तो उसने सचमुच ही इनाम देने लायक काम किया। जबकि उसने बताया कि रोते-बिलखते घोषाल बाबू करीमगंज स्टेशन से जाते-जाते कह गए थे कि हम सारे पड़ोसी अपनी पत्नियों बच्चों को तो बचा लाए, पर हमारी पुत्रियाँ दंगे में कहीं खो गई हैं। अगर कभी मिलें तो उन्हें बता देना कि हम लोग गुवाहाटी के शिलपुखरी मुहल्ले में शेफालिका के मामा विधू भूषण बंद्योपाध्याय के यहाँ रहेंगे जो वहाँ एक बड़े नामी वकील हैं। उसी के बताने पर तो हम इन दिलेर बहनों को वहाँ पहुँचाने जा रहे हैं।” - मकबूल ने समझाते हुए कहा।”⁵⁰

मुक्ति की राह में सदैव अग्रसर रहना आवश्यक है। दुनिया रोके तो उस रोला को रास्ता से हटाना होगा, तभी मुक्ति मिल पाएगी जुर्म से, अत्याचार से, शोषण से, उत्पीड़न से। जब हिंदू-मुसलमानों के बीच दंगे हो रहे थे। तब सभी एक दूसरे के दुश्मन बन गए थे। एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गए थे। ऐसी स्थिति में रसूल मियां जैसे नैक इंसान की मदद से हिंदुस्तान सुरक्षित पहुँचने की कोशिश की। ऐसे फरिश्ते अगर हर समाज में हो तो दुष्टों और अत्याचारियों का पतन बड़े ही आसानी से हो पायेगा। लोग दुषित समाज से मुक्ति पाकर, एक स्वच्छ उज्ज्वल समाज का निर्माण कर पायेंगे लेखक लिखते हैं-

“ ठीक उसी समय वह बेचारी खूँखार दरिंदों से जान बँचाती अपनी बस रात भर पहले पैदा हुई बेटी को कोख में दबाए भागती आई थी कि हम आदमी होने के नाते उसे शरण देंगे। परन्तु उन दिनों इन गुंडों का हम पर इतना आतंक था कि जैसे ही पता चला, वह माँ नदी में बच्ची समेत कूद कर जान देने जा रही है और माइमून के मना करने पर उसका मुसलमानी चेहरा-मोहरा देखकर और भी भयभीत होकर भागती चली जा रही है। तो माइमून ने घर के अंदर छिपे कमल को बरबस ही उसे बचाने भेज दिया।”⁵¹

लेखक आगे बताते हैं कि

“कमल ने जैसे ही एक हिंदू के रूप में अपना परिचय दिया, उससे वह तो किसी तरह पकड़ में तो आ गई और फिर माइमून और कमल उसे घर में ले आए कि तभी थोड़ी देर बाद ही यही रसूल मियाँ दौड़े आए और बतलाया कि बशीर को खबर हो गई है कि कमल भट्टाचार्य हमारे घर में ही छिपा है तथा उसकी बहन भी यहीं छिपी है। अतः उसे कमल की बहन समझकर उसे जबरदस्ती उठा ले जाने के लिए वह हमारे घर पर गुंडों के दल के साथ आक्रमण करने आ रहा है, तब इन्हीं रसूल मियाँ और इनकी बहू की सलाह पर, इन्हीं लोगों के बुर्के में, क्योंकि उस दिन ये खुद बुर्का पहन कर आए थे और बहू को भी बुर्का पहना कर लाए थे ताकि लगे कि दो बुर्का वालियाँ नदी घाट से मेरे घर आई हैं। अतः कमल भट्टाचार्य और उस बेचारी लड़की, जाने तो उसका क्या नाम था, अब याद नहीं है, उन दोनों को बुर्का पहनाकर निकल जाने को कहा और हिदायत दी कि एक बुर्का नदी घाट पर स्थित इनकी झोंपड़ी में फेंक जाना। और फिर उसे अपनी मुस्लिम बहू के रूप में चौधरी फारूख के जोड़िंदा पर चढ़ा ले जाना, मैंने उनसे बात कर ली है, तुम लोगों के सवार होते ही वे अपना जोड़िंदा लिए तुरंत चले जाएँगे, क्योंकि उनके दो मजदूर हिन्दू हैं जिन्हें सुरक्षित हिंदुस्तान भेजना है।”⁵²

ऐसे इंसान समाज के निर्माता और कल्याणकारी कहलाते हैं। मानवता के रक्षक हैं। स्वतंत्रता पाना किसी सपने से कम नहीं है। हालांकि इसके भी कईयों को बहुत से परेशानियों का सामना करना पड़ा था। फिर भी स्वतंत्र को वे लोग अधिक महत्वपूर्ण देते हैं। जिन्होंने गुलामी देखी हो। गुलामों की जिंदगी जैसे स्वरूप होती है। उसके स्थान पर स्वतंत्रता में मिले कष्ट कम ही नज़र आते हैं। मुक्ति सभी को बहुत प्रिय है-

“बेटे ऐसा कभी मत कहना ।” -चौधरी वलूलहक बोले—“तुम्हारी पीढ़ी स्वतंत्रता की परेशानियाँ देख रही हैं, परंतु परतंत्रता का अभिशाप तुम लोगों ने नहीं देखा है। बेटे स्वर्ग में परतंत्र रहने की अपेक्षा नर्क में स्वतंत्र रहना लाख गुना बेहतर है।”⁵³

फल की कामना में कई सालों की मेहनत का परिणाम होता है स्वतंत्रता। उस फल की कीमत वही समझ सकते हैं, जो इस की लालसा में निरंतर इस मुक्ति नामक पौधे को अपने रक्त से सींचा है।

गालो समाज की वर्षों पुरानी रीति 'न्यीदा' को बदलने का शुरुआत यायि की मौत ने दी हैं। 'यायि' और 'आलुक' की कुर्बानी समाज पर एक गहरा चोट करने का कार्य किया। पंचायत के अंध नियम और कानून पर एक प्रश्न लगाती है कि ऐसा नियम जिसकी अस्तित्व ही नहीं है। उसका पालन स्त्रियों पर शोषण के लिए अब तक निर्वाह किया गया है। एक मौन शहादत ने समाज की पंचायती व्यवस्था पर एक नयी दिशा और ग्लानि का अनुभव कराया –“अपने अधिकार की लड़ाई लड़ते-लड़ते थक गई बेचारी ! तुम्हें आज भले ही अपनी मंजील न मिली हो लेकिन तुमने बहुतों को रास्ता दिखा दिया हैं। यायि ।”⁵⁴

एक की शहादत से अगर समाज में बदलाव और क्रांति आती है तो उस से विशेष एवं महत्वपूर्ण कोई और अच्छी बात हो ही नहीं सकती हैं। एक पुरानी पथ को त्याग कर दूसरी कोई नयी पथ की तलाश करना ही मनुष्यता की श्रेणी में आती हैं। साथ ही यही आधुनिक एवं विकसित भारत की निशानी है। यहीं आधुनिक भारत की छवि हमें 'मेरी आवाज सुनो मैं देखने को मिलती है-“हमारे पूर्वजो ने भले ही

आदिम तरीके से जीवन व्यतीत किया हो, लेकिन हमें तो आधुनिक जीवन पद्धति को अपनाना चाहिए। इसका तो एक ही उपाय है कि शिक्षा का विस्तार हो।”⁵⁵

जो रीति रिवाज मनुष्यों के कल्याण में बाधा पहुँचाने का काम करें। ऐसे रीतियों को त्याग देना चाहिए। यह समाज को कभी भी आगे बढ़ने नहीं देगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. प्रभा खेतन, स्त्री उपेक्षित, पृ.54

2. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण: 2011, पृ. 286
3. वहीं, पृ.286
4. देवेंद्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण:1992,पृ.120
- 5.वहीं, पृ.120
6. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, प्रथम संस्करण:1978, पृ.126
7. वहीं, 126
8. वहीं, पृ.127-128
9. श्रीप्रकाश मिश्रा, रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006,पृ.85
10. वहीं, पृ.308
11. वहीं, पृ.308-309
12. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.72
13. वहीं, पृ.72-73
14. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002,पृ.69
15. प्रदीप सौरभ, देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2012, पृ.92-93
16. वहीं, पृ.142

17. वहीं, पृ.142
18. वहीं, पृ.78
19. डा.महेन्द्रनाथ दुबे मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1999,पृ.206
20. वहीं, पृ.206-207
21. वहीं, पृ.439
22. जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृ.11
23. श्रीप्रकाश मिश्रा, रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ.56
24. वहीं, पृ.56
25. भारत के इकलौते मातृसत्तात्मक समाज में कैसे चलता है घर परिवार? चिंकी सिन्हा, बीबीसी संवाददाता, शिलांग से लौटकर 31 जनवरी, 2020
26. वहीं
27. रुपतिल्ली की कथा, श्रीप्रकाश मिश्रा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ.151
28. रुपतिल्ली की कथा, श्रीप्रकाश मिश्रा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006,पृ.38

29. रुपतिल्ली की कथा, श्रीप्रकाश मिश्रा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ.260
30. वहीं, पृ.152
31. वहीं, पृ.152-153
32. वहीं, पृ.335
33. Women in Meghalaya, Soumen Sen (Ed.), Daya publishing House, Delhi, page no.14-15
34. स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, अनामिका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2012, पृ.192
35. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण:2011, पृ.88
36. वहीं, पृ.89
37. वहीं, पृ.89
38. देवेंद्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण:1992,पृ.119-120
39. वहीं, पृ.120
40. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, प्रथम संस्करण:1978, पृ.130
41. वहीं, पृ.131

42. श्रीप्रकाश मिश्रा, रुपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ.310
43. वहीं, पृ.310-311
44. श्रीप्रकाश मिश्रा, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.141
45. वहीं, पृ.141
46. वहीं, पृ.141-142
47. प्रदीप सौरभ, देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.92
48. डॉ.महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1999, पृ.207
49. वहीं, पृ.207
50. वहीं, पृ.207-208
51. वहीं, पृ.437
52. वहीं, पृ.437-438
53. वहीं, पृ.439
54. जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृ. 91
55. वहीं. पृ.93

उपसंहार

इस शोध प्रबंध को कुल पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय “पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यास और स्त्री” है। इसके अंतर्गत दो उप-अध्याय रखे गए हैं। प्रथम उप-अध्याय है- ‘पूर्वोत्तर भारत और हिंदी उपन्यास’। इस उप-अध्याय में पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों की विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें यहाँ के समाजों के सामाजिक मतभेद और प्रशासन के विरुद्ध आक्रोश जैसे गंभीर मुद्दों की सामाजिक, राजनैतिक पड़ताल करने का प्रयास आपको स्पष्ट दिखाई देगा। जैसे ‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ का एक पात्र हैं झा जी। केंद्रीय सरकार और पूर्वोत्तर के बीच पनपते विद्रोह भाव - जहाँ सरकारी आधिपत्य और उसी बीच अपने अस्तित्व को बचाने हेतु संघर्षरत पूर्वोत्तर को देखा जा सकता है।

दूसरा उप-अध्याय ‘पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री’ है। इस उप-अध्याय के अंतर्गत पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्रियों की उपस्थिति को विश्लेषित किया गया है। पूर्वोत्तर पर लिखे गए उपन्यासों में स्त्री को केंद्र में रखकर बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं, लेकिन इन उपन्यासों में पूर्वोत्तर की स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। कुछ मामलों में यहाँ की स्त्रियाँ स्वतंत्र भी हैं और बंधन में भी। पूर्वोत्तर आधारित उपन्यासों में अधिकतर अशांति का माहौल ही देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर पुरुष वर्ग सरकार के विरुद्ध जंग लड़ रहा है वहीं फौजी वर्ग इस राजनैतिक अशांति को दूर करने आए हैं। ‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ उपन्यास में फौज और उस से जुड़े अन्य नुमाइंदे भी स्त्रियों का शोषण करने से पीछे नहीं हटते।

पुरुषों के लिए समाज के नियम इतने गंभीर नहीं होते हैं जितने कि स्त्रियों के लिए। विडंबना तो यह है कि यह सब जान और समझ कर भी स्त्रियाँ इसको सहन करती चली आती हैं।

दूसरा अध्याय- “पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री की छवि”। इसके अंतर्गत तीन उप-अध्याय रखे गए हैं। पहला उप-अध्याय ‘स्त्री के विविध रूप’ हैं। इस उप-अध्याय के अंतर्गत स्त्री के विविध रूपों और उनकी महत्वपूर्ण भूमिकाओं का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में स्त्री – माँ, बेटी, पत्नी, बहन, प्रेमिका, कामकाजी जैसी व्यक्तिगत भूमिका के साथ साथ समाज और देश के लिए वीरांगना, समाज सेविका की भूमिका में भी नजर आती हैं। ‘जय आई असम’ उपन्यास के माध्यम से लेखक ने असम प्रांत के ऐसी संघर्षशील और वीरांगना महिला नमिता का ओजस्वी रूप प्रस्तुत किया है, जो विद्रोही महिला के रूप में दिखाई गई है, लेकिन इसका तेवर समाज को नुकसान पहुंचाना नहीं है बल्कि अहिंसा के माध्यम से अपने परिवार एवं समाज को बचाना है। ‘जय आई असम’ उपन्यास में असम की वीरांगना स्त्री सिर्फ पति को लड़ाई करने जाते देख आँसू बहाना नहीं जानती है, बल्कि उस आँसू को आग बनाकर समाज की बुराइयों का नाश करना भी जानती हैं। वो कमजोर स्त्री बनकर पति को रोकती नहीं हैं, बल्कि उसी पथ पर चलकर देश के लिए शहीद होना पसंद करती हैं। इस उपन्यास में लेखक मुला गाभरु का जिक्र करते हैं जिन्होंने इतिहास में अपने देश की रक्षा के लिए अपनी जान की कुर्बानी दी थी। ‘ब्रह्मपुत्र’ उपन्यास की लीली एक ऐसी महिला है जो हर समय अपने आपको सामाजिक कार्य एवं लोगों की मदद करने में लगाती है। एक और महत्वपूर्ण रूप स्त्री का इन उपन्यासों में दिखायी देता है जो व्यापार या बाहर के काम को संभालती हैं। अधिकतर

आदिवासी समाज में स्त्रियां ही व्यापार संभालती हैं, ऐसे में कई बार दोहरे तनाव का शिकार होती हैं। दिन के शारीरिक और मानसिक संघर्ष के बाद भी घर जाकर गृहणी वाले काम करना उनके जीवन की हिस्सा है। 'देश-भीतर-देश' उपन्यास की नायिका मिलकी असम छोड़कर जाना नहीं चाहती और विनय असम में रहना नहीं चाहता इस फैसले में मिलकी भीतर ही भीतर टूट कर बिखर जाती है और अपने प्रेम को कुर्बान कर देती है। वहीं 'उत्तर पूर्व' की 'जूही' प्रेम में छली जाती है।

दूसरा उप-अध्याय 'स्त्री-पुरुष संबंध' है। इस उप-अध्याय में स्त्री-पुरुष के संबंध की बारीकी को बताया गया है। स्त्री-पुरुष का संबंध जब प्रेमपूर्वक बनता है तो काफी सुंदर और मूल्यवान बन जाता है। नागा समाज पर आधारित उपन्यास 'रक्तयात्रा' में ऐसे ही संबंध को हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जहाँ विजेलू कई सालों बाद घर लौटता है। ऐसा नहीं है कि वह जिम्मेदारियों से डरकर भागा था, बल्कि इसके पीछे का कारण है अपने परिवार से पहले देश के लिए सोचना। नागा समाज को आजाद कराने के लिए जो लड़ाई लड़ी जा रही थी। उसमें कई लोगों को अपना घर परिवार त्यागकर जंगलों में छिपना पड़ रहा था जिसमें विजेलू नामक युवक भी शामिल था। वह कई सालों बाद अपनी पत्नी और बच्चों से मिलने आते हैं। उनकी पत्नी उनसे शिकायत करती हुई नज़र आती है, जहाँ दोनों में बड़ा ही प्यारा नोक-झोंक देखने को मिलता है। यहाँ पति के जंगलों में रहकर क्रांतिकारी होने के बावजूद भी स्त्री ने अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभाई है। 'उत्तर पूर्व' की 'जूही' प्रेम में छली जाने के बाद टूटती नहीं है बल्कि उसको सबक सीखाती है।

तीसरा उप-अध्याय 'स्त्री नैतिकता के प्रतिमान' है। इस उप-अध्याय के भीतर स्त्रियों के लिए निर्धारित नैतिक सिद्धांतों-प्रतिमानों का अवलोकन किया गया है। स्त्रियों को यूँ ही हल्के में लेना कहीं-न-कहीं गलत नज़र आता है। चानु 'आहुति' उपन्यास की नायिका है। अपने प्रियजनों के लिए तत्परता दिखाना ही मनुष्यता की निशानी होती है। यही नैतिक मूल्य के संरक्षक कहलाते हैं। मणिपुर के अशांति भरे माहौल में भी मनोज के लिए बेचैनी, इसी नैतिकता को उजागर करती है। मनोज की सलामती के लिए चानु माँ से भी नहीं डरी। बल्कि तर्क करने लगी। मनुष्यता की यही निशानी होती है। पूर्वोत्तर के उपन्यासों में औरतों के नैतिक मूल्यों को बचाए रखने के ऐसे कई प्रयास हमें देखने को मिल जाते हैं।

यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है की नैतिकता महिलाओं के पारंपरिक रूप से देखभाल करने वाली भूमिकाओं से जुड़ी हुई है और यह दूसरों की जरूरतों और भलाई पर ध्यान केंद्रित करती है।

तीसरा अध्याय "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री" है। इसके अंतर्गत छह उप- अध्याय रखे गए हैं। पहला उप-अध्याय 'मिज़ो समाज और स्त्री' है। मिज़ो समाज स्त्री की स्वतंत्रता को महत्व देता है, जहाँ स्त्रियों के विवाह पूर्व के संबंध से जन्में बच्चे को पाप नहीं समझा जाता है। मिज़ो समाज में अगर मिज़ो स्त्री और गैर मिज़ो पुरुष के बीच संबंध बन जाये तो स्त्री को समाज में सम्मान नहीं दिया जाता है अर्थात मिज़ो स्त्रियाँ व्यावहारिक जीवन में स्वतंत्र तो हैं, किन्तु मिज़ो समाज तक सीमित भी हैं। स्वतंत्रता का उपयोग करने की आजादी वहीं तक है। हम देख सकते हैं कि यहाँ भी समाज और संपत्ति से बहिष्कार, बेदखली के नियम, धारणा पितृसत्तात्मक समाजों की तरह ही है। किन्तु यह भी

काबिले गौर है की अन्य राज्यों एवं जातीय समाजों के बरक्स यहाँ स्त्रियाँ आत्मनिर्भर एवं कई मायनों में निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र भी हैं।

दूसरा उप-अध्याय 'खासी समाज और स्त्री' है। खासी जनजाति के लोग पारंपरिक मातृवंशीय प्रणाली का पालन करते हैं जिसमें खून खटदुह (अर्थात् कनिष्ठतम पुत्री) घर की सारी संपत्ति की अधिकारी होती है, जिसपर वृद्ध माता-पिता के देखभाल की जिम्मेदारी होती है। खासी समाज बहुत कुछ अंधविश्वास पर आश्रित है। इस बात को लेखक ने साफ तौर पर 'रूपतिल्ली की कथा' के माध्यम से समझाया है। हालांकि इस कथा में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह सच्ची घटना पर आधारित है। परंतु इसकी पृष्ठभूमि खासी समाज पर आधारित है। खासियों में बलि प्रथा का बहुत अधिक चलन था। बलि देकर वे समझते थे कि वे अपने पापों से मुक्त हो गए हैं। किंतु यह उनका अंधविश्वास का ही स्वरूप था, जिसे नरबलि देने में अपनी मान-सम्मान और खुशहाली का सूचक समझा जाता है। यह समाज मातृवंशीय होने के कारण औरतों की जिम्मेदारी बहुत हद तक बढ़ जाती है। यह घर, बाजार, खेती हर ओर काम करती नज़र आती हैं। किसी भी सूरत में उनके काम का बोझ कम होता नज़र नहीं आता है।

तीसरा उप-अध्याय 'मैतेई समाज और स्त्री' है। मैतेई मणिपुर के बहुसंख्यक एवं मूल निवासी हैं। इसीलिए कभी-कभी उन्हें मणिपुरी भी कहा जाता है। श्रीधर पांडे जी ने अपने उपन्यास 'आहुति' के माध्यम से मणिपुरी समाज में शादी को लेकर संक्रीणता को प्रदर्शित किया है। इस समाज के लोग यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि उनके समाज की बेटियाँ किसी बाहरी से विवाह करें। अगर किसी को भी ऐसे साथ देख लिया जाये तो इसका भयानक रूप देखने को मिलता है। कहने को तो लड़कियों को अपने पसंद के लड़के से विवाह करने की छूट है। परन्तु इसमें भी कई शर्तें आ जाती हैं। यहाँ लड़कियाँ अपने समुदाय से स्वयं लड़के पसंद

करती हैं और भाग जाती हैं। इसे एलोपमेन्ट कहते हैं। इस उपन्यास की नायिका 'चानु' के माध्यम से लेखक ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को दर्शाया है। मणिपुरी समाज बहुत अशांत रहता है। सदियों से चल रहे अलगाववाद की समस्या इस राज्य को विनाश की ओर ले जा रही है।

चतुर्थ उप-अध्याय 'नागा समाज और स्त्री' है। 'रक्तयात्रा' उपन्यास में नागा समाज में लड़कियों का विवाह जल्दी हो जाना अच्छा समझा जाता है। थोड़ी जवान होते ही माता-पिता की चिंता बढ़ जाती है। उपन्यास की पात्र केलेनु के विवाह की चिंता भी केदीलिनो को होने लगी थी। जन्म से ही दूसरे घर भेजने की बात सोच रखी थी।

आज भी भारतीय समाज में प्रेम विवाह पर आपत्ति दर्ज की जाती है, क्योंकि इससे जाति के टूटने का खतरा बना रहता है। पर नागा समाज में प्रेम विवाह का प्रचलन है। वहाँ लड़के और लड़कियाँ गाँव में बने अलग-अलग शिविरों (मोरंग) में रहते हैं। यह एक प्रकार से उनको मौका देते थे कि वे आपस में मेल-जोल बढ़ा सके ताकि विवाह के लिए लड़के का चयन किया जा सके। हालांकि इस तरह के मोरंग में कुछ चीजों का ध्यान रखना होता है। जैसे- विवाह से पहले शारीरिक संबंध स्थापित न करना, दुश्मन गांव के लड़कों से संबंध ना जोड़ना, कबीले के लड़के के साथ ही मेल-जोल बढ़ाना। कहने का मतलब यह है कि अपनी पसंद के अनुसार विवाह करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस विवाह के लिए उन्हें अपने माता-पिता की सहमति की आवश्यकता होती है। इस विवाह में वर पक्ष कन्या पक्ष को दहेज देता है। नागा समाज के इस पक्ष को रेखांकित करता है कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु' का उपन्यास 'रक्तयात्रा'।

पंचम उप-अध्याय 'असमिया समाज और स्त्री' है। असम की स्त्री किसी वीरांगना से कम नहीं है। हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की उनकी इच्छा उन्हें बहुत ऊंचा मुकाम दिलाती है। देवेंद्र सत्यार्थी का उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' के माध्यम से देखा जा सकता है, जहाँ देश की आजादी की लड़ाई में स्त्रियों की भूमिका भी अहम रही है। इसमें ऐसी स्त्रियाँ हैं जो न केवल घर बाहर के काम को देखती हैं बल्कि देश प्रेम की भावना से लिस होकर लोगों की सेवा भी करती हैं। जो स्त्री घर बाहर के साथ-साथ देश की सेवा भी करती हैं, वैसी स्त्रियों का शोषण उत्पीड़न इस समाज में होना हमारे देश की छवि को धूमिल करता है।

षष्ठ उप-अध्याय 'गालो समाज और स्त्री' है। अरुणाचल के गालो समाज, जो अरुणाचल प्रदेश के ईस्ट और वेस्ट सियांग जिलों में और सुबनसिरी जिले के ऊपरी हिस्सों में रहते हैं। ये लोग 'आबोतानी' के वंशज हैं।

जुमसी सिराम ने 'मेरी आवाज सुनो' में गालो समाज का चित्रण किया है, विशेषकर स्त्रियों की दुर्दशा और इस समाज की कुरीतियों के बारे में। इस समाज में विवाह तय होने पर वधू मूल्य (कन्या मूल्य) की प्रथा है, जिसमें विवाह बचपन में ही तय कर दिया जाता है। कई बार माता-पिता वधू-मूल्य का आदान-प्रदान करके गर्भ में ही बच्चे का विवाह तय कर देते हैं। यह समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है और यहाँ ज्यादातर फैसले पुरुषों द्वारा ही लिया जाता है। इस उपन्यास में जुमसी सिराम ने गालो समाज की कुछ बुरी प्रथाओं, व्यवस्थाओं को उजागर किया है।

चतुर्थ अध्याय "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्री की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन" है। इसके अंतर्गत सभी समाजों के बीच स्त्रियों की स्थितियों की तुलना की गई है। औरतों के सामाजिक और मानसिक संघर्ष का धरातल बहुत लंबा और फैला हुआ है। संघर्ष का यह रूप जहाँ औरतों को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ती है। क्योंकि उन्हें कमज़ोर और बेबस करने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है।

खासी समाज मातृवंशीय समाज है उत्तराधिकारी के रूप में संपत्ति पर छोटी पुत्री का ही अधिकार होता है। इसमें स्त्रियाँ भारत के अन्य पूर्वोत्तर भारत स्त्रियों के मुकाबले अधिक अधिकार संपन्न है। पूर्वोत्तर के सभी राज्य पितृसत्तात्मक समाज है मेघालय राज्य के अलावा क्योंकि मेघालय राज्य में मातृवंशीय समाज है। असम राज्य के महिलाओं के मुकाबले नागालैंड, मणिपुर मेघालय और मिजोरम के औरतें बाजार में ज्यादा व्यापार करते हुए दिखाई देते हैं। नागा समाज की महिलाएँ काफी मजबूत इरादों वाली होती है। वह नागा समाज के प्रति एकनिष्ठ रहती है। साथ ही साथ अपनी तथा अपने परिवार की जिम्मेदारी भी भली-भांति समझती है और निभाती भी है।

पंचम अध्याय -“पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न”

है। इसमें तीन उप-अध्याय रखे गए हैं। प्रथम उप-अध्याय ‘पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ’ हैं। पितृसत्तात्मक समाज में नारियों को कमज़ोर समझा जाता है, जहाँ उन्हें कदम-कदम पर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वह जरा भी घबरा गई तो पुरुष उसे अपना गुलाम बना लेगा। उसके सामने अपनी स्वतंत्रता बचाए रखने की बड़ी चुनौती सदैव रहती है। शोषण का शिकार होते हो तो उस चीज़ को छुपाओ मत। बल्कि उनका जिक्र खुलकर करना चाहिए। जैसा कि नमिता ने किया ब्रह्मपुत्र उपन्यास, हर समाज की औरतों को ऐसे ही बुलंदपूर्वक सामना करना चाहिए। उन्हें ललकारना चाहिए। पूर्वोत्तर की महिलाओं में साहस की कोई कमी नहीं है।

दूसरा उप-अध्याय ‘मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति’ है। मेघालय का खासी समाज मातृवंशीय समाज है। सुनने में अच्छा लगता है कि समाज स्त्रियों द्वारा चलाया जाता है, किंतु वास्तविक इसके उलट है। सत्ता और कानून बनाने की शक्ति तो पुरुषों के हाथ में ही है।

मातृप्रधान खासी समाज में स्त्रियों की स्थिति को श्रीप्रकाश मिश्र 'रूपतिल्ली की कथा' में बहुत अच्छी तरह से अभिव्यक्त किया है। बिना मौका दिए ही यह तय कर लिया कि लड़कियां कमजोर होती हैं। इसीलिए उन्हें लड़ाई और शिकार जैसे काम करने नहीं देना चाहिए। शुरू से ही यह वंचित रखने का खेल आरंभ हो गया है।

तीसरा उप-अध्याय 'मुक्ति की राहें' है। इसमें स्त्रियों की मुक्ति के लिए कौन सी राहें हैं इस की पड़ताल इन उपन्यासों के माध्यम से की गई है।

मुक्ति की राहें :

1. शिक्षा: महिलाओं की शिक्षा मुक्ति की राहों का एक महत्वपूर्ण साधन है वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है शिक्षित महिलाएं आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होती हैं नौकरी और व्यवसाय के अवसर प्राप्त कर सकती हैं कभी-कभी शिक्षित महिलाएं भी अक्सर सामाजिक और पारिवारिक दबाव के कारण अपने निर्णय में सीमित रहती हैं।
2. अपने हक के लिए आवाज उठाना: महिलाओं को अपने हक के लिए आवाज उठाना चाहिए गलत के खिलाफ विद्रोह करना चाहिए।
3. आत्मविश्वास: महिलाओं को को खुद में आत्मविश्वास पैदा करना होगा तभी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाएंगी। 'जय आई असम' में नमिता अपने ऊपर विश्वास होने के कारण ही सभी आसामियों से मिलकर गैर-आसामियों को असम राज्य से भगाने के लिए लड़ाई लड़ती है।
4. आत्मसम्मान: अपने आत्मसम्मान को कभी भी नहीं खोना चाहिए महिलाएं सिर्फ देना जानती हैं लेना कभी नहीं। आत्मसम्मान ही महिलाओं का एक ऐसा गहना है जिससे उसकी

सुंदरता हमेशा बढ़ती है। आत्मसम्मान को बनाए रखना मतलब मुक्ति की राह खोलना है। पूर्वोत्तर की औरतें छोटी सी बातों के लिए मर्द के सामने नहीं झुकती हैं जैसे 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास की आरती स्वयं ही मछली मारती है और लकड़ी भी काटती है।

मुक्ति के लिए बुद्धि की भी आवश्यकता होती है। स्त्रियों को यह आशा कभी नहीं रखनी चाहिए कि कोई पुरुष उनकी मदद करेगा। चाहे कोई भी मदद मिल भी जाए पहला कदम स्वयं को ही उठाना पड़ता है। पूर्वोत्तर की स्त्री पात्र हमें एक सीख देती हैं कि परिस्थितियां चाहे कुछ भी हो, समाज में चाहे जितने भी असंतुलन क्यों न हों, अपने को अच्छे मुकाम तक पहुंचाने का सही तरीका आपको जानना ही होगा। यही भाव और संदेश तथा संघर्ष हेतु प्रेरणा पूर्वोत्तर भारत का छोटा सा हिस्सा हमें सिखाता है और आज इसी कारण विश्व भर में अपना नाम रोशन कर रही है यहां की स्त्रियां। पराधीनता से मुक्ति की राह है आत्मनिर्भरता। इस हेतु शिक्षा और कौशल विकसित करना प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए।

इन उपन्यासों में आई स्त्री पात्रों के माध्यम से पूर्वोत्तर की स्त्रियों की वास्तविकता से रु-ब-रु होते हैं। स्त्री की दैहिक, जातिगत एवं आर्थिक उत्पीड़न जैसी समस्याओं की मुक्ति के बाद ही वास्तविक अर्थ में स्त्रियों की मुक्ति हो सकती है। स्त्री की वास्तविक मुक्ति के लिए उसके वास्तविक बंधनों की पहचान आवश्यक है। हर समाज में स्त्री पितृसत्तात्मक, यहाँ तक की मातृवंशीय समाज में भी शोषण -उत्पीड़न झेलती आई हैं। पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्रियों की इस स्थिति को देखा जा सकता।

प्रमुख बिंदु :

1. पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों का विस्तार से विवेचन करके इनमें शामिल विविध राज्यों के विविध समाजों का विश्लेषण किया गया है, विशेष रूप से स्त्रियों की स्थिति के दृष्टिकोण से।
2. पूर्वोत्तर के विविध समाजों में स्त्रियों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और निष्कर्ष रूप में हमने पाया कि मिजो और खासी समाज में स्त्रियों की स्थिति अधिक बेहतर है बाकि समाजों की तुलना में।
3. पूर्वोत्तर की स्त्रियाँ शेष भारत की तुलना में अधिक स्वतंत्र तो हैं किन्तु पारिवारिक संघर्ष और जीवन में स्थायित्व की कमी से निरंतर जूझती रहती हैं। मातृवंशीय समाज भी इससे मुक्त नहीं हैं।
4. यहाँ दहेज़, बाल विवाह, ऑनर किलिंग जैसे मुद्दे न्यून हैं, असली मुद्दा है स्त्रियों का अपने ही समाज और संप्रदाय तक सीमित रहना। अपने समुदाय से बाहर प्रेम और विवाह एक तरह से वर्जित है, लेकिन पैतृक सम्पत्ति में अधिकार इनका प्रमुख हथियार है, जैसे -खासी समाज में।
5. स्त्रियाँ यहाँ भी शारीरिक, मानसिक और श्रम के दृष्टिकोण से उत्पीड़ित हैं इसलिए इनसे मुक्ति की राह भी वही हैं जो बाकि स्त्रियों के लिए हैं - शिक्षा, रोजगार, आर्थिक आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और कौशल का विकास। इस हेतु सरकारी और सामाजिक प्रयासों के साथ संसाधनों का विकास भी जरूरी है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रन्थ :

1. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षू', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1978
2. जुमसी सिराम, मेरी आवाज सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021
3. डॉ॰ महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
4. देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
5. नवारुण वर्मा, जय आई असम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983
6. प्रदीप सौरभ, देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
7. प्रमोद कुमार तिवारी, उफ़फ़, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010
8. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002
9. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008
10. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011
11. श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006

सहायक ग्रंथ :

1. अरविंद जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
2. अरविंद जैन, औरत होने की सजा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2006
3. आशारानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2011
4. एलीन मारगन, प्रकाश दीक्षित (अनुवाद- नारी का अवतरण, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2009
5. के वनजा, इको फेमिनिज्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
6. गुलशन राय मोंगा, पूर्वोत्तर भारत(दर्शन और चिंतन), आर्य प्रकाशन मण्डल, 2007
7. जर्मेन ग्रीयर, बधिया स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
8. डॉ॰ अंजू शुक्ला, आधुनिक नारी एवं महिला साहित्य सशक्तिकरण, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2013
9. प्रकाश सिंह, नागालैंड, (अनुवादक- सुमंगल प्रकाश, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1972
10. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

11. प्रो. कमला प्रसाद, राजेंद्र शर्मा (सं०), स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
12. मृदुला सिन्हा, मात्र देह नहीं है औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
13. राजेंद्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
14. राजकिशोर (सं०), स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
15. रमणिका गुप्ता (सं०), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
16. रमणिका गुप्ता (सं०), आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
17. वर्जीनिया वुल्फ, अपना कमरा, (अनुवाद- गोपाल प्रधान, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2008
18. सिमोन द बोवुआर, (अनुवाद- मनीषा पाण्डेय, स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं है!, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2008
19. सुरेश चंद्र (सं०), श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य - साधना की परख, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2015

अंग्रेजी ग्रंथ :

1. Chandra Bhushan, Assam : Its Heritage and culture, Kalpaz Publication, Delhi, 2005
2. C. Khonglah (compiled and Ed.), Women In North-East India: An Annotated Bibliography, Akansha publishing house, New Delhi, 2008
3. Dr. Lucy Zehol (Ed.), Women In Naga Society, Regency Publication, New Delhi, 1998
4. S.L. Baruah (Ed.), status of women in Assam, omsons publication, New Delhi, 1992
5. Soumen Sen (Ed.), Women In Meghalaya, Omsons Publication, New Delhi, 1997

पत्रिकाएँ :

1. आपका तिस्ता-हिमालय, (सं.) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, सिलीगुड़ी, सितंबर, 2012
2. पुस्तक-वार्ता, (सं.) भारत भारद्वाज, वर्धा (महाराष्ट्र), जुलाई-अगस्त, 2013
3. पूर्वोत्तर लूइत साहित्य, (सं०) डॉ० अमित कुमार पाण्डेय, गुवाहाटी, जनवरी-दिसम्बर, 2016
4. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक, दिल्ली, 2005
5. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर का आदिवासी स्वर, दिल्ली, 2005

6. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, विशेषांक- स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण, दिल्ली, 2007
7. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर: आदिवासी सृजन- स्वर, दिल्ली, 2008
8. समीक्षा, (सं०) सत्यकाम, नई दिल्ली, जुलाई-सितंबर, 2010
9. समन्वय पूर्वोत्तर, (सं०) डॉ० बिजेन्द्र सिंह, शिलांग
10. हंस, (सं०) संजय सहाय, नई दिल्ली

अनुसंधित्सु का संक्षिप्त जीवन-वृत (बायो-डाटा)

नाम	: रंजू शर्मा
शिक्षा	: एम.ए., बी.एड (R.G.U), एम. एड (K.H.S, Agra)
ई-मेल	: ranjusharma.ghy@gmail.com
प्रकाशन सं.	: आलेख-02
	1. आहुति उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त मणिपुरी समाज, शोध- ऋतु, अप्रैल-जून- 2021, Volume-1
	2. मुक्ति: नारी की संघर्ष और उत्पीड़न की गाथा, शोध-ऋतु, अप्रैल-जून- 2021 Volume-3
संगोष्ठी पत्र प्रस्तुति सं.	: 04
ई-संगोष्ठी सं.	: 02

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	: रंजू शर्मा
शिक्षा	: एम.ए.
विभाग	: हिन्दी
शोध-प्रबन्ध का शीर्षक	: पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	: 31.07.2017
शोध प्रस्ताव की संस्तुति :	
(1) बी.ओ.एस.	: 11.04.2018
(2) स्कूल बोर्ड	: 26.04.2018
मिज़ोरम विश्वविद्यालय पंजीयन संख्या	: 1701188 of 2017
पीएच.डी. पंजीयन संख्या	: MZU/PH.D/1146 of 26.04.2018
EXTENSION (IF ANY)	: 2 Year(31.07.2025) No.16-2/MZU (Acad) /21/313-318 dated.12.07.2023

()
HEAD
Department Of Hindi
Mizoram University

ABSTRACT (शोध सारांश)

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री

PURVOTTAR KENDRIT HINDI UPANYASON MEIN STREE
[मिज़ोरम विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी (पीएच.डी) की
उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध सारांश]

**AN ABSTRACT SUBMITTED IN PARTIAL FULFILLMENT OF
THE REQUIREMENTS FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF
PHILOSOPHY**

रंजू शर्मा

RANJU SHARMA

MZU Regn.No. :1701188

Ph.D. Regn.No.: MZU/Ph.D/1146 of 26.04.2018



हिंदी विभाग

DEPARTMENT OF HINDI

मानविकी एवं भाषा संकाय

SCHOOL OF HUMANITIES AND LANGUAGES

जुलाई -2025

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री

PURVOTTAR KENDRIT HINDI UPANYASON MEIN STREE

अनुसंधित्सु

रंजु शर्मा

हिंदी विभाग

By

RANJU SHARMA

DEPARTMENT OF HINDI

शोध-निर्देशक

डॉ. सुषमा कुमारी

SUPERVISOR

Dr. SUSHMA KUMARI

मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के मानविकी एवं भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी

विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि के लिए अपेक्षित

आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध सारांश

Submitted

In partial fulfillment of the requirement of the Degree of Doctor of
Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl.

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री
विषयानुक्रमणिका

भूमिका

प्रथम अध्याय : पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यास और स्त्री

(क) पूर्वोत्तर भारत और हिन्दी उपन्यास

(ख) पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री

द्वितीय अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री की छवि

(क) स्त्री के विविध रूप

(ख) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

(ग) स्त्री नैतिकता के प्रतिमान

तृतीय अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री

(क) मिज़ो समाज और स्त्री

(ख) खासी समाज और स्त्री

(ग) मैतेयी समाज और स्त्री

(घ) नागा समाज और स्त्री

(ङ) असमिया समाज और स्त्री

(च) गालो समाज और स्त्री

चतुर्थ अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों
में स्त्री की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

पंचम अध्याय : पूर्वोत्तर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न

(क) पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ

(ख) मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति

(ग) मुक्ति की राहें

उपसंहार:

संदर्भ ग्रंथ-सूची: (क) आधार ग्रंथ (ख) सहायक ग्रंथ (ग) अंग्रेजी ग्रंथ (घ) पत्रिकाएँ

पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री

आधुनिक और नए विमर्श के इस दौर में स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याओं, संघर्षों और चिंताओं ने साहित्य की मुख्यधारा में अपना स्थान प्रखर रूप से स्थापित किया है। स्त्री एक 'विषय' के रूप में केवल स्त्रियों के लेखन तक सीमित नहीं रही, पुरुष लेखकों ने भी उनके सरोकारों को पूरी शिद्धत और गंभीरता से साहित्य में उभारा है। पूर्वोत्तर भारत की स्त्रियों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श की उपलब्धियों और सीमाओं के साथ एक महत्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि क्या इस विमर्श की विभिन्न अवधारणाओं, मान्यताओं, निष्कर्षों और एक व्यक्ति के रूप में स्त्री जीवन के विविध पक्षों को सभी समाजों की स्त्रियों पर समान रूप से लागू करके देखा जा सकता है? दलित स्त्री विमर्श का उदय और आदिवासी स्त्रियों का सवाल उक्त प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में देने को मजबूर करता है।

भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्रियों का -दैहिक, मानसिक और आर्थिक -त्रिस्तरीय शोषण और नैतिकता के तमाम बंधन का बोझ एक सार्वजनिक सच्चाई है। इसके आलावा अस्मिता के अन्य रूपों के साथ स्त्रियों की समस्याएँ एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न भी होती जाती हैं। आशय यह है कि स्त्री विमर्श की बुनियादी चिंताओं के अतिरिक्त भी उत्तर भारतीय स्त्री से भिन्न सवाल और समस्याएँ, संघर्ष एवं चुनौतियाँ अन्य प्रांत विशेष की स्त्रियों की हो सकती हैं। मैं स्वयं असम प्रदेश की हूँ और पूर्वोत्तर से होने के कारण पूर्वोत्तर की स्त्रियों का जीवन और उनसे जुड़े सवाल किन मायनों में स्त्री संबंधी मुख्यधारा के साहित्य से भिन्न और विशिष्टता लिए हुए हैं? यह प्रश्न बार-बार मुझे परेशान करता रहा। इस सन्दर्भ में मैंने पूर्वोत्तर के साहित्य को पढ़ना शुरू किया, जिसमें मेरी रुचि बढ़ती चली गई। पूर्वोत्तर की सामाजिक संरचना एवं स्त्रियों की स्थिति को गहराई से जानने और

समझने की जिज्ञासा ने ही मुझे इस विषय पर शोध कार्य के लिए प्रेरित किया, इसीलिए मैंने अपने शोध के लिए 'पूर्वोत्तर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री' विषय का चयन किया।

पूर्वोत्तर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों की संख्या बहुत नहीं है पूर्वोत्तर की स्त्री को केंद्र में रखकर तो बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं। मैंने अपने शोध कार्य के लिए 11 उपन्यासों का चयन किया है, जिसमें पूर्वोत्तर की स्त्रियाँ शामिल हैं- कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु' का 'रक्तयात्रा' (1978), नवारुण वर्मा का 'जय आई असम' (1983), देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र' (1992), महेन्द्रनाथ दुबे का 'मुक्ति' (1999), लाल बहादुर वर्मा का 'उत्तर पूर्व' (2002), श्रीधर पाण्डेय का 'आहुति' (2008), प्रमोद कुमार तिवारी का 'उफ़फ़' (2010), प्रदीप सौरभ का 'देश भीतर देश' (2012), श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (2011) और 'रूपतिल्ली की कथा' (2006), जुमसी सिराम 'मेरी आवाज़ सुनो' (2021) - जिसके आधार पर पूर्वोत्तर के विभिन्न प्रांतों और समाजों की स्त्रियों की स्थिति को बताया गया है।

इस शोध प्रबंध को कुल पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय "पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिंदी उपन्यास और स्त्री" है। इसके अंतर्गत दो उप-अध्याय रखे गए हैं। प्रथम उप-अध्याय है- 'पूर्वोत्तर भारत और हिंदी उपन्यास'। इस उप-अध्याय में पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों की विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें यहाँ के समाजों के सामाजिक मतभेद और प्रशासन के विरुद्ध आक्रोश जैसे गंभीर मुद्दों की सामाजिक, राजनैतिक पड़ताल करने का प्रयास आपको स्पष्ट दिखाई देगा। जैसे 'जहाँ बाँस फूलते हैं' का एक पात्र हैं झा जी, उनके इस कथन को देखें -

यह “भारत की केंद्रीय सरकार की ओर से एक तोहफा या घूस?”¹ केंद्रीय सरकार और पूर्वोत्तर के बीच पनपते विद्रोह भाव - जहां सरकारी आधिपत्य और उसी बीच अपने अस्तित्व को बचाने हेतु संघर्षरत पूर्वोत्तर को देखा जा सकता है।

दूसरा उप-अध्याय ‘पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री’ है। इस उप-अध्याय के अंतर्गत पूर्वोत्तर केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में स्त्रियों की उपस्थिति को विश्लेषित किया गया है। पूर्वोत्तर पर लिखे गए उपन्यासों में स्त्री को केंद्र में रखकर बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं, लेकिन इन उपन्यासों में पूर्वोत्तर की स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। कुछ मामलों में यहाँ की स्त्रियाँ स्वतंत्र भी हैं और बंधन में भी। पूर्वोत्तर आधारित उपन्यासों में अधिकतर अशांति का माहौल ही देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर पुरुष वर्ग सरकार के विरुद्ध जंग लड़ रहा है वहीं फौजी वर्ग इस राजनैतिक अशांति को दूर करने आए हैं। ‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ उपन्यास में फौज और उस से जुड़े अन्य नुमाइंदा भी स्त्रियों का शोषण करने से पीछे नहीं हटते। “कामी फौजी कैम्प में खूमा के साथ जिस राजनैतिक और सांस्कृतिक लड़ाई लड़ने के लिये खूमा के साथ जाती है और उसका जैसा यौन शोषण वहाँ होता है उससे वह यह निष्कर्ष निकालती है कि इस फौजी विद्रोह से तो अच्छा है कि हम दोला की बात मान कर सरकार से मिलकर शिक्षा के प्रसार से ही मिजो को जागरूक बनायें।”² पुरुषों के लिए समाज के नियम इतने गंभीर नहीं होते हैं जितने कि स्त्रियों के लिए। विडंबना तो यह है कि यह सब जान और समझ कर भी स्त्रियाँ इसको सहन करती चली आती हैं।

दूसरा अध्याय- “पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री की छवि”। इसके अंतर्गत तीन उप-अध्याय रखे गए हैं। पहला उप-अध्याय ‘स्त्री के विविध रूप’ हैं। इस उप-अध्याय के अंतर्गत स्त्री के विविध रूपों और उनकी महत्वपूर्ण भूमिकाओं का चित्रण किया गया है।

इन उपन्यासों में स्त्री – माँ, बेटी, पत्नी, बहन, प्रेमिका, कामकाजी जैसी व्यक्तिगत भूमिका के साथ साथ समाज और देश के लिए वीरांगना, समाज सेविका की भूमिका में भी नजर आती हैं। 'जय आई असम' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने असम प्रांत के ऐसी संघर्षशील और वीरांगना महिला नमिता का ओजस्वी रूप प्रस्तुत किया है, जो विद्रोही महिला के रूप में दिखाई गई है, लेकिन इसका तेवर समाज को नुकसान पहुंचाना नहीं है बल्कि अहिंसा के माध्यम से अपने परिवार एवं समाज को बचाना है। 'जय आई असम' उपन्यास में असम की वीरांगना स्त्री सिर्फ पति को लड़ाई करने जाते देख आँसू बहाना नहीं जानती है, बल्कि उस आँसू को आग बनाकर समाज की बुराइयों का नाश करना भी जानती हैं। वो कमजोर स्त्री बनकर पति को रोकती नहीं हैं, बल्कि उसी पथ पर चलकर देश के लिए शहीद होना पसंद करती हैं। इस उपन्यास में लेखक मुला गाभरु का जिक्र करते हैं जिन्होंने इतिहास में अपने देश की रक्षा के लिए अपनी जान की कुर्बानी दी थी। 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास की लीली एक ऐसी महिला है जो हर समय अपने आपको सामाजिक कार्य एवं लोगों की मदद करने में लगाती है। एक और महत्वपूर्ण रूप स्त्री का इन उपन्यासों में दिखायी देता है जो व्यापार या बाहर के काम को संभालती हैं। अधिकतर आदिवासी समाज में स्त्रियां ही व्यापार संभालती हैं, ऐसे में कई बार दोहरे तनाव का शिकार होती हैं। दिन के शारीरिक और मानसिक संघर्ष के बाद भी घर जाकर गृहणी वाले काम करना उनके जीवन की हिस्सा है। 'देश-भीतर-देश' उपन्यास की नायिका मिलकी असम छोड़कर जाना नहीं चाहती और विनय असम में रहना नहीं चाहता इस फैसले में मिलकी भीतर ही भीतर टूट कर बिखर जाती है और अपने प्रेम को कुर्बान कर देती है। वहीं 'उत्तर पूर्व' की 'जूही' प्रेम में छली जाती है।

दूसरा उप-अध्याय 'स्त्री-पुरुष संबंध' है। इस उप-अध्याय में स्त्री-पुरुष के संबंध की बारीकी को बताया गया है। स्त्री-पुरुष का संबंध जब प्रेमपूर्वक बनता है तो काफी सुंदर और मूल्यवान बन जाता है। नागा समाज पर आधारित उपन्यास 'रक्तयात्रा' में ऐसे ही संबंध को हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जहाँ विजेलू कई सालों बाद घर लौटता है। ऐसा नहीं है कि वह जिम्मेदारियों से डरकर भागा था, बल्कि इसके पीछे का कारण है अपने परिवार से पहले देश के लिए सोचना। नागा समाज को आजाद कराने के लिए जो लड़ाई लड़ी जा रही थी। उसमें कई लोगों को अपना घर परिवार त्यागकर जंगलों में छिपना पड़ रहा था जिसमें विजेलू नामक युवक भी शामिल था। वह कई सालों बाद अपनी पत्नी और बच्चों से मिलने आते हैं। उनकी पत्नी उनसे शिकायत करती हुई नज़र आती है, जहाँ दोनों में बड़ा ही प्यारा नोक-झोंक देखने को मिलता है- *"उसने जैसे कहा हो कि मेरे लिए तो पराये हो ही गए थे। बच्चों के लिए भी हो गए। विजेलू ने चुप रहकर ही पत्नी का आरोप स्वीकार किया। उसने टूटू, सोबो को बांहों में भरकर छाती से लगा लिया। संतान के स्पर्श की ऊष्मा आंखों में आसू बनकर उमड़ पड़ी। पति के आंसुओं से पत्नी के मन का तमाम मैल घुल गया। पति के इंतजार में उसने जो पीड़ाएं भोगी थीं वे भी तिरोहित हो गई।"*³ यहाँ पति के जंगलों में रहकर क्रांतिकारी होने के बावजूद भी स्त्री ने अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभाई है। 'उत्तर पूर्व' की 'जूही' प्रेम में छली जाने के बाद टूटती नहीं है बल्कि उसको सबक सीखाती है।

तीसरा उप-अध्याय 'स्त्री नैतिकता के प्रतिमान' है। इस उप-अध्याय के भीतर स्त्रियों के लिए निर्धारित नैतिक सिद्धांतों-प्रतिमानों का अवलोकन किया गया है। स्त्रियों को यँ ही हल्के में लेना कहीं-न-कहीं गलत नज़र आता है। चानु 'आहुति' उपन्यास की नायिका है। अपने प्रियजनों के लिए तत्परता दिखाना ही मनुष्यता की निशानी होती है। यही नैतिक

मूल्य के संरक्षक कहलाते हैं। मणिपुर के अशांति भरे माहौल में भी मनोज के लिए बेचैनी, इसी नैतिकता को उजागर करती है। लेखक बताते हैं- “चानु को बाजार में मची भगदड़ के कारण मालूम हो गया। कमरे में आने के साथ, उसे मनोज की याद आई। वह तो शहर से कम से कम दो किलोमीटर दूर बस्ती में रहता है। मणिपुर की पुरी बस्ती में न जाने कैसा वातावरण है, रात को उसका अकेला रहना ठीक नहीं। उसका मन बेचैन हो उठा, वह क्या करे। उसने बहुत सोच-विचार के बाद माँ से कहा-“मा, मास्टरजी तो वहाँ अकेले रहते हैं कहीं वहाँ भी उपद्रव न हो रहा हो। माँ ने सिर उठाकर चानु की ओर देखा, उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आई थी।”⁴ मनोज की सलामती के लिए चानु माँ से भी नहीं डरी। बल्कि तर्क करने लगी। मनुष्यता की यही निशानी होती है। पूर्वोत्तर के उपन्यासों में औरतों के नैतिक मूल्यों को बचाए रखने के ऐसे कई प्रयास हमें देखने को मिल जाते हैं।

यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है की नैतिकता महिलाओं के पारंपरिक रूप से देखभाल करने वाली भूमिकाओं से जुड़ी हुई है और यह दूसरों की जरूरतों और भलाई पर ध्यान केंद्रित करती है।

तीसरा अध्याय “पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और स्त्री” है। इसके अंतर्गत छह उप- अध्याय रखे गए हैं। पहला उप-अध्याय ‘मिजो समाज और स्त्री’ है। मिजो समाज स्त्री की स्वतंत्रता को महत्व देता है, जहाँ स्त्रियों के विवाह पूर्व के संबंध से जन्में बच्चे को पाप नहीं समझा जाता है। श्रीप्रकाश मिश्र लिखते हैं – “यहाँ के पंचायत में केवल इतना स्वीकार करना है कि उस कुआरी लड़की के गर्भ में जो बीज पल रहा है वह किसका है। इसे स्त्री-पुरुष दोनों को पंचायत के सामने स्वीकार करना पड़ेगा। इसके बाद पिता चाहे तो माँ और बच्चे का पालन पोषण का भार वहन करें और चाहे तो न करें, मिजो

उसे देवपुत्र मान कर के पाल लेंगे। और स्त्री भी अपनी लाज बचा लेगी और 'वेश्या' के रूप में जीवन बिताने के लिये समाज से बहिष्कृत नहीं की जायगी। इतने बड़े सत्य की स्वीकृति अपने आप में ही मुक्ति और अराजकता के बीच, कुछ ऐसी मर्यादा में खुल कर स्वीकार करती है जो शेष भारतीय समाज में स्वीकार्य नहीं है।⁵

मिज़ो समाज में अगर मिज़ो स्त्री और गैर मिज़ो पुरुष के बीच संबंध बन जाये तो स्त्री को समाज में सम्मान नहीं दिया जाता है अर्थात् मिज़ो स्त्रियाँ व्यावहारिक जीवन में स्वतंत्र तो हैं, किन्तु मिज़ो समाज तक सीमित भी हैं। स्वतंत्रता का उपयोग करने की आजादी वहीं तक है। हम देख सकते हैं कि यहाँ भी समाज और संपत्ति से बहिष्कार, बेदखली के नियम, धारणा पितृसत्तात्मक समाजों की तरह ही है। किन्तु यह भी काबिले गौर है कि अन्य राज्यों एवं जातीय समाजों के बरक्स यहाँ स्त्रियाँ आत्मनिर्भर एवं कई मायनों में निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र भी हैं।

दूसरा उप-अध्याय 'खासी समाज और स्त्री' है। खासी जनजाति के लोग पारंपरिक मातृवंशीय प्रणाली का पालन करते हैं जिसमें खून खटदुह (अर्थात् कनिष्ठतम पुत्री) घर की सारी संपत्ति की अधिकारी होती है, जिसपर वृद्ध माता-पिता के देखभाल की जिम्मेदारी होती है। खासी समाज बहुत कुछ अंधविश्वास पर आश्रित है। इस बात को लेखक ने साफ तौर पर 'रूपतिल्ली की कथा' के माध्यम से समझाया है। हालांकि इस कथा में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह सच्ची घटना पर आधारित है। परंतु इसकी पृष्ठभूमि खासी समाज पर आधारित है। खासियों में बलि प्रथा का बहुत अधिक चलन था। बलि देकर वे समझते थे कि वे अपने पापों से मुक्त हो गए हैं। किन्तु यह उनका अंधविश्वास का ही स्वरूप था, जिसे नरबलि देने में अपनी मान-सम्मान और खुशहाली का सूचक समझा जाता

है। “नौकर पाले ही इसलिए जाते थे कि जब कोई और विकल्प न हो तो उन्हें ही पकड़कर बलि चढ़ा दी जाय। भला यह कैसे होता है कि अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए दूसरों को काट चढ़ाया जाय, उस जिम्मेदारी को धारण करने के लिए।”⁶ यह समाज मातृवंशीय होने के कारण औरतों की जिम्मेदारी बहुत हद तक बढ़ जाती है। यह घर, बाजार, खेती हर ओर काम करती नज़र आती हैं। किसी भी सूरत में उनके काम का बोझ कम होता नज़र नहीं आता है।

तीसरा उप-अध्याय ‘मैतेई समाज और स्त्री’ है। मैतेई मणिपुर के बहुसंख्यक एवं मूल निवासी हैं। इसीलिए कभी-कभी उन्हें मणिपुरी भी कहा जाता है। श्रीधर पांडे जी ने अपने उपन्यास ‘आहुति’ के माध्यम से मणिपुरी समाज में शादी को लेकर संक्रीणता को प्रदर्शित किया है। इस समाज के लोग यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि उनके समाज की बेटियाँ किसी बाहरी से विवाह करें। अगर किसी को भी ऐसे साथ देख लिया जाये तो इसका भयानक रूप देखने को मिलता है। कहने को तो लड़कियों को अपने पसंद के लड़के से विवाह करने की छूट है। परन्तु इसमें भी कई शर्तें आ जाती हैं। यहाँ लड़कियाँ अपने समुदाय से स्वयं लड़के पसंद करती हैं और भाग जाती हैं। इसे एलोपमेन्ट कहते हैं। इस उपन्यास की नायिका ‘चानु’ के माध्यम से लेखक ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को दर्शाया है। चानु के चचेरे भाइयों के वाक्य से यह बात साफ होती है- “दोनों एक साथ बोल उठे, ‘क्यों, आप किसी मयांग (विदेशी , मणिपुर से बाहर के आदमी को मयांग संबोधित करते हैं।) से शादी करोगी क्या ? बाहर रहकर आने का मतलब यह नहीं कि आप को यह छूट मिल जायेगी।”⁷ मणिपुरी समाज बहुत अशांत रहता है। सदियों से चल रहे अलगाववाद की समस्या इस राज्य को विनाश की ओर ले जा रही है।

चतुर्थ उप-अध्याय 'नागा समाज और स्त्री' है। 'रक्तयात्रा' उपन्यास में नागा समाज में लड़कियों का विवाह जल्दी हो जाना अच्छा समझा जाता है। थोड़ी जवान होते ही माता-पिता की चिंता बढ़ जाती है। उपन्यास की पात्र केलेनु के विवाह की चिंता भी केदीलिनो को होने लगी थी। जन्म से ही दूसरे घर भेजने की बात सोच रखी थी - "केलेनु नाम रखा था यह सोचकर कि यह जल्दी ही अपना प्रेमी चुनकर शादी कर लेगी।"⁸

आज भी भारतीय समाज में प्रेम विवाह पर आपत्ति दर्ज की जाती है, क्योंकि इससे जाति के टूटने का खतरा बना रहता है। पर नागा समाज में प्रेम विवाह का प्रचलन है। वहाँ लड़के और लड़कियाँ गाँव में बने अलग-अलग शिविरों (मोरंग) में रहते हैं। यह एक प्रकार से उनको मौका देते थे कि वे आपस में मेल-जोल बढ़ा सकें ताकि विवाह के लिए लड़के का चयन किया जा सके। हालांकि इस तरह के मोरंग में कुछ चीजों का ध्यान रखना होता है। जैसे- विवाह से पहले शारीरिक संबंध स्थापित न करना, दुश्मन गांव के लड़कों से संबंध ना जोड़ना, कबीले के लड़के के साथ ही मेल-जोल बढ़ाना। कहने का मतलब यह है कि अपनी पसंद के अनुसार विवाह करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस विवाह के लिए उन्हें अपने माता-पिता की सहमति की आवश्यकता होती है। इस विवाह में वर पक्ष कन्या पक्ष को दहेज़ देता है। नागा समाज के इस पक्ष को रेखांकित करता है कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु' का उपन्यास 'रक्तयात्रा'।

पंचम उप-अध्याय 'असमिया समाज और स्त्री' है। असम की स्त्री किसी वीरांगना से कम नहीं है। हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की उनकी इच्छा उन्हें बहुत ऊंचा मुकाम दिलाती है। देवेन्द्र सत्यार्थी का उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' के माध्यम से देखा जा सकता है, जहाँ देश की आजादी की लड़ाई में स्त्रियों की भूमिका भी अहम रही है। इसमें ऐसी स्त्रियाँ हैं जो न केवल घर बाहर के काम को देखती हैं बल्कि देश प्रेम की भावना से लीप्त होकर लोगों की सेवा

भी करती हैं। जो स्त्री घर बाहर के साथ-साथ देश की सेवा भी करती हैं, वैसी स्त्रियों का शोषण उत्पीड़न इस समाज में होना हमारे देश की छवि को धूमिल करता है।

षष्ठ उप-अध्याय 'गालो समाज और स्त्री' है। अरुणाचल के गालो समाज, जो अरुणाचल प्रदेश के ईस्ट और वेस्ट सियांग जिलों में और सुबनसिरी जिले के ऊपरी हिस्सों में रहते हैं। ये लोग 'आबोतानी' के वंशज हैं।

जुमसी सिराम ने 'मेरी आवाज सुनो' में गालो समाज का चित्रण किया है, विशेषकर स्त्रियों की दुर्दशा और इस समाज की कुरीतियों के बारे में। इस समाज में विवाह तय होने पर वधू मूल्य (कन्या मूल्य) की प्रथा है, जिसमें विवाह बचपन में ही तय कर दिया जाता है। कई बार माता-पिता वधू-मूल्य का आदान-प्रदान करके गर्भ में ही बच्चे का विवाह तय कर देते हैं। यह समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है और यहाँ ज्यादातर फैसले पुरुषों द्वारा ही लिया जाता है। इस उपन्यास में जुमसी सिराम ने गालो समाज की कुछ बुरी प्रथाओं, व्यवस्थाओं को उजागर किया है।

चतुर्थ अध्याय "पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्री की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन" है। इसके अंतर्गत सभी समाजों के बीच स्त्रियों की स्थितियों की तुलना की गई है। औरतों के सामाजिक और मानसिक संघर्ष का धरातल बहुत लंबा और फैला हुआ है। संघर्ष का यह रूप जहाँ औरतों को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ती है। क्योंकि उन्हें कमज़ोर और बेबस करने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। खासी समाज मातृवंशीय समाज है उत्तराधिकारी के रूप में संपत्ति पर छोटी पुत्री का ही अधिकार होता है। इसमें स्त्रियाँ भारत के अन्य पूर्वोत्तर भारत स्त्रियों के मुकाबले अधिक अधिकार संपन्न हैं। पूर्वोत्तर के सभी राज्य पितृसत्तात्मक समाज हैं मेघालय राज्य के अलावा क्योंकि मेघालय राज्य में मातृवंशीय समाज है। असम राज्य के महिलाओं के मुकाबले नागालैंड, मणिपुर मेघालय और मिज़ोरम के औरतें बाज़ार में ज्यादा व्यापार करते हुए दिखाई देते हैं। नागा समाज की महिलाएँ काफी मजबूत इरादों वाली

होती है। वह नागा समाज के प्रति एकनिष्ठ रहती है। साथ ही साथ अपनी तथा अपने परिवार की जिम्मेदारी भी भली-भांति समझती है और निभाती भी है।

पंचम अध्याय -“पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्त्री उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न” है। इसमें तीन उप-अध्याय रखे गए हैं। प्रथम उप-अध्याय ‘पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की चुनौतियाँ’ हैं। पितृसत्तात्मक समाज में नारियों को कमज़ोर समझा जाता है, जहाँ उन्हें कदम-कदम पर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वह जरा भी घबरा गई तो पुरुष उसे अपना गुलाम बना लेगा। उसके सामने अपनी स्वतंत्रता बचाए रखने की बड़ी चुनौती सदैव रहती है। ‘ब्रह्मपुत्र’ उपन्यास में लेखक लिखते हैं- *“आरती की कल्पना में जयमती के बलिदान का दृश्य फिर से घूम गया। फिर कैसे जयमती ने आरती का रूप धारण कर लिया। चूलिक फा के स्थान पर नारायण दारोगा आकर खड़ा हो गया। छत से एक लड़की उलटी लटकाई गई है; नीचे से उसके हंटर लगाए जा रहे हैं। नई जयमती से नए गदाधरसिंह का पता पूछा जा रहा है। हरामजादी! सूअर की बच्ची! बता वह तेरा देवकांत कहाँ है?”*⁹ शोषण का शिकार होते हो तो उस चीज़ को छुपाओ मत। बल्कि उनका जिक्र खुलकर करना चाहिए। जैसा कि नमिता ने किया, हर समाज की औरतों को ऐसे ही बुलंदपूर्वक सामना करना चाहिए। उन्हें ललकारना चाहिए। पूर्वोत्तर की महिलाओं में साहस की कोई कमी नहीं है।

दूसरा उप-अध्याय ‘मातृवंशीय समाज में स्त्री की स्थिति’ है। मेघालय का खासी समाज मातृवंशीय समाज है। सुनने में अच्छा लगता है कि समाज स्त्रियों द्वारा चलाया जाता है, किंतु वास्तविक इसके उलट है। सत्ता और कानून बनाने की शक्ति तो पुरुषों के हाथ में ही है। मातृप्रधान खासी समाज में स्त्रियों की स्थिति को श्रीप्रकाश मिश्र ‘रूपतिल्ली

की कथा' में बहुत अच्छी तरह से अभिव्यक्त किया है। श्रीप्रकाश मिश्र लिखते हैं- “यहाँ मातृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण रियासत की मालकिन भले ही स्त्री हो राजा पुरुष है क्योंकि मर्द लड़ता है। फिर इस लड़ाकू (शूरवीर) पुरुष के लिए स्त्रियों का अपहरण अनुचित कैसा! यह अलग बात है कि बाल्यावस्था से ही तीर चलाने का प्रशिक्षण लड़कों को दिया जाता है, लड़कियों को नहीं। उन्हें तो जन्म के साथ ही 'दाव और अस्तार' (टोकरी ढोने की रस्सी) के साथ बांध दिया जाता है- श्रम और भूमिकाओं के सुनिश्चित निर्धारण के साथ।¹⁰ बिना मौका दिए ही यह तय कर लिया कि लड़कियां कमजोर होती हैं। इसीलिए उन्हें लड़ाई और शिकार जैसे काम करने नहीं देना चाहिए। शुरू से ही यह वंचित रखने का खेल आरंभ हो गया है।

तीसरा उप-अध्याय 'मुक्ति की राहें' है। इसमें स्त्रियों की मुक्ति के लिए कौन सी राहें हैं इस की पड़ताल इन उपन्यासों के माध्यम से की गई है।

मुक्ति की राहें :

1. शिक्षा: महिलाओं की शिक्षा मुक्ति की राहों का एक महत्वपूर्ण साधन है वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है शिक्षित महिलाएं आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होती हैं नौकरी और व्यवसाय के अवसर प्राप्त कर सकती हैं कभी-कभी शिक्षित महिलाएं भी अक्सर सामाजिक और पारिवारिक दबाव के कारण अपने निर्णय में सीमित रहती हैं।
2. अपने हक के लिए आवाज उठाना: महिलाओं को अपने हक के लिए आवाज उठाना चाहिए गलत के खिलाफ विद्रोह करना चाहिए।
3. आत्मविश्वास: महिलाओं को को खुद में आत्मविश्वास पैदा करना होगा तभी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाएंगी। 'जय आई असम' में नमिता अपने ऊपर विश्वास होने के कारण ही

सभी आसामियों से मिलकर गैर-आसामियों को असम राज्य से भगाने के लिए लड़ाई लड़ती है।

4. आत्मसम्मान: अपने आत्मसम्मान को कभी भी नहीं खोना चाहिए महिलाएं सिर्फ देना जानती हैं लेना कभी नहीं। आत्मसम्मान ही महिलाओं का एक ऐसा गहना है जिससे उसकी सुंदरता हमेशा बढ़ती है। आत्मसम्मान को बनाए रखना मतलब मुक्ति की राह खोलना है। पूर्वोत्तर की औरतें छोटी सी बातों के लिए मर्द के सामने नहीं झुकती हैं जैसे 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास की आरती स्वयं ही मछली मारती है और लकड़ी भी काटती है।

मुक्ति के लिए बुद्धि की भी आवश्यकता होती है। स्त्रियों को यह आशा कभी नहीं रखनी चाहिए कि कोई पुरुष उनकी मदद करेगा। चाहे कोई भी मदद मिल भी जाए पहला कदम स्वयं को ही उठाना पड़ता है। पूर्वोत्तर की स्त्री पात्र हमें एक सीख देती हैं कि परिस्थितियां चाहे कुछ भी हो, समाज में चाहे जितने भी असंतुलन क्यों न हों, अपने को अच्छे मुकाम तक पहुंचाने का सही तरीका आपको जानना ही होगा। यही भाव और संदेश तथा संघर्ष हेतु प्रेरणा पूर्वोत्तर भारत का छोटा सा हिस्सा हमें सिखाता है और आज इसी कारण विश्व भर में अपना नाम रोशन कर रही है यहां की स्त्रियां। पराधीनता से मुक्ति की राह है आत्मनिर्भरता। इस हेतु शिक्षा और कौशल विकसित करना प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए।

इन उपन्यासों में आई स्त्री पात्रों के माध्यम से पूर्वोत्तर की स्त्रियों की वास्तविकता से रु-ब-रु होते हैं। स्त्री की दैहिक, जातिगत एवं आर्थिक उत्पीड़न जैसी समस्याओं की मुक्ति के बाद ही वास्तविक अर्थ में स्त्रियों की मुक्ति हो सकती है। स्त्री की वास्तविक मुक्ति के लिए उसके वास्तविक बंधनों की पहचान आवश्यक है। हर समाज में स्त्री पितृसत्तात्मक,

यहाँ तक की मातृवंशीय समाज में भी शोषण -उत्पीड़न झेलती आई हैं। पूर्वोत्तर के विभिन्न समाजों में स्त्रियों की इस स्थिति को देखा जा सकता।

प्रमुख बिंदु :

1. पूर्वोत्तर केंद्रित हिंदी उपन्यासों का विस्तार से विवेचन करके इनमें शामिल विविध राज्यों के विविध समाजों का विश्लेषण किया गया है, विशेष रूप से स्त्रियों की स्थिति के दृष्टिकोण से।
2. पूर्वोत्तर के विविध समाजों में स्त्रियों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और निष्कर्ष रूप में हमने पाया कि मिजो और खासी समाज में स्त्रियों की स्थिति अधिक बेहतर है बाकि समाजों की तुलना में।
3. पूर्वोत्तर की स्त्रियां शेष भारत की तुलना में अधिक स्वतंत्र तो हैं किन्तु पारिवारिक संघर्ष और जीवन में स्थायित्व की कमी से निरंतर जूझती रहती हैं। मातृवंशीय समाज भी इससे मुक्त नहीं हैं।
4. यहाँ दहेज़, बाल विवाह, ऑनर किलिंग जैसे मुद्दे न्यून हैं, असली मुद्दा है स्त्रियों का अपने ही समाज और संप्रदाय तक सीमित रहना। अपने समुदाय से बाहर प्रेम और विवाह एक तरह से वर्जित है, लेकिन पैतृक सम्पत्ति में अधिकार इनका प्रमुख हथियार है, जैसे - खासी समाज में।
5. स्त्रियाँ यहाँ भी शारीरिक, मानसिक और श्रम के दृष्टिकोण से उत्पीड़ित हैं इसलिए इनसे मुक्ति की राह भी वही हैं जो बाकि स्त्रियों के लिए हैं - शिक्षा, रोजगार, आर्थिक आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और कौशल का विकास। इस हेतु सरकारी और सामाजिक प्रयासों के साथ संसाधनों का विकास भी जरूरी है।

संदर्भ :

1. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.52
2. श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य साधना की परख, सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ.79
3. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, प्रथम संस्करण:1978, पृ.264
4. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ.43
5. श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य-साधना की परख, सं: सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2015,पृ.78
6. श्रीप्रकाश मिश्र,रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006,पृ.10
7. श्रीधर पाण्डेय,आहुति,जानकी प्रकाशन,पटना,2008, पृ. 137-38
8. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु', रक्तयात्रा,नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली,1978, पृ. 13-14
9. देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण:1992,पृ.120
10. श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ.38

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ :

1. कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षू', रक्तयात्रा, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1978
2. जुमसी सिराम, मेरी आवाज़ सुनो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2021
3. डॉ॰ महेन्द्रनाथ दुबे, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
4. देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रह्मपुत्र, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
5. नवारुण वर्मा, जय आई असम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983
6. प्रदीप सौरभ, देश भीतर देश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
7. प्रमोद कुमार तिवारी, उफ़फ़, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010
8. लाल बहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002
9. श्रीधर पाण्डेय, आहुति, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008
10. श्रीप्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011
11. श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006

सहायक ग्रंथ :

1. अरविंद जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
2. अरविंद जैन, औरत होने की सजा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2006
3. आशारानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2011

4.एलीन मारगन, प्रकाश दीक्षित (अनुवाद- नारी का अवतरण, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2009

5.के वनजा, इको फेमिनिज्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

6.गुलशन राय मोंगा, पूर्वोत्तर भारत(दर्शन और चिंतन), आर्य प्रकाशन मण्डल, 2007

7.जर्मेन ग्रीयर, बधिया स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

8.डॉ॰ अंजू शुक्ला, आधुनिक नारी एवं महिला साहित्य सशक्तिकरण, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2013

9.प्रकाश सिंह, नागालैंड, (अनुवादक- सुमंगल प्रकाश, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली,

1972

10.प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

11. प्रो. कमला प्रसाद, राजेंद्र शर्मा (सं॰), स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

12.मृदुला सिन्हा, मात्र देह नहीं है औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

13.राजेंद्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

14.राजकिशोर (सं॰), स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

15. रमणिका गुप्ता (सं०), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
16. रमणिका गुप्ता (सं०), आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
17. वर्जीनिया वुल्फ, अपना कमरा, (अनुवाद- गोपाल प्रधान, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2008
18. सिमोन द बोवुआर, (अनुवाद- मनीषा पाण्डेय, स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं है!, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2008
19. सुरेश चंद्र (सं०), श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य - साधना की परख, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2015

अंग्रेजी ग्रंथ :

1. Chandra Bhushan, Assam : Its Heritage and culture, Kalpaz Publication, Delhi, 2005
2. C. Khonglah (compiled and Ed.), Women In North-East India: An Annotated Bibliography, Akansha publishing house, New Delhi, 2008
3. Dr. Lucy Zehol (Ed.), Women In Naga Society, Regency Publication, New Delhi, 1998
4. S.L. Baruah (Ed.), status of women in Assam, omsons publication, New Delhi, 1992
5. Soumen Sen (Ed.), Women In Meghalaya, Omsons Publication, New Delhi, 1997

पत्रिकाएँ :

1. आपका तिस्ता-हिमालय,(सं.)डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, सिलीगुड़ी, सितंबर,2012
2. पुस्तक-वार्ता, (सं.) भारत भारद्वाज, वर्धा (महाराष्ट्र), जुलाई-अगस्त, 2013
3. पूर्वोत्तर लूइत साहित्य, (सं०) डॉ० अमित कुमार पाण्डेय, गुवाहाटी, जनवरी-दिसम्बर, 2016
4. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता,अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक, दिल्ली, 2005
5. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर का आदिवासी स्वर, दिल्ली , 2005
6. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, विशेषांक- स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण, दिल्ली, 2007
7. युद्धरत आम आदमी, (सं०) रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर: आदिवासी सृजन- स्वर, दिल्ली, 2008
8. समीक्षा, (सं०) सत्यकाम, नई दिल्ली, जुलाई-सितंबर, 2010